

जगद्गुरु-श्रीचन्द्र-दिग्विजयम्

महाकाव्यम्



सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-वेदाचार्य-कविवर

श्रीमदखिलानन्द शर्मप्रणीतम्



तत्कृत भाषानुवादसमेतम्

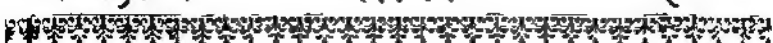


तस्येदं प्रथम संस्करणम्





प्रथमवारं १००० } बसन्त-पञ्चमी, विक्रम संवत् १९९८ सन् १९४२ ई० { मूल्य २





जगद्गुरु बालयति आचार्य श्री १००८ श्रीचन्द्र जी महाराज ।

बी० एन० प्रेस इटावा ।

समर्पण.

सनकादिसमादिष्टमुनिमार्गनिदर्शकः ।
क श्रीचन्द्रमहाभागः काहं परिमिताशयः ॥ १ ॥
तथापि हृदयोद्भूतप्रेरणाविवशात्मना ।
सुबुद्धिगर्भसम्भूतसुबोधस्याग्रजन्मना ॥ २ ॥
शान्तिदेवीसगर्भ्येण मालतीसहचारिणा ।
मुनीश्वरादिपुत्राणां जनकेन यथोत्तरम् ॥ ३ ॥
अनेकरससम्बद्धनानापदमनोहरः ।
ललितक्रमविन्यस्तमृद्वीका मधुराक्षरः ॥ ४ ॥
भावाभिरामसद्भावसौगन्ध्याकृष्टसज्जनः ।
समर्प्यते नवग्रन्थः पुष्पाञ्जलिरिवोज्वलः ॥ ५ ॥
तेनानेन जगन्मान्यः सर्वभूतहिते रतः ।
श्रीचन्द्रो भगवानद्य प्रीयतां जगतां गुरुः ॥ ६ ॥
एवं निवेद्य भगवत्पादयोर्मनसि स्थितम् ।
निवर्ततेखिलानन्दष्टीकारामभुनेः सुतः ॥ ७ ॥
तस्मै ददातु भगवान्सर्वमेव हृदि स्थितम् ।
लोकलोकान्तरप्राप्यं भोगमोक्षफलप्रदः ॥ ८ ॥

समर्पकः—

अखिलानन्द शर्मा ।

ग्रन्थकार के अन्य अमुद्रित ग्रन्थ ?



हनुमद्विजय,

इस निबन्ध में महाबली रामदूत श्रीहनुमान जी का समस्त जीवन वृत्तान्त लिखा गया है। हनुमज्जयन्ती के अवसर पर प्राय इस निबन्ध की आवश्यकता पड़ती है। ग्रन्थ ऐतिहासिक और समयोपयोगी है, इसके प्रकाशन के लिये ५००) की आवश्यकता है।

परशुराम दिग्विजय,

[महाकाव्य]

इस महाकाव्य में भगवदवतार श्रीपरशुराम जी का समस्त जीवन वृत्तान्त लिखा गया है। ग्रन्थ ऐतिहासिक तथा समयोपयोगी है। इसके पढ़ने से मुर्दों में भी जीवन आ जाता है, सजीवों का तो फिर कहना ही क्या है। पद्य रचना भावपूर्ण चित्ताकर्षक और वीरता का स्मरण दिलाने वाली है भाषानुवाद ग्रन्थ के साथ है। इसके प्रकाशन के लिये सहायता की आवश्यकता है। इन दोनों ग्रन्थों के प्रकाशन से वर्तमान समय में हिन्दू जनता का बड़ा उपकार होगा। हिन्दू हितों की रक्षा होगी, और दुर्बल आत्माओं में बल का सञ्चार होगा। सहायता देने वालों को नीचे लिखे पते पर पत्र-व्यवहार करना चाहिये।

निवेदक :—

अखिलानन्द शर्मा 'कविरत्न'

मु० पो० अनूपशहर, जि० बुलन्दशहर (यू पी)

शुद्धाशुद्धि पत्रम्



श्लोके	अशुद्धम्	शुद्धम्
१६	श्रौत्रेपु	श्रोत्रेपु
३२	निधि	विधि
४२	स्वीयापि	स्वेनापि
९	मूर्तौभ	मूर्तौर्भ
११	न्महता	ननन्ता
३०	चरित्राण	परित्राण
३२	वरम	वसर
४६	महारसा	महोरसा
३३	यदर्थमेपो	यदर्थकोयं
३६	यदर्थमेपो	यदर्थकोयं
६	सुमु	समु
८	श्रिया	श्रये
३९	दिवं	दित्तं
३५	नियोजितु	नियोक्तुंस
४७	निप्क्रया	निष्क्रिया
५९	योधना	योऽधुना
५४	मुनीमपि	मुनीनपि
११	भारतीयः	भारतीयाः
६८	कायस्व	कस्तस्य
६६	सुयशो	सुयशा
७३	शास्तुरुचैः	प्राप्तुमुचैः
६	मप्युय	मप्युप
७	तदशु	ददशु
९	विवदि	ऽप्यवदि
१७	निवेशता	निवेशिता
२६	मरिति	मटिति

सर्गे	श्लोके	अशुद्धम्	शुद्धम्
	७२	तौचा	नौधा
	३४	गुरस्ता	पुरस्ता
	३५	धन्यातु	धन्याधु
८	२६	द्वन्द	द्वन्द्व
	६७	यदि	यद्
	७७	क्षया	क्षता
	१०८	सज्जनात्	सज्जनान्
	११०	प्राज्ञं	प्राज्ञं
९	४	प्रथमां	प्रथयां
	७	ज्ञानंम्य	दानंम्य
	२३	रुपाय	रुपायै
	४६	ऋपयो	मुनयो
	५६	वीक्ष	वीक्ष्य
१०	२५	तावद्वि	तावद्धि
	५१	महोन्त	महोन्न
	५७	निविक्त	विविक्त
११	२९	मवस्यांस्तु	मवस्थाम्तु
	२९	विपण्णा	विपण्ण
	५५	तृणनिहित	तृणविहित
	५६	लोचे	लोचै
	८९	स्पर्द्धि	स्पर्द्धि
१२	२९	कर्णास	कर्णान
	३३	समीक्ष	समीक्ष्य
	४९	जन्मनःपदम्	सम्मदास्पदम्
१३	२३	भिन्नात्यपि	भिन्नाम्पपि
	१३३	तपोनि	तपोनि

सर्गे	श्लोके	अशुद्धम्	शुद्धम्
	१८८	द्रूमौ	द्रूमौ
१३	२२९	स्वधर्मं	स्वधर्मं
	२४४	एवा	एव
	२४५	भूमितो	भूमितो
	२५७	महद्वलः	महाबलः
	२८८	स्त्यज्य	त्यज
	३४२	वितिर्ष्टति	वितिष्ठन्ते
	३६२	न्तिष्ठया	निष्ठया
	३७३	यास्व	यास्य
	३९०	नवम्	नवम्
	४०७	महोत्पान	महोत्पात
	४३३	शिवाम्	शिवम्
	४५४	स्तिटथ	तटस्थि
	४७६	वीक्षतां	वीक्ष्यतां
१४	११	जिन	निज
	२२	मीक्ष	मीक्ष्य
	२७	दलधर	हलधर
	३३	श्रयाति	श्रयति
	३३	विरडिति	विराडिति
१५	३	संदिश्यन्ते	संदिश्यते
	५	तयोनि	तयोर्नि
	१८	माद्यते	माद्रियते
	३०	मीक्ष	मीक्ष्य
	५९	प्रपयौ	प्रययौ
	१०७	मुद्रिर	माक्षिप
१६	११	संक्ष्ठ	पश्च
	१८	भिता	भिदा
	७१	व्यवोचि	व्यवाचि
	८४	ऋषि	मुनि
	१६४	तेप	तेपु
१७	६	ममेयं	ममेदं
	४८	एपः	आद्यः
	५१	प्रघृति	प्रवृत्ति
	६७	स्मार्त	श्रौत
	७१	सङ्गताम्	सङ्गतम्
	९९	शिक्षणश्रोत	प्रवाहक्रम
१८	१८	गुरुवे	गुरवे
	२८	मचलां	मचलं
	८०	गीयतेस्य	गीयतेऽत्र



सूचना ।



१—त्रयोदशे सर्गे-प्रथम शतकानंतरं त्रिनवतितमं पद्यमैतिह्यपारवश्येनैवं पठनीयम्-

मदनुग्रहतः प्राप्तं साधुमेकमुपैष्यति ।
काश्मीरदेशे मच्छिष्यैः सोय मैत्र्यमवाप्स्यति ॥१३।१९३॥

२—अस्मिन्नेव सर्गे त्रिशतोत्तरे सप्ततितमे पद्ये चतुर्थपादः "यतस्तेन स संचित" इति पठनीयः ॥ ३७० ॥

३—पञ्चदशे सर्गे द्वात्रिंशत्तमं पद्यं छान्दोग्यमतानुसारेणैवं पठनीयम्—

दैवं पथं समधिगत्य कुतः प्रयाति
पार्थक्यमत्र पथि पितृपथाद्गतः स्वम् ॥
जीवः स्वकर्मपरिपाकवशेन वेत्ति
यद्यत्र किंचिदपि तद्वद मत्पुरस्त्वम् ॥१५॥३२॥

४—षोडशे सर्गे-त्रिपञ्चाशत्तमे पद्ये उत्तरार्धमेवं पठनीयम्—

यजुषो विशस्तु ऋग्भ्यः
पुरा न शूद्रस्य सम्भवो वेदात् ॥१६॥५३॥

५—सप्तदशे सर्गे नवनवतितमे पद्ये द्वितीयपादः "शिक्षा सलिल निर्झरः" इति पठनीयः ॥ १७ ॥ ९९ ॥





ब्रह्मनिष्ठ वेददर्शनाचार्य महामण्डलेश्वर श्री १०८ स्वामि गङ्गेश्वरानन्द जी



माननीय श्रौत मुनि मण्डल !!!

बहुत दिनों से जिस ग्रन्थ के लिखने की अभिलाषा मन में उठ रही थी वह जगदीश्वर की असीम कृपा से आज मुनि मण्डल के समक्ष उपस्थित हो रहा है यह बड़े ही आनन्द की बात है।

जिस "जगद्गुरु-श्रीचन्द्र दिग्विजय" को लेकर आज हम जनता के समक्ष उपस्थित हो रहे हैं उसका महत्व वे ही महानुभाव समझ सकते हैं जो ऐतिहासिक साहित्य के महत्व को समझ कर अहर्निश उसके लिये स्वयं भी परिश्रम करते हैं।

संसार में इतिहास वह वस्तु है जो मनुष्य को साधारण परिस्थिति से उठाकर विशेष परिस्थिति में पहुंचा देता है। संसार में इसके अनेक निदर्शन हैं जो साहित्यसेवियों से छिपे नहीं हैं।

जिस सम्प्रदाय का कोई इतिहास नहीं है वह कुछ दिनों के अनन्तर आकाश में शब्द की तरह अपने आप छिप कर लय हो जाता है। इसीलिये प्राचीन समय के आचार्यों का इतिहास उनके अनुयायियों ने उनके ही समय में लिखकर अपने कर्त्तव्य पालन का पूरा २ परिचय जनता को दिया है जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण माधवाचार्य प्रणीत "शङ्कर दिग्विजय" आपके समक्ष है- जिसने शङ्कराचार्य को सर्वदा के लिये अजर अमर बना कर विद्वत्समाज में चिर-स्मरणीय बना दिया है।

आज भारतवर्ष के विभिन्न समाज अपने अपने पूर्वजों का छिपा हुआ इतिहास जनता के समक्ष में रखकर अपने जातीय जीवन का परिचय दे रहे हैं। यह भारतीय गौरव के अभ्युत्थान का केवल सूत्रपात मात्र समझना चाहिये।

हमारा इसकी ओर स्वाभाविक प्रेम है जो जन्म से हमारे साथ है। हम प्रत्येक वस्तुस्थिति को पहिले ऐतिहासिक दृष्टि से देख कर फिर उस पर विचार करते हैं जिस वस्तु की ऐतिहासिक परिस्थिति नहीं मिलती है उसकी सत्यता के विषय में अनायास भ्रम उत्पन्न हो जाता है इसीलिये हम सहसा किसी विषय में अपना मतामत प्रकट नहीं करते हैं। हमारी अनुमति में इतिहास से प्रेम रखने वाले प्रत्येक महानुभाव को ऐसा ही करना चाहिये जिससे भ्रम उत्पन्न होने का अवसर प्राप्त न हो, जगद्गुरु श्रीचन्द्रजी के विषय में अभी तक ऐतिहासिक दृष्टि से पूरा-पूरा अन्वेषण नहीं हुआ है यदि होता तो बालहासादि शिष्यों से

प्रवृत्त धारावाहिक शिष्य परम्परा का वर्णन किसी निबन्ध में अवश्य मिलता ? जो अभी तक श्रुति परम्परा पर ही अधिकांश में निर्भर है।

हमने बहुत दिनों से भारत भ्रमण का अवसर पाकर इस विषय में उदासीनों से मसाला एकत्र किया है जो किसी समय में हम "पञ्चायतन परिचय" नामक निबन्ध में उपस्थित करेंगे। हमारे पितृ चरण मुनिवर श्री पं० टीकाराम शास्त्री जी मुनिवृत्ति से वनों में रह कर अपना जीवन यापन करते थे ? यह बात वर्त्तमान मुनि मण्डल से छिपी नहीं है साधु समाज में अभी तक वे महात्मा विद्यमान हैं जो ऋषिकेश आदि पवित्र स्थलों में हमारे पितृचरणों से प्रायः मिला करते थे। उनके वार्तालाप से प्राप्त प्राचीन ऐतिहासिक कथा कदम्ब अभी तक हमारे कानों में गूंज रहा है जिसको अवसर पाकर पिता जी हमको सुनाया करते थे। हमारे हृदय में वे भाव तभी से जमकर इस रूप में परिणत हो रहे हैं जिनका प्रत्यक्ष निदर्शन प्रस्तुत महाकाव्य है।

इस अन्वेषण कार्य में पहिला परिश्रम हमारे अभिन्नहृदय मित्र वेददर्शनाचार्य महामण्डलेश्वर श्री १०८ गङ्गेश्वरानन्दजी का है जिन्होंने अनेक वर्षों तक इस कार्य में निरन्तर परिश्रम करके ऐतिहासिक गवेषणापूर्ण एक अद्भुत "श्रौतमुनि-चरितामृत" नामक निबन्ध जनता में उपस्थित किया है। इसमें प्राचीन कालिक जो मौलिक इतिहास हिन्दू हित की दृष्टि से आपने चित्रित किया है उसका महत्त्व सर्व साधारण नहीं समझ सकते हैं। वीरवर सावरकर जैसे दो चार महानुभाव ही उसका अध्ययन करके वर्तमान समय में समयोचित कार्य करने पर उतारू हुए हैं।

वर्तमान समय में जिन बातों का हिन्दू जनता में उद्बोधनात्मक आवेश होना चाहिये उन बातों का उल्लेख आज से तीन सौ वर्ष पूर्व विक्रम की सत्रहवीं सदी में जगद्गुरु श्रीचन्द्रजी के जीवन काल में श्रीचन्द्रजी के द्वारा ही हो चुका था जिसके प्रतिफल में समर्थ रामदास, शिवाजी, प्रताप आदि भारत माता के सुपुत्रों ने उस समय के यवन शासन को उच्छिन्न कर हिन्दू जनता का मुख निष्कलङ्क करके अपने कर्तव्य का पालन किया।

बौद्धों का सर्वनाश करने के लिये जिस प्रकार भगवान् शङ्कर शङ्कराचार्य जी के रूप में अवतीर्ण हुए उसी प्रकार यवनों का उच्छेद करने के लिये भगवान् शङ्कर श्रीचन्द्र जी के रूप में अवतीर्ण हुए। तुल्य बल होने के कारण यह दोनों घटनाएँ आपस में एक दूसरे के मुकाबिले पर आमने-सामने खड़ी हुई हैं। जिनको देखना हो वे दोनों का कार्य मुकाबिले पर रख कर देख सकते हैं।

दुष्ट-शक्तियों का संहार करना केवल भगवान् शङ्कर का ही काम है। इसी कारण दोनों समय में उनको ही अवतार लेकर आना पड़ा। जिस समय सिन्ध प्रान्त के

यवनों ने नगर ठट्टा की पवित्र भूमि में दूसरा मक्का बनाने का आयोजन किया था उस समय में चारों ओर हिन्दू सङ्गठन का शङ्खनाद बजाकर आपने ही उनके शासन को छिन्न-भिन्न कर दिया था। यदि आपका अवतार न होता तो आज उनके अत्याचारों के कारण एक भी हिन्दू नामधारी देखने में न आता। यह सब आपकी ही अनुपम कृपा का फल है जो इस कराल-कलिकाल में भी हिन्दू अपने धर्म की रक्षा पर तुले हुए हैं।

हिन्दू धर्म की रक्षा करने के लिये आपने उस यवन शासन के समय किस प्रकार जनता को उद्बोधित किया? इसका उदाहरण इस महाकाव्य के १३ वें और १७ वें सर्ग में आपको मिलेगा। आपने आपत्ति आने पर हिन्दू जनता को जो आदेश, जो उपदेश, जो सन्देश दिये हैं उनको देखकर मृत शरीर में भी एक बार जीवन बिना आये नहीं रहता है।

आपके उपदेशों में वह चमत्कार है जिसको देखकर शोणित पङ्क पिच्छिल रणाङ्गण में कायर से कायर मनुष्य भी सर्व प्रथम कूदने के लिये तैयार हो जाता है, इसका उदाहरण रामरत्न नामक एक ब्राह्मण कुमार है जिसका वर्णन इस महाकाव्य के १३ वें सर्ग में आया है।

मृत को सजीव करना, असम्भव को सम्भव करना, दुर्बल को बलवान् बनाना, बलवान् अत्याचारी को दुर्बल बनाकर सर्वदा के लिये उसको यमालय भेजना, अत्याचारी के समक्ष निर्भय होकर उत्तर देना, मनोबल से दूसरे के मनोभाव को समझना, आकाश मार्ग से चलकर युद्ध के मैदान में उतरना, हुंकारमात्र से शत्रु को नष्ट करना, विधर्मियों को भी हरिभक्त बनाकर उनके द्वारा ही उनका शासन कराना आदि-आदि अनेक अलौकिक बातें आपके योगबल के ताजे-ताजे उदाहरण हैं जिनका विचित्र वर्णन आपको इस महाकाव्य में आदि से अन्त तक मिलेगा।

जिन महानुभावों को इस वर्तमान विकट परिस्थिति में अपने देश की, अपनी जाति की, अपने धर्म की, अपनी मान-मर्यादा की रक्षा करने की इच्छा हो वे सब काम छोड़कर पहिले इस महाकाव्य का अवलोकन करें जिससे उनका क्षुद्र हृदय-दौर्बल्य नष्ट हो और वे हिन्दू जाति की रक्षा में अग्रसर हो सकें।

हमारे हृदय मन्दिर में इस समय भगवान् की वह मूर्ति विराजमान है जिसका परम कर्तव्य प्राचीन कवियों ने—

म्लेच्छान्मूर्छयते
अप्यधार्मिक कुलम्।

आदि पदों से स्मरण किया है। भारत माता का इस समय द्रौपदी की तरह चीराकर्षण हो रहा है, देश के अनाथ बालक और साध्वी पतिव्रताओं का विधर्मियों के

द्वारा अपहरण हो रहा है, हिन्दुस्तान को पाकिस्तान बनाने का आयोजन विधर्मी कर रहे हैं, हमारे शासकों पर अत्याचारी नर-पिशाच निर्दयतापूर्वक आक्रमण कर रहे हैं। जन्मसिद्ध हमारा अधिकार हमारे हाथ से सर्वदा के लिये जा रहा है, भारत में अन्न और तृण की महर्घता से आर्तनाद उठ रहा है, भारत का गोधन सर्वदा के लिये उच्छिन्न हो रहा है, ऐसी विकराल परिस्थिति में हमारे प्रान्त के आसपास जो महानुभाव साधुवेश में अपनी दुर्वासनाओं को पूरा करने के लिये रासलीला में धन का दुरुपयोग कर रहे हैं भगवान् उनको सुबुद्धि दें, जिससे वे दुरुपयोग से धन बचाकर सदुपयोग में लगा सकें।

वर्तमान समय में हर एक साधु और गृहस्थ को जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के आदर्श अपने समक्ष में रख कर काम करना चाहिये। जिसका कि उन्होंने अपने जीवन में पालन करके दिखाया है। भगवान् के आदेशों की सूची इस प्रकार है :—

(१) जीवन को तपोमय बनाना।

(२) त्याग का आदर्श समक्ष में रखना।

(३) आत्मा को स्वतन्त्र करना।

(४) स्वयं प्रकाश में पहुंच कर औरों को अन्धकार से बचाना।

(५) अपने पूर्वजों का लक्ष्य कदापि न भूलना।

(६) अहङ्कार छोड़ कर निष्काम कर्म करना।

(७) ईश्वर पर सर्वत्र विश्वास रखना।

(८) सचाई के साथ सब काम करना।

भगवान् के इन आठ आदर्शों को अपने सामने रख कर संसार में जो काम करेगा, उसको प्रत्येक कार्य्य में सफलता प्राप्त होगी। आज कल गृहस्थों की बात कौन कहे? साधु-वेष-धर बहुत से महात्माभी अपना जीवन विलासमय बिता रहे हैं जिसका असर संसार पर बुरा पड़ रहा है।

भगवान् के जीवन में एक भी बात ऐसी नहीं पाई जाती है, जो उनके कथन के विरुद्ध आचरण में आई हो। चित्र में उनका भव्य-भेष स्वयं अपने आदर्श का उदाहरण रूप हो रहा है, जिसको देख कर अपरिचित मनुष्य भी उनके आदर्श का अनुमान कर सकता है।

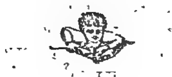
भगवान् के जीवन में त्याग की मात्रा सब से बढ़ी हुई है, जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण बादशाह की दी हुई भेट का छोड़ना है, जिसमें दस अरब रुपया था। उनका तपोजीवन चित्र से झलक रहा है। आत्मा की स्वतन्त्रता उनके उस कथन से प्रतीत होती जो उन्होंने निर्भय होकर बादशाह के समक्ष कहा था। उनका जीवन स्वयं प्रकाशमय और उनके सदुपदेशों से हिन्दू जनता भी उस समय प्रकाश में आचुकी थी। यदि न

आई होती तो वह अपना जीवन नहीं रख सकती थी। भगवान् ने अपने जीवन में अपने पूर्वज गुरु सनकादि मुनियों का जो लक्ष्य था उसको पूरा करके दिखलाया। रहा ईश्वर में विश्वास ? और सचाई से संसार मे काम करना ? उसके लिये उनका कथन और कथनानुकूल आचरण जनता के समक्ष मे है। इन बातों से भगवान् के कथन और आचरण में कोई अन्तर नहीं मिलता है। एक धर्माचार्य में यही बात होनी चाहिये, जो उनमें मिलती है।

जो महानुभाव आज कल स्वराज्य प्राप्ति के लिये "रामाय स्वस्ति" के साथ २ "रावणाय स्वस्ति" का भी पदे पदे समर्थन कर रहे हैं उनके साथ हमारे विचारों का सर्वदा से विरोध चला आ रहा है। हम देखते हैं कि अग्नि और जल का एक देश में जीवन नहीं रह सकता है प्रकाश और अन्धकार मे कदापि मेल नहीं हो सकता है अधर्म और धर्म आपस में कभी नहीं मिल सकते हैं। इन बातों को जान कर भी जो स्वभावतः अशान्ति प्रिय कलहवर्धक देव गो द्विज द्रोही यवनों को साथ लेकर भारत में शान्ति स्थापन करना चाहते हैं उनके लिये हम क्या कहें ? रक्षक ही जिनका भक्षक हो उसकी रक्षा ईश्वर के अतिरिक्त कौन कर सकता है ?

इसलिये इस समय देश की रक्षा के लिये प्रत्येक हिन्दू को जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का अनुकरण करना चाहिये जिससे हिन्दू जाति का अभ्युत्थान हो, देश स्वावलम्बी हो दुःख और दारिद्र्य दूर हो यही हमारा अपने मित्रों से बार बार अनुरोध है इतना लिख कर अब हम इस भूमिका को यहीं पर समाप्त करते हैं।

—अखिलानन्द ।



सप्तम सर्ग

इसमें काशी निवासी दिग्विजयी सोमनाथ त्रिपाठी के साथ काश्मीर की राजधानी श्रीनगर में श्रीचन्द्र महाराज का शास्त्रार्थ और उसमें काशीस्थ सोमनाथ त्रिपाठी का पराजय आदि अनेक विषय हैं।

अष्टम सर्ग

इसमें शास्त्रार्थ के दूसरे दिन फिर दुबारा शास्त्रार्थ और उसमें दुबारा पराजित सोमनाथ को श्रीविश्वनाथजी का स्वप्न में दर्शन और शारदा पीठाधीश्वरी भगवन्या सरस्वती के आदेश से सोमनाथ का काशी को लौटना और शारदा का सर्वाङ्गीण वर्णन करना आदि विषय हैं।

नवम सर्ग

इसमें काश्मीर में रहकर श्रीचन्द्र जी के द्वारा वेदों पर चन्द्रभाष्य लिखना तथा वेदाङ्ग, दर्शन-शास्त्र, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र आदि पर विवेचन करना, और उस पर प्रसन्न होकर सरस्वती देवी का प्रत्यक्ष होकर अनुमोदन देना आदि विषय हैं।

दशम सर्ग

इसमें भाष्य सम्पादन के अनन्तर श्रीचन्द्र भगवान् का भारत भ्रमण के लिये प्रस्थान विचार, उस समय समस्त शकुनों का अनायास उपस्थित होना, भगवान् का हिमालय गमन और हिमालय की सुषमा का वर्णन किया गया है। [यहां तक इस महाकाव्य का पूर्वार्द्ध है]।

एकादश सर्ग

इसमें सर्व प्रथम योगसिद्धि का वर्णन, तदुत्तर नैपाल देश गमन, वहां पर राजकृत भगवान् का सम्मान, वहां से अनेक वनों में भ्रमण कर पशुपतिनाथ के दर्शनार्थ कनकपुर गमन, बीच में आये हुए वनों में वनदेवी का प्रश्नोत्तर, वहां से अच्छोद सर की यात्रा करते हुए कैलाश पर जाकर श्रीशङ्कर जी का दर्शन, इसी प्रसङ्ग में अच्छोद सर का वर्णन, हेमकूट, क्रौञ्चादि आदि पर्वत वर्णन, मान सरोवर होकर गङ्गावतरण तीर्थ में श्रीगङ्गास्तव, वहां से कालाद्रि होकर यमुनावतार गमन, बीच में क्रम प्राप्त केदार, बदरीश, होकर नन्द प्रयागादि होते हुए हरद्वार आना आदि अनेक दर्शनीय विषय हैं। [यहाँ पर उत्तर दिग्विजय समाप्त किया गया है]।

द्वादश सर्ग

इसमें हरद्वार से चलकर इन्द्रप्रस्थ, मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन, गोकुल होते हु

करना, वहां से सुदामापुरी होकर मार्ग में कच्छ और गुजरात में धर्मोपदेश करते-करते आबू पहुंचना वहां पर वेद मुनि के आश्रम में कुछ दिन रहकर मेवाड़ में एकलिङ्ग महादेव के दर्शनार्थ पहुंचना, वहां पर कुछ दिन ठहरकर महाराणा प्रताप को वीरोचित उपदेशदेना, महाराणा के पूछने पर अपने वंश का परिचय देना, उसको सुनकर महाराणा का मुनि के चरणों पर गिरना, भगवान् का महाराणा के प्रति भविष्यवाणी कहना, उसको सुनकर महाराणा का घर जाना और भगवान् का हारीताश्रम में जाकर समाधिस्थ होना, यहीं पर कुछ दिन ठहर कर यहां से जोधपुर, बीकानेर होते हुए कश्मीर पहुंचकर श्रीनगर में ठहरने की इच्छा से (*द्वितीय विश्राम ?*) वहां पर रहकर पण्डित हरिदत्त के पुत्र कमलासन और बालकृष्ण को शिष्य बनाना, वहीं पर जयदेव के पुत्र गोविन्ददेव और पुण्यदेव को शिष्य बनाना और वरदान देना, वहां से फिर सिन्ध पहुंचकर अपने भक्तों को (उत्तेजनात्मक) उपदेश देना और उद्धत (मिरजा) को हुङ्कारमात्र से नष्ट कर समाधिस्थ होना, समाधि काल में अपने पास आते हुए महाराणा प्रताप को मार्ग में आता हुआ देखकर बीच में ही स्वप्न में दर्शन देकर रोकना, भामाशाह से स्वप्न में बात करके प्रताप को धन दिलवाना, प्रताप को स्वप्न में दर्शन देकर युद्ध के लिये अपने देश को वापिस भेजना (दोनों स्वप्नों का विस्पष्ट वर्णन) भामाशाह के धन से अपना बल एकत्र कर प्रताप का युद्ध में प्रवृत्त होना, युद्ध में बत्तीस दुर्गों पर प्रताप का अधिकार, सिन्ध का उद्धार करके फिर श्रीनगर पहुंचकर विश्राम की इच्छा से भगवान् का (तृतीय विश्राम ?) यहां पर कुछ दिन ठहर कर विधवा ब्राह्मणी के एक मृत पुत्र को जीवन देना इस घटना को सुन कर उत्तप्त हुए (याकूब) को चमत्कार दिखाना अधजली लकड़ी को जमीन में गाड़ कर हरा भरा वृक्ष बनाना (याकूब) के पेट में शूल पैदा करके उसको शाप देकर मारना, इसके अनन्तर श्रीनगर से कादराबाद आना, वहां से (जहांगीर) बादशाह का निमन्त्रण पाकर लाहौर जाना, वहां से बादशाह की सभा में चमत्कार दिखाकर यवनों के मन में भय उत्पन्न करना, अपनी गुदड़ी का प्रभाव दिखाकर बादशाह को त्रस्त करना, (गुदड़ी का विलक्षण चमत्कार) बादशाह को अपनी शक्ति दिखाकर उसके (मूक प्रश्नों का) यथार्थ उत्तर देना, उत्तर को सही मानकर बादशाह की ओर से भेट में आये हुये धन का त्याग करना, लाहौर से कादराबाद आकर राजाराम के पुत्र कर्ताराय को अपना शिष्य बनाना, और कर्त्ताराय के शिष्य संगतदेव (सत्य स्वम्भु) को अपना शिष्य बनाकर वरदान के प्रभाव से उसको एक शाखा का सञ्चालक बनाना, और वहां से रामेश्वर के लिये प्रस्थित होकर आगरा मार्ग से दिल्ली आना, वहां से मथुरा, आगरा, भरतपुर, करौली, धौलपुर, ग्वालियर, ललितपुर, नागपुर होते हुए रामगिरि पहुंचना, वहां से पूना मद्रास आदि नगरों में होते हुये रामेश्वर पहुंचना, वहां से सेतुबन्ध देखकर (दक्षिण

सप्तम सर्ग

इसमें काशी निवासी दिग्विजयी सोमनाथ त्रिपाठी के साथ काश्मीर की राजधानी श्रीनगर में श्रीचन्द्र महाराज का शास्त्रार्थ और उसमें काशीस्थ सोमनाथ त्रिपाठी का पराजय आदि अनेक विषय हैं।

अष्टम सर्ग

इसमें शास्त्रार्थ के दूसरे दिन फिर दुबारा शास्त्रार्थ और उसमें दुबारा पराजित सोमनाथ को श्रीविश्वनाथजी का स्वप्न में दर्शन और शारदा पीठाधीश्वरी जगदम्बा सरस्वती के आदेश से सोमनाथ का काशी को लौटना और शारदा का सर्वाङ्गीण वर्णन करना आदि विषय हैं।

नवम सर्ग

इसमें काश्मीर में रहकर श्रीचन्द्र जी के द्वारा वेदों पर चन्द्रभाष्य लिखना तथा वेदाङ्ग, दर्शन-शास्त्र, उपनिषद्, गृह्यसूत्र आदि पर विवेचन करना, और उस पर प्रसन्न होकर सरस्वती देवी का प्रत्यक्ष होकर अनुमोदन देना आदि विषय हैं।

दशम सर्ग

इसमें भाष्य सम्पादन के अनन्तर श्रीचन्द्र भगवान् का भारत भ्रमण के लिये प्रस्थान विचार, उस समय समस्त शकुनों का अनायास उपस्थित होना, भगवान् का हिमालय गमन और हिमालय की सुषमा का वर्णन किया गया है। [यहां तक इस महाकाव्य का पूर्वार्द्ध है]।

एकादश सर्ग

इसमे सर्व प्रथम योगसिद्धि का वर्णन, तदुत्तर नैपाल देश गमन, वहां पर राजकृत भगवान् का सम्मान, वहां से अनेक वनों में भ्रमण कर पशुपतिनाथ के दर्शनार्थ कनकपुर गमन, बीच में आये हुए वनों मे वनदेवी का प्रश्नोत्तर, वहां ॥ अच्छोद सर की यात्रा करते हुए कैलाश पर आकर श्रीशङ्कर जी का दर्शन, इसी प्रसङ्ग मे अच्छोद सर का वर्णन, हेमकूट, क्रौञ्चादि आदि पर्वत वर्णन, मान सरोवर होकर गङ्गावतरण, तीर्थ में श्रीगङ्गास्तव, वहां से कालाद्रि होकर यमुनावतार गमन, बीच में क्रम प्राप्त केदार, बदरीश, होकर नन्द प्रयागादि होते हुए हरद्वार आना आदि अनेक दर्शनीय विषय हैं। [यहीं पर उत्तर दिग्विजय समाप्त किया गया है]।

द्वादश सर्ग

इसमें हरद्वार से चलकर इन्द्रप्रस्थ, मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन, गोकुल होते हुए

करना, वहां से सुदामापुरी होकर मार्ग में कच्छ और गुजरात में धर्मोपदेश करते-करते आबू पहुंचना वहां पर वेद मुनि के आश्रम में कुछ दिन रहकर मेवाड़ में एकलिङ्ग महादेव के दर्शनार्थ पहुंचना, वहां पर कुछ दिन ठहरकर महाराणा प्रताप को वीरोचित उपदेशदेना, महाराणा के पूंछने पर अपने वंश का परिचय देना, उसको सुनकर महाराणा का मुनि के चरणों पर गिरना, भगवान् का महाराणा के प्रति भविष्यवाणी कहना, उसको सुनकर महाराणा का घर जाना और भगवान् का हारीताश्रम में जाकर समाधिस्थ होना, यहीं पर कुछ दिन ठहर कर यहां से जोधपुर, बीकानेर होते हुए कश्मीर पहुंचकर श्रीनगर में ठहरने की इच्छा से (*द्वितीय विश्राम ?*) यहां पर रहकर पण्डित हरिदत्त के पुत्र कमलासन और बाल-*कृष्ण को शिष्य बनाना, यहीं पर जयदेव के पुत्र गोविन्ददेव और पुष्पदेव को शिष्य* बनाना और वरदान देना, यहां से फिर सिन्ध पहुंच कर अपने भक्तों को (उत्तेजनात्मक) उपदेश देना और उद्दत (मिरजा) को हुङ्कारमात्र से नष्ट कर समाधिस्थ होना, समाधि काल में अपने पास आते हुए महाराणा प्रताप को मार्ग में आता हुआ देखकर बीच में ही स्वप्न में दर्शन देकर रोकना, भामाशाह से स्वप्न में बात करके प्रताप को धन दिल-वाना, प्रताप को स्वप्न में दर्शन देकर युद्ध के लिये अपने देश को वापिस भेजना (दोनों स्वप्नों का विस्पष्ट वर्णन) भामाशाह के धन से अपना बल एकत्र कर प्रताप का युद्ध में प्रवृत्त होना, युद्ध में बत्तीस दुर्गों पर प्रताप का अधिकार, सिन्ध का उद्धार करके फिर *श्रीनगर* पहुंचकर *विश्राम की इच्छा से भगवान् का (तृतीय विश्राम ?)* यहां पर कुछ दिन ठहर कर विधवा ब्राह्मणी के एक मृत पुत्र को जीवन देना इस घटना को सुन कर उत्तप्त हुए (याकूब) को चमत्कार दिखाना अधजली लकड़ी को जमीन में गाड़ कर हरा भरा *वृक्ष* बनाना (याकूब) के पेट में *शूल* पैदा करके उसको शाप देकर मारना, इसके अनन्तर श्रीनगर से कादराबाद आना, वहां से (जहांगीर) बादशाह का निमन्त्रण पाकर लाहौर जाना, वहां से बादशाह की सभा में चमत्कार दिखाकर यवनों के मन में भय उत्पन्न करना, अपनी गुदड़ी का प्रभाव दिखाकर बादशाह को त्रस्त करना, (गुदड़ी का विलक्षण चमत्कार) बादशाह को अपनी शक्ति दिखाकर उसके (मूक प्रश्नों का) यथार्थ उत्तर देना, उत्तर को सही मानकर बादशाह की ओर से भेंट में आये हुये धन का त्याग करना, लाहौर से कादराबाद आकर राजाराम के पुत्र कर्त्ताराय को अपना शिष्य बनाना, और कर्त्ताराय के शिष्य संगतदेव (सत्य श्मश्रु) को अपना शिष्य बना-कर वरदान के प्रभाव से उसको एक राजा का सम्राज्ञ बनाना, और वहां से रामेश्वर के लिये प्रस्थित होकर आकाश मार्ग से दिल्ली आना, वहां से मथुरा, आगरा, भरतपुर, करौली, धौलपुर, गवालियर, ललितपुर, नागपुर होते हुए रामगिरि पहुंचना, वहां से पूना मद्रास आदि नगरों में होते हुये रामेश्वर पहुंचना, वहां से सेतुबन्ध देखकर (दक्षिण

उसको देखकर बालहास का अपने गुरुभाइयों के प्रति कर्तव्य निर्देश, गुरुसंदिष्ट कार्यों का अनुगमन निश्चय, अपना अपना मण्डल बनाकर भगवान् के आदेशों का पालन क्रम, सर्व प्रथम भगवान् के शिष्य बालहास का आदेश पालन करते करते समाधिस्थ होना, बालहास परिचय, देहरादून में बालहास की समाधि, बालहास मण्डल का प्रचार कार्य, बालहास की चौदहवीं पीढ़ीमें महन्त सुन्दरदासजी का होना, उनकी शिष्य परम्परा में मुनि रामानन्द जी का परिचय और बालहास शाखा के कार्यक्रम की समाप्ति पर (प्रथम विश्राम ?) भगवान् के द्वितीय शिष्य अलिमत्त मुनि की प्रशस्ति और उसका कार्यक्षेत्र कार्यक्रम कार्य करते-करते वाराणसी में समाधिस्थ होना, अलिमत्त मुनि शाखा द्वारा स्थापित काशी में तीन विद्यालय वर्तमान मुनि-मण्डल के द्वारा उन तीनों का सञ्चालन, पूर्णानन्द मुनिस्थापित निमानी ग्राम स्थित शारदा विद्यालय, उनकी शिष्य प्रशिष्य परम्परा में अनेक मुनि-मण्डलों का कार्यक्रम और अलिमत्त शाखाके कार्यक्रम निर्देशानन्तर द्वितीय विश्राम (१) भगवान्के तृतीय शिष्य गोविन्ददेवकी प्रशस्ति, उनका कार्यक्षेत्र, कार्य परिचय, उनकी शाखामें पञ्चम स्थानपर रामदेव मुनिका प्रादुर्भाव, रामदेवका कार्य परिचय, इनके शिष्य प्रशिष्योंमें महात्मा प्रियतमदास और संतोषदास जी का प्रादुर्भाव, प्रियतमदास जी के कार्यों का परिचय, दस लाख रुपया दक्षिण हैदराबाद से लाकर प्रयाग में नये और पुराने कार्यालयों का प्रियतमदास तथा उनके सहयोगी सन्तोषदास जी के द्वारा स्थापन और सञ्चालन, वृन्दावन हरद्वार उज्जैन आदि स्थानों में गोविन्ददेव के शिष्य प्रशिष्यों द्वारा अनेक शाखा कार्यालयों का स्थापन, इसी शाखा के अन्यतम महात्मा चेतनदेव जी के द्वारा कनखल में मुनि मण्डल स्थापन, सनत्कुमाराश्रम का जीर्णोद्धार, इस तीसरी शाखा के द्वारा अन्य अनेक कार्यों का निर्देश लिखकर शाखा परिचय के अनन्तर तृतीय विश्राम (?)

भगवान् के चतुर्थ शिष्य पुष्पदेव की प्रशस्ति उनका कार्यक्षेत्र कार्यक्रम, इनकी शिष्य परम्परा में अनेक महात्माओं का प्रादुर्भाव, उनका कार्यक्षेत्र और कार्यक्रम भगवान् के चारों अन्तरङ्ग शिष्यों की कार्य पद्धति का निर्देश करके चतुर्थ विश्राम (?) भगवान् के अन्य शिष्य भक्तगिरि सोमनाथ प्रभृति आदि का कार्य परिचय, समाधिस्थल सङ्केत वर्तमान कार्यालय, पञ्चायतन की दस शाखाओं का विवेचन, अन्तरङ्ग बहिरङ्ग शिष्य विवेचन, पूर्व शाखा निर्देश, शाखा भेद, समय अतीतानागत मुनियों का विवरण क्रम, वैद्य सुन्दरदास जी के शिष्यों का निर्देश, वर्तमान महन्तों का निर्देश, अपनी मित्र मण्डली का निर्देश, वर्तमान समय में महन्तों के सम्पर्कों द्वारा सनातन धर्म की रक्षा का आयोजन, महन्तेश्वरों का वर्तमान प्रचार कार्य, कविवंश वर्णन भगवान् के श्रीचरणों में श्रद्धाञ्जलि समर्पण और निबन्ध समाप्ति सङ्केत आदि अनेक विषय हैं।



श्रीमान् योगिराज गुरु रामराय सिंहासनासीन शाहज़ादे गद्दी नशीन
श्री १०८ महन्त लक्ष्मणदास जी गुरुरामराय (देहरादून)

बी० एन० प्रेस इटावा।

आवश्यक विवरण



जिस महाकाव्य को लेकर आज हम मुनि-मण्डल में उपस्थित होते हैं, उसका मूल पद्य निर्माण हमने अनूपशहर में गङ्गा-तट पर किया। भाषानुवाद इटावा में यमुना-तट पर लिखा गया और इसका प्रथम प्रवचन अब त्रिवेणी के तट पर प्रयागीय कुम्भ महापर्व पर होने जारहा है, यह इसका अवसर प्राप्त माहात्म्य है।

समस्त ग्रन्थ तैयार होने पर हमने इसके प्रकाशनार्थ दो चार अपने अभिन्न हृदय मित्रों के समक्ष में इसकी चर्चा की, जिसको सुनकर उन मित्रों ने इसका मुद्रण-भार अपने ऊपर लेकर मुझे निश्चिन्त बना दिया; इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं। हमारे मित्रों के अनुरोध से जिन महानुभावों ने इसके प्रकाशन का व्यय स्वीकृत करके इसके प्रकाशन के लिये जल्दी से जल्दी समस्त आयोजन एकत्र करदिया, उनके नाम धन्यवाद के साथ सहायक सूची में प्रकाशित किये गये हैं।

हमारी मातृ-भाषा संस्कृत होने के कारण इसके भावानुवाद में प्रायः संस्कृत पदों का समावेश हुआ है, इसके लिये हम मजबूर हैं। हम अपनी स्वाभाविक लेखन-शैली के बदलने में सर्वथा असमर्थ हैं। जिन ग्रन्थों के आधार पर यह महाकाव्य लिखा गया है, उनका नाम निर्देश अनुवाद में दिया गया है। इसका असली रसास्वादन वे ही कर सकते हैं, जो संस्कृत-साहित्य पर अपना पूरा २ अधिकार रखते हों। इसमें जो क्रम निर्धारित किया गया है और जिन विषयों का इसमें समावेश किया गया है, उनका उत्तरदायित्व हमारे ऊपर निर्भर है। जिनको कुछ पूंछना हो, वे हमसे-हमारे मकान पर पत्र भेज कर पूंछ सकते हैं।

पहिले काशी में इस ग्रन्थ के छपाने का विचार हुआ था, परन्तु वहां का जल-वायु अनुकूल न होने कारण अन्त में वह बदल दिया गया। शीघ्रता के कारण इसके प्रूफ देखने में सम्भवतः त्रुटियां हुई हैं, परन्तु वे इतनी नहीं हैं, जिनके लिये शुद्धाशुद्धि पत्र छापा जावे, विद्वान् प्रसंग लगाकर उनको स्वयं ठीक कर सकते हैं।

हमने कुछ दिनों से अपने मकान पर बैठ कर चित्ताकर्षण विद्या का भी अभ्यास किया है, जिससे हम मनोयोग द्वारा पुरातन महात्माओं को बुला कर उनसे प्रत्यक्षवत् बात करते हैं। इस विद्या के प्रभाव से हमने अनेक संदिग्ध विषयों में काम लिया है। इस विद्या के जानने वाले दो चार हमारे मित्र मुनि-मण्डल में अब भी विद्यमान हैं, जिनसे हमने इसका अभ्यास किया है।

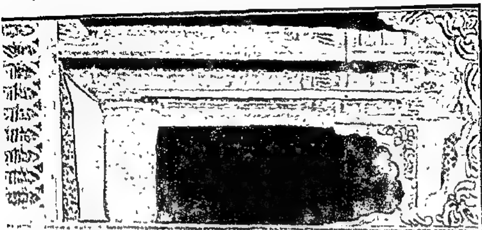
इस महाकाव्य का निर्माण साहित्य-दर्पण में लिखे हुये महाकाव्य के लक्षण को लक्ष्य में रखकर किया गया है। लक्षण की कुछ मोटी २ बातें पाठकों की जानकारी के लिये हम यहां पर लिखते हैं; उनमें पहिली बात सर्ग बन्ध है, जो प्रस्तुत ग्रन्थ में स्पष्ट है। दूसरी बात काव्य-नायक के विषय में है। काव्य-नायक देवता अथवा प्रसिद्ध क्षत्रिय-वंश प्रसूत होना चाहिये, यह दोनों बातें इस महाकाव्य के चरित्र-नायक में विद्यमान हैं। भगवान श्रीचन्द्र शिवावतार होने के कारण देवतुल्य और क्षत्रियों के प्रसिद्ध वेदि वंश में उत्पन्न हुए। तीसरी बात रस के विषय में है। महाकाव्य में शृंगार वीर और शान्त इन तीन रसों में एक प्रधान रस अवश्य होना चाहिये। प्रस्तुत महाकाव्य में प्रधान रूप से वीर और उसका सहयोगी शान्त रस है। नायक के स्वरूप और स्वभाव में शान्त रस प्रत्यक्ष है, और युद्ध में वीर रस का आना उसके लिये स्वाभाविक है। चौथी बात वृत्तबन्ध के विषय में है। महाकाव्य के सर्गों में एक छन्द रहना चाहिये और सर्ग के अन्तिम पद्य में प्रायः छन्द बदलना चाहिये। प्रस्तुत काव्य में दोनो बातें प्रायः विद्यमान है। पांचवीं बात किसी सर्ग में अनेक छन्दों का होना है। प्रस्तुत महाकाव्य में कई सर्ग इस प्रकार के हैं। छठी बात—सर्ग के अन्त में भावी सर्ग की सूचना देने के विषय में है जो प्रस्तुत महाकाव्य में सब सर्गों के अन्त में है। सातवीं बात—सर्ग संख्या के विषय में है। महाकाव्य में छोटे-मोटे सब मिलाकर आठ से अधिक सर्ग होने चाहिये। प्रस्तुत महाकाव्य में अठारह सर्ग हैं। आठवीं बात—सन्ध्या समय, रात्रि, अन्धकार, शैल, ऋतु, वन, सागर आदि के वर्णन के विषय में है। प्रस्तुत महाकाव्य में स्थल-स्थल पर इन बातों का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार अन्य भी कुछ लक्षण हैं, जिनका प्रस्तुत महाकाव्य में समय-समय पर प्रसङ्गोपात्त समन्वय किया गया है।

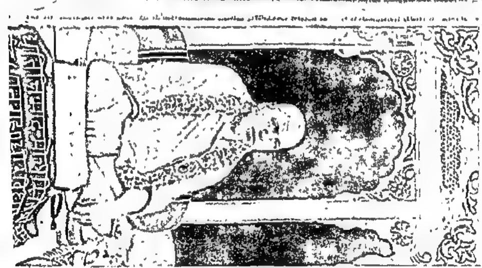
शब्द रचना के विषय में और शब्दार्थगत गुणदोष के विषय में हमको कुछ कहना नहीं है। इन बातों का अनुभव साहित्यज्ञों को स्वयं रहता है। अब रहा अलङ्कार विषय? उसका भी अनुभव रमज्ञ ही कर सकते हैं। इसलिये इस विषय में अधिक लिखना अच्छा प्रतीत नहीं होता है। इसके पढ़ने के समय पाठकों को इसमें अनेक महाकाव्यों की छटायें देखने को मिलेंगी, जो साहित्य मर्मज्ञों के लिये आमोद प्रमोद बढ़ाने में सहायक होंगी। इतने पर भी यदि किसी को इसके पढ़ने के समय मात्सर्यवश अथवा ईर्ष्या के कारण कुछ कष्ट का अनुभव करना पड़े तो इसके लिये हम उनसे साञ्जलि बन्ध अभी से क्षमा चाहते हैं। आशा है कि वे अपनी उदारता से अवश्य हमको क्षमा प्रदान करेंगे।

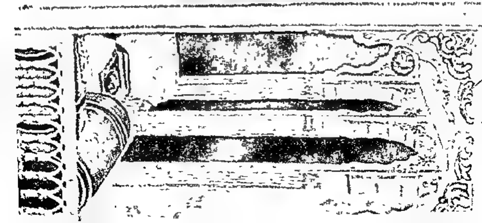
निवेदकः—अखिलानन्द शर्मा पाठक

मु० पो० अनूपशहर, जिला बुलन्दशहर (यू० पी०)

.रमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी उदासीन, महन्





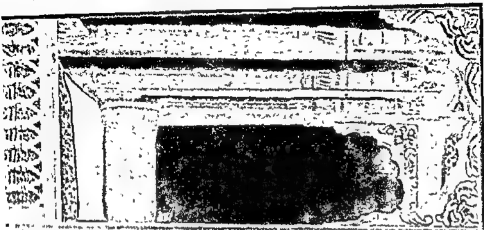


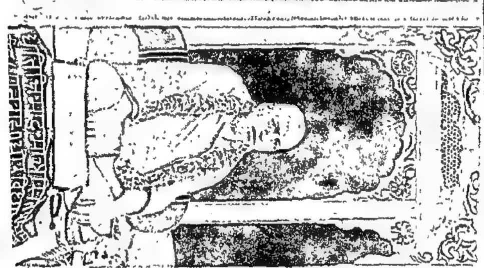
इस महाकाव्य का निर्माण साहित्य-दर्पण में लिखे हुये महाकाव्य के लक्षण को लक्ष्य में रखकर किया गया है। लक्षण की कुछ मोटी २ बातें पाठकों की जानकारी के लिये हम यहां पर लिखते हैं; उनमें पहिली बात सर्ग बन्ध है, जो प्रस्तुत ग्रन्थ में स्पष्ट है। दूसरी बात काव्य-नायक के विषय में है। काव्य-नायक देवता अथवा प्रसिद्ध क्षत्रिय-वंश प्रसूत होना चाहिये, यह दोनों बातें इस महाकाव्य के चरित्र-नायक में विद्यमान हैं। भगवान् श्रीचन्द्र शिवावतार होने के कारण देवतुल्य और क्षत्रियों के प्रसिद्ध वेदि वंश में उत्पन्न हुए। तीसरी बात रस के विषय में है। महाकाव्य में शृंगार वीर और शान्त इन तीन रसों में एक प्रधान रस अवश्य होना चाहिये। प्रस्तुत महाकाव्य में प्रधान रूप से वीर और उसका सहयोगी शान्त रस है। नायक के स्वरूप और स्वभाव में शान्त रस प्रत्यक्ष है, और युद्ध में वीर रस का आना उसके लिये स्वाभाविक है। चौथी बात वृत्तबन्ध के विषय में है। महाकाव्य के सर्गों में एक छन्द रहना चाहिये और सर्ग के अन्तिम पद्य में प्रायः छन्द बदलना चाहिये। प्रस्तुत काव्य में दोनों बातें प्रायः विद्यमान हैं। पांचवीं बात किसी सर्ग में अनेक छन्दों का होना है। प्रस्तुत महाकाव्य में कई सर्ग इस प्रकार के हैं। छठी बात—सर्ग के अन्त में भावी सर्ग की सूचना देने के विषय में है जो प्रस्तुत महाकाव्य में सब सर्गों के अन्त में है। सातवीं बात—सर्ग संख्या के विषय में है। महाकाव्य में छोटे-मोटे सब मिलाकर आठ से अधिक सर्ग होने चाहिये। प्रस्तुत महाकाव्य में अठारह सर्ग हैं। आठवीं बात—सन्ध्या समय, रात्रि, अन्धकार, शैल, ऋतु, वन, सागर आदि के वर्णन के विषय में है। प्रस्तुत महाकाव्य में स्थल-स्थल पर इन बातों का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार अन्य भी कुछ लक्षण हैं, जिनका प्रस्तुत महाकाव्य में समय-समय पर प्रसङ्गोपात्त समन्वय किया गया है।

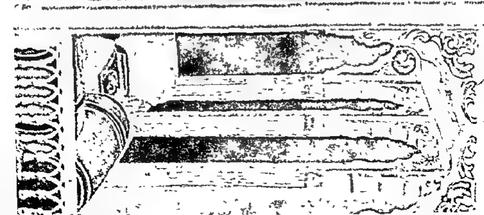
शब्द रचना के विषय में और शब्दार्थगत गुणदोष के विषय में हमको कुछ कहना नहीं है। इन बातों का अनुभव साहित्यज्ञों को स्वयं रहता है। अब रहा अलङ्कार विषय? उसका भी अनुभव रसज्ञ ही कर सकते हैं। इसलिये इस विषय में अधिक लिखना अच्छा प्रतीत नहीं होता है। इसके पढ़ने के समय पाठकों को इसमें अनेक महाकाव्यों की छटायें देखने को मिलेंगी, जो साहित्य मर्मज्ञों के लिये आमोद प्रमोद बढ़ाने में, सहायक होंगी। इतने पर भी यदि किसी को इसके पढ़ने के समय मात्सर्यवश अथवा ईर्ष्या के कारण कुछ कष्ट का अनुभव करना पड़े तो इसके लिये हम उनसे साञ्जलि बन्ध अभी से क्षमा चाहते हैं। आशा है कि वे अपनी उदारता से अवश्य हमको क्षमा प्रदान करेंगे।

निवेदक:—अखिलानन्द शर्मा पाठक
मु० पो० अनूपशहर, जिला बुलन्दशहर (यू० पी०)

.रमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी उदासीन, महन्







सहायक सूची

प्रथम श्रेणी के सहायक

१—श्रीमान् योगिराज गुरु रामराय सिंहासनासीन शाहज़ादे गद्दी नशीन श्री १०८ महन्त लक्ष्मणदास जी गुरुरामराय दरबार (देहरादून)

२—श्री १०८ योगिराज चनखण्डी सिंहासनासीन दानवीर महन्त श्री १०८ हरिनाम दास जी साधु बेला तीर्थ (सक्खर सिन्ध)

३— श्रीयुत सेठ हीरालाल जी बैंकर्स मिल मालिक की सुपुत्री श्रीमती देवी गजरा-बहिन एलिसब्रिज (अहमदाबाद)

४—सेठ भीखाभाई पटेल मिलमालिक की सुपुत्री श्रीमती देवी कमला बहिन (एलिस ब्रिज अहमदाबाद)

५—श्रीमती ललिता गौरीदेवी रामराय (नड़ियाद)

६—श्रीयुत वकील फूलशङ्कर सुन्दरलाल जी देसाई एलिस ब्रिज (अहमदाबाद)

द्वितीय श्रेणी के सहायक

७—श्री १०८ महन्त सन्तरामजी सङ्गलवाला अखाड़ा (अमृतसर)

८—श्री १०८ महन्त गुरुमुखदास जी अवधूत चेतनदेव की कुटिया (कनखल)

९—श्री १०८ योगिराज निर्वाण अर्जुनदास जी महाराज सङ्गलवाला अखाड़ (अमृतसर)

१०—श्रीयुत आयुर्वेदाचार्य शास्त्री रामदास जी श्रीचन्द्र औषधालय (मुलतान)



धन्यवाद

ऊपर लिखे हुए जिन महानुभावों ने इस पुण्य कार्य में सहयोग देकर हमारा उत्साह बढ़ाया है भगवान उनके प्रत्येक कार्य में सहयोग देकर उनके उत्साह को बढ़ावे यही भगवान् के श्रीचरणों में हमारी विनम्र प्रार्थना है और ऊपर लिखे हुये समस्त सज्जनों को बार-बार धन्यवाद है।

—ग्रन्थकार



सनातनधर्म विजय, जगद्गुरु श्रीचन्द्र दिग्विजय, परशुराम दिग्विजय,

जगद्गुरु श्री वल्लभदिग्विजय, हनुमद्विजय आदि

पद्यमहाकाव्य लेखक सनाढ्यवंशोद्भव

ग्रन्थकार—



अखिलानन्द शर्मा—पाठक

मु० पो० अनूपशहर जिला बुलन्दशहर, यू० पी०।

बी० एन० प्रेस इटावा

ब्रह्मणेनमः

श्रीचन्द्रमौलिचरितम्

महाकाव्यम्

प्रथमः सर्गः

दूरीकरोति दुरितानि शिवानि सूते
चिरवानि यस्य नमनं निगमप्रदिष्टम् ।
देवन्तमेव गिरिजातनयं गणेशं
भावाभिराममनसा वचसा नमाम- ॥१॥

वेद प्रतिपादित जिनका नमन समस्त दुरितों को दूर कर के कल्याणों का वरप करता है-उन दिव्य गुण वाले श्रीगणेश जी को हम मन और वाणी से प्रणाम करते हैं ॥१॥

यो भारतोद्धरणकामनया समस्तै-
र्देवैरभिष्टुतपदोऽवततार सद्यः ।
श्रीचन्द्रमौलिमिषतो निहितात्मशक्तिः
श्रेयः श्रियं म् दिशतादमृतांशुमौलिः ॥२॥

समस्त देवगणों के द्वारा वन्दनीय जो भगवान् शंकर भारत के उद्धार की इच्छा से-भारत में श्रीचन्द्र जी के रूप में प्रकट हुए वह हमको कल्याण और विभूतियों का प्रदान करें ॥२॥

यामन्तरा हरिहरावपि नैव लोके
कर्तुं क्षमौ किमपि सा जगदेकवन्द्या ।

माया गुणत्रयवती जगदादिहेतुः
सिद्धिं समादिशतु सादरमत्र शक्तिः ॥३॥

जिनके बिना इस विश्व में हरि और हर भी कुछ नहीं कर सकते—वह जगद्वन्द्य तीन गुण वाली-जगत् के उद्भव में आदि कारण-मायामय शक्ति हमारे इस काव्य में सिद्धि प्रदान करे ॥ ३ ॥

वर्णाः पदं ध्वनिरिति प्रथिताः समस्ते
यस्याः कला निगमवाङ्मयमात्रनिष्ठाः ।
सा भारती भगवती हृदयेश्वरी मे
काव्ये करोतु करुणारुणदृष्टिपातम् ॥४॥

ध्वनि-वर्ण-पद और वाक्य-इन चार भेदों से जिसने समस्त वाङ्मय व्याप्त किया है वह देवी सरस्वती-इस काव्य में करुणारुण दृष्टि का प्रदान करे ॥४॥

देवाइवाप्रतिमशक्तिभृतः प्रसिद्धा
ये भारते निगमगीतगुणप्रतिष्ठाः ।
ते मय्यनुग्रहपरम्परया समृद्धिं—
सर्वे दिशन्तु कवयः प्रणते यथावत् ॥५॥

अनन्त-शक्ति-संपन्न देवगणों के समान जो भारत में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं-वेव्यासादि कविगण विनम्र भाव से उपस्थित हुए मुझपर अनुग्रह पूर्वक समृद्धिप्रद आशीर्वाद परम्परा का प्रदान करें ॥ ५ ॥

अस्ति प्रसिद्धमिदमत्र मनुष्यलोके
श्रीचन्द्रमौलिमिषतः करुणावशेन ।
दाक्षायणीपतिरवातरदप्रमेय—
स्तद्वृत्तमेतदधुना विवृणोमि हर्षात् ॥६॥

जगत में यह बात प्रसिद्ध है कि भगवान्-शंकर जगत का उद्धार करने के लिये श्रीचन्द्र जी के रूप में भारत में प्रकट हुए हम उनका सर्वोत्तम चरित्र इस महाकाव्य में प्रस्तुत करते हैं ॥ ६ ॥

यः श्रौतमार्गमनघं प्रतिपद्य सद्यः
स्वात्मानमेव जनतोद्धरणप्रवीणः ।
आदर्शभूतमकरोद्गुणगौरवेण-
लोके शिवं स वितनोतु शिवावतारः ॥७॥

संसार के उद्धार में प्रवीण-पुण्यमय जीवन-जो भगवान् श्रीचन्द्र श्रौत मुनियों द्वारा प्रस्तुत मार्ग का अवलम्बन कर आदर्श रूप अपने जीवन को जनता में उपस्थित करचुके-वे शिवावतार-श्रीचन्द्र भगवान्-लोक में कल्याण की अभिवृद्धि करें ॥ ७ ॥

आदर्शतामुपगतं भुवि यच्चरित्रं
नानादिगन्तरगता मुनयो निशम्य ।
आनन्दमुन्नतिपथं प्रगतं निरोद्धुं
शेकुर्न कर्हिचिदगर्हितभावनिष्ठाः ॥८॥

अनेक देश स्थित श्रौत मुनिगण, जिन का आदर्श भूत चरित्र सुन कर, हृदयों में विद्यमान आनन्द परम्परा के रोकने में असमर्थ हुए ॥८॥

भारं भुवो विदलयन्नधुना धुनानः
पापानि पापमनसां मनसाप्यधृष्यः ।
श्रीचन्द्रएष भगवानिति यस्य गाथाः
पाथेयतामुपगता मदयांबभूवुः ॥९॥

पृथिवी का भार हलका करने वाले तथा पापियों का मन दहलाने वाले श्रीचन्द्र भगवान् अवतार ले चुके "यह बात सुन कर" श्रौत मुनि गण जिन की गाथाओं को अपनी जीवन यात्रा का पाथेय समझने लगे ॥ ९ ॥

यस्य प्रभावमभितः प्रसृतं निशम्य
धर्मद्विषो यवनतन्त्वविधानदक्षाः ।
स्वार्थप्रसाधनकथाः परिहाय दूरे
चिन्तावशेन मुमुहुर्दुधुवुः शिरांसि ॥१०॥

भारत में फैले हुए जिनके प्रभाव को सुन कर धर्म द्वेषी पीर पैगम्बर अपने नाश का समय पास में आया हुआ देख कर चिन्ता से मोह को प्राप्त हुए और अपना २ शिर पीटने लगे ॥ १० ॥

नैसर्गिकीमधिकसिद्धिममुष्य वित्वा
योगादिसाधनसमृद्धिजुषः प्रसिद्धाः ।
श्रीचन्द्रमेनमधिकं हृदये गृणन्तः
सन्तोप्यसन्तइव सिद्धगणा बभूवुः ॥११॥

अल्पसाधन वाले बहुत से योगी जिनको स्वभाव से ही अधिक योग सिद्धि वाला सुनकर ईर्ष्या वश मन में चिन्तित होकर भी इनके चरित्र को आदरणीय मानने लगे ॥ ११ ॥

आलोकिताखिलजगद्धृदयं यमेनं
श्रीचन्द्रमेकमनसा हृदि संस्मरन्तः ।
देवाः प्रसन्नमनसो मनसि स्थितानि
संमेनिरे जगति पूर्तिमुपागतानि ॥१२॥

समस्त विश्व की व्यवस्था देखने वाले श्रीचन्द्र भगवान् को हृदय में जानकर इन्द्रादि देवगण भी अपने २ हृदयों में विद्यमान समस्त कार्यों को सम्पन्न समझने लगे ॥ १२॥

नानाविधप्रणयनैरुपबृंहितानि
तन्त्राणि येन महता बहुशो विविच्य ।
वामाअपि स्ववचनैर्निगमेष्ववामाः
सम्पादिता इति वदन्त्यधुनापि वृद्धाः ॥१३॥

अनेक प्रकार की विचित्र रचनाओं से पूर्ण तान्त्रिक विद्याओं को जानकर जिन्होंने उलटा अर्थ समझने वाले तान्त्रिकों को अपने प्रभाव से वैदिक मार्ग का पथिक बनाया ॥ १३ ॥

लब्ध्वागुरुं तमविनाशिनमादरेण
तद्बोधितानि भुवनोद्धरणक्षमाणि ।

कर्माणि येन रभसाद्भुवने विधाय
सन्दर्शिता गुरुजनप्रवणातिभक्तिः ॥१४॥

अविनाशी गुरु को प्राप्त होकर जिन्होंने उनके बतलाए हुए समस्त कार्यों को जगत में समाप्त करे अपनी लोकोत्तर गुरु भक्ति का पूर्ण परिचय दिया ॥ १४ ॥

येनार्बुदे गिरिवरे विहितासनस्य
लोकोत्तरस्य गुरुवर्यगुरोः क्रमेण ।
कर्माणि पूर्तिमुपयापयता कृतानि
सत्यानि किन्न भुवि वेदमुनेर्वचांसि ॥१५॥

अर्बुद गिरि पर निवास करने वाले अविनाशी मुनि के परम गुरु श्री वेद मुनि की आज्ञाओं का यथावत् पालन कर जिन्होंने समस्त गुरु जनों का आदेश यथासमय पूर्ण किया ॥ १५ ॥

यस्याद्भुताः प्रथितसुन्दरबाललीलाः
कौतूहलोद्वहनगौरवमावहन्त्यः ।
कुर्वन्ति कौतुकमनल्पतया निविष्टाः
श्रोत्रेषु दैशिकधियामपि किन्न वेगात् ॥१६॥

अनेक प्रकार की आश्चर्य मय घटनाओं का स्मरण दिलाने वाली जिनकी बाल लीलायें बार २ श्रोत्र पथमें प्रविष्ट होकर विचारशील पुरुषों को भी चकित करती हुई आज भी अपना चमत्कार दिखा रही हैं ॥ १६ ॥

अद्यापि यस्य महिमोन्नतशैशवस्य
देवस्य दिव्यचरितामृतसागरस्य ।
आकर्णितानि चरितानि मनोहराणि
चित्ते जवेन जनयन्ति मुदं समन्तात् ॥१७॥

अनेक महिमा मय जिनके बाल्य चरित्र गुण गौरव युक्त होने के कारण समस्त जनता का मन अपनी ओर आकृष्ट कर विलक्षण आनन्द का अनुभव कराते हैं ॥ १७ ॥

भारत में फैले हुए जिनके प्रभाव को सुन कर धर्म द्वेषी पीर पैगम्बर अपने नाश का समय पास में आया हुआ देख कर चिन्ता से मोह को प्राप्त हुए और अपना २ शिर पीटने लगे ॥ १० ॥

नैसर्गिकीमधिकसिद्धिममुष्य विरवा
योगादिसाधनसमृद्धिजुषः प्रसिद्धाः ।
श्रीचन्द्रमेनमधिकं हृदये गृणन्तः
सन्तोप्यसन्तइव सिद्धगणा बभूवुः ॥११॥

अल्पसाधन वाले बहुत से योगी जिनको स्वभाव से ही अधिक योग सिद्धि वाला सुनकर ईर्ष्या वश मन में चिन्तित होकर भी इनके चरित्र को आदरणीय मानने लगे ॥ ११ ॥

आलोकिताखिलजगदुधृदयं यमेनं
श्रीचन्द्रमेकमनसा हृदि संस्मरन्तः ।
देवाः प्रसन्नमनसो मनसि स्थितानि
संमेनिरे जगति पूर्तिमुपागतानि ॥१२॥

समस्त विश्व की व्यवस्था देखने वाले श्रीचन्द्र भगवान् को हृदय में जानकर इन्द्रादि देवगण भी अपने २ हृदयों में विद्यमान समस्त कार्यों को सम्पन्न समझने लगे ॥ १२॥

नानाविधप्रणयनैरुपबृंहितानि
तन्त्राणि येन महता बहुशो विविच्य ।
वामाअपि स्ववचनैर्निगमेष्ववामाः
संपादिता इति वदन्त्यधुनापि वृद्धाः ॥१३॥

अनेक प्रकार की विचित्र रचनाओं से पूर्ण तान्त्रिक विद्याओं को जानकर जिन्होंने उलटा अर्थ समझने वाले तान्त्रिकों को अपने प्रभाव से वैदिक मार्ग का पथिक बनाया ॥ १३ ॥

लब्ध्वागुरुं तमविनाशिनमादरेण
सद्बोधितानि भुवनोद्धरणक्षमाणि ।

कर्माणि येन रभसाद्भुवने विधाय
सन्दर्शिता गुरुजनप्रवणातिभक्तिः ॥१४॥

अविनाशी गुरु को प्राप्त होकर जिन्होंने उनके बतलाए हुए समस्त कार्यों को जगत में समाप्त कर अपनी लोकोत्तर गुरु भक्ति का पूर्ण परिचय दिया ॥ १४ ॥

येनार्बुदे गिरिवरे विहितासनस्य
लोकोत्तरस्य गुरुवर्यगुरोः क्रमेण।
कर्माणि पूर्तिमुपयापयता कृतानि
सत्यानि किन्न भुवि वेदमुनेर्वचांसि ॥१५॥

अर्बुद गिरि पर निवास करने वाले अविनाशी मुनि के परम गुरु श्री वेद मुनि की आज्ञाओं का यथावत् पालन कर जिन्होंने समस्त गुरु जनों का आदेश यथासमय पूर्ण किया ॥ १५ ॥

यस्याद्भुताः प्रथितसुन्दरबाललीलाः
कौतूहलोद्वहनगौरवमावहन्त्यः।
कुर्वन्ति कौतुकमनल्पतया निविष्टाः
श्रोत्रेषु दैशिकधियामपि किन्न वेगात् ॥१६॥

अनेक प्रकार की आश्चर्य मय घटनाओं का स्मरण दिलाने वाली जिनकी बाल लीलायें बार २ श्रोत्र पथमें प्रविष्ट होकर विचारशील पुरुषों को भी चकित करती हुई आज भी अपना चमत्कार दिखा रही हैं ॥ १६ ॥

अद्यापि यस्य महिमोन्नतशैशवस्य
देवस्य दिव्यचरितामृतसागरस्य।
आकर्णितानि चरितानि मनोहराणि
चित्ते जवेन जनयन्ति मुदं समन्तात् ॥१७॥

अनेक महिमा मय जिनके बाल्य चरित्र गुण गौरव युक्त होने के कारण समस्त जनता का मन अपनी ओर आकृष्ट कर विलक्षण आनन्द का अनुभव कराते हैं ॥१७॥

दैवादनेन मुनिना शिशुनातिबाल्ये
दैन्योपपीडितजनाय गृहागताय।
दत्ताः प्रसन्नमनसा बहुमूल्यमुक्ता
मुक्तात्मनामपि मनो मदयन्ति हर्षात् ॥१८॥

दैव योग से आपने एक बार अपने गृह द्वार पर आए हुए अभ्यागत को बहुमूल्य मुक्ताओं का प्रदान कर मुक्त पुरुषों के मन को भी अपने वश में कर लिया ॥ १८ ॥

यः शैशवे सवयसो विपिनोदरान्त-
श्छायासु नव्यतरुगह्वरसंगतासु।
संवेश्य सुन्दरकथाभिरलञ्चकार
तेषां मनांसि मुनिनायकतामुपेतः ॥१९॥

एक बार आपने अपने साथी बालकों को वन में ले जाकर उन को वृक्षों की सघन छाया में पंक्ति बद्ध खड़ा करके ऐसा ज्ञानोपदेश दिया जिस को सुन कर वे सब ज्ञानवान् हुए ॥ १९ ॥

देवालयेषु विविधेषु निजोपदेशै-
रेकान्तमुन्नतमना भुवि यः कुमारः।
वेदोपवेदनिहितात्मकथोपरोधै-
र्निर्बन्धनानिव चकार पदानुरक्तान् ॥२०॥

एक समय आप अपने साथी बालकों को मंदिर में ले जाकर भगवान् के अवतार सम्बन्धी अनेक चरित्र सुनाने लगे जिनको सुनकर वे सब भगवद्भक्त बन गए ॥ २० ॥

दैवादुपेत्य गहनं वनमेकदा यः
पार्श्वस्थितं भुजगमुग्रमवेक्ष्य सद्यः।
वेगोद्धतं प्रबलकेसरिणञ्च सिद्धः
सामान्यजीवमिव सिद्धिवशेन मेने ॥२१॥

एक दिन आप अकस्मात् जंगल की ओर जाकर जिस समय समाधिस्थ हुए उसी समय आपके पास एक शेर और एक सांप आकर उपस्थित हुआ जिसको तुरन्त आपने अपनी सिद्धि से वश में कर लिया ॥ २१ ॥

ध्यानस्थितं यमधिगत्य वने यथाव-
दभ्येत्य तं विधिवशेन स विष्णुदासः ।
प्रश्नोत्तरक्रमपरम्परया हृदिस्थ-
मज्ञानमुन्नतमतिः प्रशमं निनाय ॥२२॥

एक समय आप समाधि में बैठे ही थे कि उसी समय आपके पास पंडित विष्णुदास जी पहुंचे आपने उनको दिव्य-दृष्टि से जिज्ञासु जान कर उनके अनेक प्रश्नों का उत्तर दिया जिसे सुन कर वह ज्ञानवान् हो गए ॥ २२ ॥

अत्युन्नतां जगति केश्चिदहोभिरेव
विद्यां विलोक्य स मुनेर्नितरां प्रसन्नः ।
सर्वेषु शिष्यनिवहेषु पुरः स्थितेषु
श्रीचन्द्रमौलिरयमित्यवदद्गुरुस्तान् ॥२३॥

एक समय की बात है कि काश्मीर में जाकर पं० पुरुषोत्तम जी (कौल) से जिस समय आप विद्याध्ययन करते थे उसी समय गुरु जी ने समस्त सहपाठियों में आपको सर्वोत्तम मानकर "श्री चन्द्र मौलि" पद से सत्कृत किया॥२३॥

येनाद्भुतं विशदभावमपास्तदोषं
भाष्यं विधाय किल वेदचतुष्टयेपि ।
श्रीचन्द्रमौलिमुनिना निगमागमानां
लोके निवेशितमुदारतया महत्त्वम् ॥२४॥

काश्मीर में सात वर्ष रह कर चारों वेदों पर "चंद्र भाष्य" लिखते हुए आपने जो वैदिक साहित्य का उद्धार किया वह श्रोत मुनि मण्डल में आज आनन्द ला रहा है ॥ २४ ॥

गान्धारदेशमधिगत्य जवेन येन
वन्धस्थितो झटिति लक्ष्मणदत्तसूनुः ।

दत्तस्त्रभस्मतिलकप्रभया निरस्तो-
वन्धाचकार पुनरर्चनमीश्वरस्य ॥२५॥

एक समय आप काबुल में कंधार पहुंचे वहां आपने लक्ष्मणदत्त नामक ब्राह्मण का रामरत्न नामक एक पुत्र अपने तपो बल से मृत्यु के मुखसे बचाया ॥ २५ ॥

पुण्याश्रमे विधिवशात्प्रगतः कदाचि-
देकोऽस्य कोपि मृगयुर्यवनः प्रमादी ।
शापं शशाक न मुनेर्विफलं विधातुं
सूते फलानि महितेषु कृतः प्रमादः ॥२६॥

एक समय आपके आश्रम में कंधार नरेश "कामरान" ने एक मृग को मार कर उसकी आखें निकालीं थीं यह देख कर आपने उससे कहा कि "जिस ने इस मृग की आखें निकाली हैं उसकी आंखेंभी इसी प्रकार निकाली जायेंगी" अन्त में आपका यह शाप उसके लिये सफल हुआ ॥ २६ ॥

सिन्धुप्रदेशमखिलं यवनैः प्रचण्डै-
राक्रान्तमीक्ष्य सहसैव तमुद्दिधीर्षुः ।
यः सत्वरं कनखलात्सह शिष्यवर्गै-
रभ्याजगाम कविगीतबहुप्रशस्तिः ॥२७॥

एक समय पञ्जाब प्रान्त में भ्रमण करते २ आप हरिद्वार पहुँचे वहां आपने कनखल में सनत्कुमार मुनि के आश्रम में रहकर अपने भक्तों से सिन्ध देश की बहुत बुरी अवस्था सुनी सुनते ही आप उसके उद्धार के लिये सीधे नगर ठट्टा पहुँचे और वहां जाकर सिन्ध प्रान्त का उद्धार किया ॥ २७ ॥

सिन्धुस्थितेन किल येन महामहिम्ना
मार्गस्थितस्य बत भक्तगिरेः प्रमोहः ।
तत्रैव साधु परिदर्शयता भवानीं
सद्यो निरस्तइव तान्त्रिकमन्त्रमार्गः ॥२८॥

नगर ठट्टा में रहते हुए आपने एक बार हिंगलाज देवी के दर्शनार्थ ३६० शिष्यों के साथ जाते हुए 'भक्त गिरि को अपने योग बल' से निजाश्रम में ही

देवी जी का दर्शन कराकर उस समय के यवन तान्त्रिकों का समस्त इन्द्रजाल उच्छिन्न कर दिया ॥ २८ ॥

लोकोपकारमनसा निहितात्मशक्ति-
यों द्वारिकामपि विहाय पुरीं प्रसिद्धाम् ।
मेवाडदेशजनपं कृपया प्रतापं
युद्धाय सज्जमकरोदमितप्रतापम् ॥२९॥

लोकोपकार की इच्छा से आप एक बार द्वारिका के मार्ग में आये हुये कच्छ प्रान्तीय नगरों में उपदेश देते हुये उदयपुर पहुँचे, वहां आपने एकलिंग महादेव के समीप शरण में आये हुये महाराणा प्रताप को उपदेश देकर मेवाड़ प्रान्त का उद्धार किया ॥२९॥

काश्मीरदेशवसतिं हरिदत्तपुत्रं
शिक्षावशेन शनकैः कमलासनं यः ।
धर्मोपदेशकमनन्यगुरुं विधाय
सद्यःप्रसादमलिमत्तमुनिं व्यधत्त ॥३०॥

एक बार आप राजस्थान का भ्रमण करते हुये पञ्जाब के अनेक नगरों में उपदेश देते २ अन्त में काश्मीर पहुँचे वहां हरदत्त नामक एक ब्राह्मण के कमलासन नामक पुत्र को शिष्य बनाकर आपने अन्त में "अलिमत्त" मुनि के नाम से उसे प्रतिष्ठित किया ॥३०॥

यो बालकृष्णमलिमत्तमुनेः सजातं
प्रासादतः पतितमादरतो गतासुम् ।
सञ्जीवयन्नमृतसेकमयैर्वचोभि-
श्चक्रे मुनिं मननवानिह बालहासम् ॥३१॥

एक दिन की बात है कि कमलासन का छोटा भाई और आपका सतीर्थ्य एक बालकृष्ण था जो अकस्मात् एक दिन प्रासाद से गिरकर गत प्राण होगया था आपने उसके शव को देखकर अपने आशीर्वाद से उसको पुनः जीवित कर दिया। यही अन्त में बालहास के नाम से मौनमुनिमण्डल का अद्वितीय अधिनायक हुआ ॥३१॥

भूमौ निखातमकरोत्पुनरार्द्रवृत्तं
नैसर्गिकेण महसा महनीयकीर्तिः ॥३५॥

एक समय आप श्रीनगर से चम्बा की ओर जाते हुये मार्ग में (ममून) गांव में ठहरे यहां पर एक पीपल का वृक्ष अग्नि ज्वालाओं से झुलस कर सूख गया था। आपने उसी के नीचे ठहर कर उसे हरा भरा कर दिया ॥३५॥

ऐरावतीमुपगतेन कदाचिदेका
नव्या तरीव परतीरगतौनियुक्ता।
दिव्या शिला स भगवानमृतांशुमौलिः
केनात्र भूमिवलये कविनास्ति वर्ण्यः ॥३६॥

एक दिन आप प्रातःकाल समाधि से उठकर ऐरावती नदी के तटपर पहुँचे। और दूसरे किनारे जाना चाहते थे फिर क्या था ? आपने एक शिला को नदी में फैंककर उसपर आसन जमाया शिला धीरे २ जल में तैरती हुई दूसरे किनारे जा लगी। इस प्रकार की अनेक घटनायें आपके जीवन में हुई थीं ॥३६॥

गर्वं विहाय जनतोपकृतौ यतध्वं
दिव्यं तपस्तपत योगपथं भजध्वम्।
नित्यं प्रवर्धयत सद्गुरुदेवमार्गं
यस्यायमेव चरमः परमोपदेशः ॥३७॥

अभिमान छोड़कर जनता का उपकार करो, तपश्चर्या के द्वारा अपने जीवन को उन्नत बनाओ, योग साधन के द्वारा अपने गुरुजनों का मार्ग विस्तृत करो, यही आपने अपने शिष्यों को अन्तिम उपदेश दिया ॥३७॥

सन्देशमन्तिममिमं समुदीर्य येन
सर्वत्र भूमिवलये निजशिष्यवर्गम्।
धर्मप्रचारकरणे विनियोज्य पश्चा-
दन्तर्हितेन विहितश्रमः समाधिः ॥३८॥

इस अन्तिम उपदेश को देकर आपने समस्त भारत में सनातनधर्म के प्रचार

के लिये अपने शिष्यों को लगाकर विक्रम संवत् १७०० पौष कृष्ण पंचमी को १५० वर्ष की अवस्था में अन्तिम समाधि ग्रहण की ॥३८॥

तस्यातिगौरवजुषोभुवनोदरश्री-
सम्वर्धकस्य मुनिमण्डलमण्डनस्य ।
श्रीचन्द्रमौलिकलया प्रथितस्य लोके
दिव्यं चरित्रमिह पश्यत सभ्यवर्याः ॥३९॥

यहां तक जिनकी अलौकिक घटनाओं का दिग्दर्शन-मात्र लिखा गया है, उन गौरवशाली भारत महिमामण्डन-मुनिमण्डलाग्रगण्य श्रीचन्द्र भगवान् का आमूलचूड समस्त दिव्यचरित्र इस महाकाव्य में सभ्य पुरुषों को देखना चाहिये।

मात्सर्यपूर्णमनसास्य मुनेश्चरित्रं
केनापि भारतभुवा न विलोकनीयम् ।
यस्मात्तदेकमनसो निजदूषणाना
मुद्रेकतो जगदिदं विनिपातयन्ति ॥४०॥

महामहिम-स्वनाम धन्य श्रीचन्द्रमौलि का परमादरणीय यह पवित्रचरित्र मात्सर्य से किसी को नहीं देखना चाहिये क्योंकि मात्सर्य से देखने वाले पुरुष अपने दूषणों से-समस्त जगत् को ही दूषित किया करते हैं ॥४०॥

अन्योक्तिदूषणदृशां मनुजाधमानां
यत्कार्यमत्र भुवने प्रतियाति वृद्धिम् ।
तत्रापि दोषकलनान्यजनैः क्रियेत
निर्दोषमस्ति भुवने बत कस्य कृत्यम् ॥४१॥

जो पुरुष दूसरों की उक्ति में दोष देखा करते हैं उनकी कृतियों में फिर अन्य पुरुष भी दोष ही देखा करते हैं यह एक स्वाभाविक नियम है क्योंकि संसार में दोष शून्य कथन किसी का भी नहीं माना जाता है ॥४१॥

अन्यैः कृता यदि विगर्हितकार्यवश्या-
त्रिन्दा दुनोति हृदयं भुवि मानवानाम् ।

द्वितीयः सर्गः

अथ भारतवर्षीयदुर्दशां वक्तुमुत्त्वरः ।
देवर्षिर्नारदोनाम धातुर्धाम समाययौ ॥१॥

एक समय की बात है कि भारतवर्ष की दुर्दशा देखकर दुःखित हुए देवर्षि नारद उसका उद्धार पूंछने के लिये श्रीब्रह्मा जी के समीप पहुंचे ॥ १ ॥

तमुपागतमाकर्ण्य सनकाद्या महर्षयः ।
समाधिमपि सन्त्यज्य धाम्नि धातुरुपाययुः ॥२॥

ब्रह्मलोक में नारद जी का जाना सुनकर सनकादिक महर्षि भी अपनी २ समाधि छोड़ कर ब्रह्मदेव के पास पहुंचे ॥ २ ॥

स्वागताचारसत्कारं विधाय भगवानजः ।
प्रीतस्तानाह मुनयः ! किमर्थमुपसङ्गताः ॥३॥

नारद आदि अनेक महर्षियों को अपने स्थान पर उपस्थित देखकर प्रथम तो ब्रह्मदेव ने स्वागतपूर्वक उन सबका सत्कार किया फिर उनसे आने का कारण पूंछा ॥ ३ ॥

धातुरेवं विधां वाणीमाकर्ण्य सनकादयः ।
देवर्षिमेवपुरतश्चक्रिरे धृतकौतुकाः ॥४॥

ब्रह्मदेव के प्रश्न करने पर सनकादिक मुनियों ने भी उत्तर देने के लिये अपनी ओर से देवर्षि नारद को ही अगाड़ी किया ॥ ४ ॥

अथ देवर्षिरुचितां भारतस्यास्य दुर्दशाम् ।
सावधानेन मनसा प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥५॥

देवर्षि नारद भी भारत की वर्तमान दुर्दशा को पूर्णरूप से कहने के लिये ब्रह्मदेव से इस प्रकार कहने लगे ॥ ५ ॥

जानात्येव भवान्सर्वं सर्वभूतविचेष्टितम् ।
तथापि भवतामाज्ञापालनाय वदाम्यहम् ॥६॥

भगवन् ! यद्यपि आप सब कुछ जानते हैं तथापि आपकी आज्ञा शिरोधार्य समझकर मैं जो कुछ कहता हूं उसे ध्यान पूर्वक सुनिये ॥ ६ ॥

विष्णोरंशावतारेण वासुदेवेन ये हताः ।
पुरा तएव कालेन यवनाः पुनरुत्थिताः ॥७॥

भगवान् विष्णु के अंशावतार स्वरूप श्रीवासुदेव ने अपने समय में जिन काल यवन आदि असुरों को नष्ट किया था वे ही अब दुबारा जन्म लेकर उत्पात मचा रहे हैं ॥ ७ ॥

संस्मृत्य ते पूर्ववैरं भारतीयजनव्रजम् ।
विनाशयन्ति बहवः साम्प्रतं यवनासुराः ॥८॥

वे पहिले वैर का स्मरण करके भारत के अन्दर अनेक प्रकार का उपद्रव उठाकर हिन्दू जनता का सर्वस्व नष्ट कर रहे हैं ॥८॥

केचिदुन्नतकूटानि मन्दिराणि पुरे पुरे ।
निपात्य तद्गतामूर्त्तीं भञ्जयन्ति मदोद्धताः ॥९॥

उनमें कोई उन्नत शिखर वाले अनेक देवी देवताओं के मन्दिर गिराकर उनकी मूर्त्तियों को नष्ट भ्रष्ट कर रहे हैं ॥९॥

निगमागमविज्ञानबोधकानृषिभिः कृतान् ।
ग्रन्थानग्नौ विनिक्षिप्य केचिद्दृष्यन्ति दुर्मदाः ॥१०॥

कोई अनन्त शास्त्र वेद वृक्ष को नष्ट करने के लिये उनकी अनेक शाखायें अग्नि में जलाकर वेदों का नाश कर रहे हैं ॥१०॥

तन्त्रसिद्धिमुपाश्रित्य यवनाः केपि वञ्चकाः ।
वञ्चयन्ति समीपस्थान्महदाश्चर्यकर्मभिः ॥११॥

कोई वंचक वेषधारी यवन-तान्त्रिक सिद्धि को प्राप्त कर आस पास की हिन्दू जनता को धर्म भ्रष्ट कर रहे हैं ॥११॥

परोपकारनिरतान्सज्जनान्वेदमार्गगान् ।
नानाविधैः प्रहरणैः प्रहरन्ति यथेच्छया ॥१२॥

कोई परोपकार में लगे हुए वेद मार्ग प्रतिष्ठापक सज्जनों को अनेक प्रकार के त्रास देकर यमपुर का अतिथि बना रहे हैं ॥१२॥

बौद्धभिक्षुधृतं वेशं विधृत्य यवनाः परे ।
तीर्थभूतानि धामानि दूषयन्ति मदाश्रयात् ॥१३॥

कोई बौद्ध भिक्षुओं द्वारा प्रवृत्त-काषाय वस्त्र पहिन कर भारत के प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों को नष्ट कर रहे हैं ॥१३॥

विद्वेषबीजमास्थाय वैष्णवाः शिवपूजकान् ।
शैवा अपि विनिन्दन्ति वैष्णवानुत्तरोत्तरम् ॥१४॥

जहां एक ओर यह अनर्थ होरहे हैं—वहां दूसरी ओर गृह कलह भी छिड़ रहा है, वैष्णव शैवों का निरादर कर रहे हैं-और शैव वैष्णवों की निन्दा कर रहे हैं ॥१४॥

सीमाप्रान्तगते देशे सिन्धुतीरे तदुत्तरे ।
देशे पञ्चनदे तेषां बलमस्ति महत्तरम् ॥१५॥
गुर्जरेषु समद्रेषु काश्मीरधरणीतले ।
तेषामेवाधिकारोस्ति दुर्मदानां महत्तरः ॥१६॥

सीमा प्रान्त, सिन्ध, पञ्जाब, गुजरात, काठियावाड़, मद्रास, कश्मीर, आदि अनेक प्रान्तों में उनका ही बल है- और उनका ही अधिकार है ॥१५-१६॥

कथं तेषां समुद्धारः कदा वा सम्भविष्यति ।
इति प्रष्टुमहं तस्मादिहायातोस्मि दुःखितः ॥१७॥

इन देशों का उद्धार किस प्रकार और कब होगा-यही पूंछने के लिये मैं भारतवर्ष से आपके पास आया हूं ॥१७॥

तदुद्दाहर सर्वज्ञ ! जगदादिगुरो ! विधे !
उपायमुत्तमं तेषामुद्धाराय यथोचितम् ॥१८॥

इसलिये हे सर्वज्ञ ! आप उनके उद्धार का कोई उत्तम उपाय सोचकर इस समय हमको बताने की कृपा कीजिये ॥१८॥

इत्याकर्ण्य जगद्वन्द्यो धाता नारदभाषितम् ।
जगदुद्धारमनसा तमाह निजमात्मजम् ॥१९॥

इस प्रकार भारत की दुर्दशा सुनकर ब्रह्मदेव ने उसका उद्धार करने वाला एक उपाय-सोचकर नारदजी से कहा ॥१९॥

तमोगुणिप्रशमनं दमनं दण्डनन्तथा ।
भगवानेव शक्नोति कर्तुमन्यो न भूतले ॥२०॥

तमोगुण प्रधान सृष्टि का शमन तथा उसका दमन श्री-शंकर के अतिरिक्त संसार में अन्य कोई नहीं कर सकता है ॥ २० ॥

तस्मादहं भवन्तश्च सर्वेपि सनकादयः ।
कैलासशिखरावासं व्रजामोद्य महेश्वरम् ॥२१॥

इस कारण मैं आप सब लोगों के साथ कैलास के शिखर पर रहने वाले महेश्वर के समीप चलता हूँ ॥ २१ ॥

सएव जगतामीशो दुष्टानां दमनक्षमः ।
अस्मदुक्तं समाकर्ण्य करिष्यति यथोचितम् ॥२२॥

दुष्टों के दंड देने में समर्थ वे भगवान् शंकर ही आप लोगों की यह सब बातें सुन कर इनका यथोचित उत्तर देंगे ॥ २२ ॥

इत्यामन्त्र्य समं सर्वैर्विधाता भगवानजः ।
प्राप कैलासशिखरं दिव्यद्रुमविभूषितम् ॥२३॥

इस प्रकार सबके साथ मन्त्रण करके ब्रह्मदेव जी सुन्दर वृक्षों से अलंकृत कैलास शिखर पर पहुँचे ॥ २३ ॥

[नवभिः कुलकम्]

तत्र दृष्ट्वा तमीशानं ध्यानस्तिमितलोचनम् ।
स्थूलकाष्ठसमिद्धाग्निपरिवेष्टितगह्वरम् ॥२४॥
प्रलयान्तमहानिद्रासुप्तसंसृतिविस्तरम् ।
सर्गारम्भसमारब्धसर्वकारणकारणम् ॥२५॥
करालकालकूटाग्निस्फुलिङ्गकृतकौतुकम् ।
फणामणिप्रभापंक्तिदुर्निरीक्ष्यमुखप्रभम् ॥२६॥

गङ्गातरङ्गसङ्गाप्तशीतवायुनिषेवितम् ।
शशिलेखापरिक्षिप्ततमःपटलसंहतिम् ॥२७॥
दिगन्तव्याप्तसच्छायजटामण्डलमण्डितम् ।
चितारजःसमालेपपवित्रीकृतविग्रहम् ॥२८॥
देवदानवगन्धर्वयक्षरक्षोगणेश्वरैः ।
किरीटकोटिसंस्पृष्टविशोभिचरणद्वयम् ॥२९॥
ध्यानान्तकालसंदृष्टपार्वतीकृतसंस्तवम् ।
वराभयचरित्राणप्राणदानपरायणम् ॥३०॥
व्याघ्रचर्माम्बरधरं व्यालयज्ञोपवीतिनम् ।
निवृत्तविषयासङ्गं देवदानवदुःसहम् ॥३१॥
नन्दिनिर्दिष्टदेवेशदर्शनावसरस्थिरम् ।
ननाम दण्डवद्भूमौ निपत्य भगवानजः ॥३२॥

वहां पहुंच कर ब्रह्मदेव ने ध्यानस्तिमितलोचन प्रलय और सर्ग के अद्वितीय कारण कालकूटाग्निकणमंजुल फणामणिप्रकाशदर्शनीय शीतल वायु से वीज्यमान चन्द्रलेखामण्डित जटामण्डल मण्डित चितारजोद्धूलितविग्रह देवदानवादिसमस्तजगद्वन्दित वराभयं वरप्रदं व्याघ्रचर्माम्बरधर व्यालयज्ञोपवीत निवृत्तविषयासंग शंकरजी को देखकर सर्व प्रथम साष्टांग प्रणाम किया ॥ २४-३२ ॥

तं तथाविधमालोक्य धातारं पुरतः स्थितम् ।
करुणारुणया दृष्ट्या प्रतिजग्राह धूर्जटिः ॥३३॥

साष्टांग प्रणत ब्रह्मा जी को देख कर भगवान् शंकर ने भी करुणा पूर्णभाव से उनका समयोचित स्वागत कर उनसे आगमन का कारण पूछा ॥ ३६ ॥

ब्रह्मापि सर्वमावेद्य निजागमनकारणम् ।
शिवादेशप्रतीचोत्कमानसः समपद्यत ॥३४॥

ब्रह्माजी ने भी आगमन का कारण बताकर उत्तर की प्रतीक्षा में कुछ समय वहां व्यतीत किया ॥ ३४ ॥

दृष्ट्वा सुतं वृषाङ्काङ्कैरङ्कितं नानकोगुरुः ।
मोदेन महताविष्टो जातकर्माण्यकारयत् ॥ ४८ ॥

गुरु नानकदेव जी ने जब अपने नवजात शिशु को भगवान शंकर के चिन्हों से अलंकृत देखा तब बहुत विस्मित होकर जात-कर्म संस्कार कराया ॥ ४८ ॥

वेदोदितेन विधिना शिशोर्जातस्य धैर्यतः ।
जातकर्मणि निर्वृत्ते महोत्साहो व्यवर्धत ॥४६॥

वैदिक विधि से जात कर्म संस्कार होने पर आपके जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में सर्वत्र उत्सव होने लगा ॥ ४९ ॥

नानादिगन्तरालस्थमहोदयपरम्परा ।
महोदयमिमं देवमभितः पर्यवेष्टयत् ॥५०॥

आपके अवतार समय में लोक में जो उत्सव परम्परा प्रवृत्त हुई उसने आप को सब ओर प्रसिद्ध कर दिया ॥ ५० ॥

एकादशेन्हि सम्प्राप्ते नामस्थापनमङ्गलम् ।
वैदिकेन विधानेन तस्यास्य परिकल्पितम् ॥५१॥

जन्म से ग्यारहवें दिन आपके पिता जी ने वैदिक पद्धति से आपका नाम करण संस्कार कराया ॥ ५१ ॥

आह्लादकगुणोत्कर्षं श्रिया सह विलोकयन् ।
श्रीचन्द्र इति तन्नाम पण्डितैः परिकल्पितम् ॥५२॥

शोभा सम्पत्ति और आह्लाद इन तीनों गुणों का सामञ्जस्य देखकर उस समय के विद्वानों ने आप का नाम "श्रीचन्द्र" रख दिया ॥ ५२ ॥

अन्वर्थकं मुनेर्नाम यस्यलोकैः प्रगीयते ।
श्रीचन्द्रमौलिर्भगवान्सएवायमवर्धत ॥५३॥

"यथा नाम तथा गुणः" इस लोकोक्ति के अनुसार जिनका नाम धरा गया था वे श्रीचन्द्र अब क्रमशः वृद्धि की ओर बढ़ने लगे ॥ ५३ ॥

दिने दिने यथोत्कर्षं कलाभिर्याति चन्द्रमाः ।
तथैवायमवाप स्वं श्रीचन्द्रः सर्वलक्षणैः ॥५४॥

जिस प्रकार शुक्ल पक्ष में एक २ कला की अभिवृद्धि से चंद्रमा वृद्धि को प्राप्त होता है उसी प्रकार श्रीचन्द्र भी देनंदिन अभिवृद्धि से वृद्धि की ओर अग्रसर हुए ॥ ५४ ॥

मुदितावस्य जननात्पितरौ देवलक्षणौ ।
नानाविधशिशुक्रीडारसमेकान्तमापतुः ॥५५॥

आपके जन्म से अत्यन्त प्रसन्न माता पिता भी आपकी बाल लीला का अनेक प्रकार से अनुभव करने लगे ॥ ५५ ॥

शिशुरप्ययमाह्लादकारणत्वमुपागतः ।
चिक्रीड बहुभिः सार्द्धं बालकैः सहजन्मभिः ॥५६॥

कुटुम्ब के आनन्द का कारण बनकर श्रीचन्द्र भी अपने अन्य कौटुम्बिक बालकों के साथ २ क्रीडा में प्रवृत्त हुए ॥ ५६ ॥

कदापि वनमासाद्य बालकैः सह तद्गतान् ।
नागान्नगानिव प्रेम्णा पस्पर्श धृतकौतुकः ॥५७॥
क्वचिद्वनोदरव्याप्तभीमनादविनोदिनम् ।
नवं केसरिणः सूनुं पप्रच्छ कुशलं मुनिः ॥५८॥
कदाचिद् गृहमागत्य याचन्तं कमपि द्विजम् ।
मौक्तिकैः प्रीणयामास बालभावगतः शिवः ॥५९॥
मन्दिरोदरमाविश्य कदाचिद्बालकैः सह ।
भगवन्तमुमानाथमनाथं समपूजयत् ॥६०॥
वनोदरमुपागत्य तरुच्छायासमाश्रितान् ।
कदाचिद्बालकानेष बालकोऽप्यन्वशिक्षयत् ॥६१॥

कभी बालकों के साथ वन जाकर अत्यन्त कुतूहल से बड़े २ फणिधर सर्पों को पकड़ने लगे कभी गहर बन में जाकर शब्द करते हुए सिंह शावक से ही कुशल पूछने लगे कभी गृह द्वार पर आए हुए याचक को मोती देकर हंसने लगे कभी बालकों के साथ साथ शिव मंदिर में जाकर शिव जी का पूजन करने लगे कभी वन में वृक्षों की छाया में अपने साथी बालकों को बिठाकर उनको धार्मिक

उपदेश देने लगे इसी प्रकार की अनेक अद्भुत बाल लीलायें करते हुए आपने अपने शैशव को समाप्त किया ॥ ५७-६१ ॥

निवृत्ते शैशवे दैवाद्गर्भादेकादशे शुभे ।
वत्सरे समनुप्राप्ते ब्रह्मचर्यमगादयम् ॥६२॥
श्रौतेन विधिना सर्वमुपवीतप्रसाधनम् ।
तदा श्रौतमुनेरस्य समभून्मुनिभिः कृतम् ॥६३॥

शैशव के समाप्त होने पर गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में आपका उपनयन हुआ जिसमें समस्त कार्य श्रौत विधि से ही मुनि जनों ने सम्पादित किया ॥ ६२-६३ ॥

ब्रह्मसूत्रमुपादाय सशिखं सहमेखलम् ।
धर्मतः क्षत्रियोऽप्येष पलाशं दण्डमाहरत् ॥६४॥

क्षत्रियोचित मेखला और उपवीत के साथ शिखा धारण करते हुए आपने विपर्यय से दंड धारण किया अर्थात् वट दंड के साथ २ आपने पलाश दण्ड का भी ग्रहण किया इसका प्रयोजन अग्रिम दो पद्यों में देखिये ॥ ६४ ॥

पलं मांसमितिप्रोक्तं ये तदश्नन्ति राक्षसाः ।
पलाशास्ते समाख्याता यवनाः पापकारिणः ॥६५॥
तेषु दण्डं समाधातुं यत्नेष्वेष बालकः ।
पलाशदण्डादरणे धृतोद्योगस्तदाऽभवत् ॥६६॥

पल नाम मांस का है उसका जो अशन करते हैं उनको "पलाश" कहते हैं,उनको दण्ड देना लक्ष्य में रखकर आपने व्रतबन्ध के समय वट दंड के साथ २ पलाश दंड का भी धारण किया यहां पर दंड में श्लिष्ट रूपक है ॥ ६५-६६ ॥

अक्षरारम्भतः पश्चादयं क्रमसमुन्नतः ।
गीतां भगवता गीतां दयालोरपठद्गुरोः ॥६७॥

इसके अनन्तर कुछ ही दिनों में अक्षराभ्यास करके आपने अपने गुरुवर्य श्री पं० हरदयालु जी से भगवद्गीता का अध्ययन आरम्भ किया ॥ ६७ ॥

एकवारश्रुताधीतधारणाधिषणो व्रती ।
सद्यः समापयत्पाठमयं गीतागतं गुरुः ॥६८॥

एक बार गुरु मुख से गीता सुनकर उसका यथोचित ग्रहण करके आपने कुछ ही दिनों में समस्त भगवद्गीता का अध्ययन समाप्त किया ॥ ६८ ॥

गुरोर्निदेशतः पश्चादयं मातुरनुज्ञया ।
शिवं श्रीनगरं श्रीमान् श्रीचन्द्रः प्राप सत्वरम् ॥६९॥

इसके अनन्तर अपने गुरुवर्य तथा अपनी माता जी से आज्ञा लेकर आप विद्याध्ययन के लिये श्रीनगर पहुँचे ॥ ६० ॥

काश्मीरं देशमासाद्य पुरुषोत्तमतो गुरोः ।
समस्तं वेदवेदाङ्गोपाङ्गपाठमपूरयत् ॥७०॥

काश्मीर देश की राजधानी श्रीनगर पहुँच कर आपने पण्डित पुरुषोत्तम जी से समस्त वेद एवं वेदाङ्गों का अध्ययन किया ॥ ७० ॥

लवे यथा स्वतःसिद्धं जृम्भकास्त्रमभूत्तथा ।
शिवावतारेऽत्र मुनौ शास्त्रं स्वयमुपागमत् ॥७१॥

भगवान् रामचन्द्र जी के सुपुत्र लव के पास जिस प्रकार सरहस्य जृम्भकास्त्र अपने आप उपस्थित हुए उसी प्रकार शिवावतार श्रीचन्द्र मुनि में समस्त शास्त्र अनायास उपस्थित हुए ॥ ७१ ॥

पैशुन्यपूर्णमनसामयं स्वसहपाठिनाम् ।
लज्जयाऽवनतं चक्रे मुखं गुरुपरीक्षणे ॥७२॥

आपके सहपाठी सहज पैशून्य के कारण जब गुरु जी के समक्ष आपकी चुगली करते थे उस समय आप समस्त पाठ कंठस्थ सुनाकर उनका मस्तक नीचा करते थे ॥ ७२ ॥

एवमादर्शचरितो ब्रह्मचारी दृढव्रतः ।
श्रीचन्द्रमौलिरेकान्ते ध्यानयोगपरोऽभवत् ॥७३॥

इस प्रकार आदर्श चरित पूर्ण ब्रह्मचारी दृढ व्रत श्रीचन्द्र भगवान् समस्त वेद वेदाङ्गों को नियम पूर्वक पढ़कर अन्त में ध्यान योग में तत्पर हुए ॥ ७३ ॥

मयाप्येतस्य धीरस्य धीरोदात्तस्य धीमतः ।
एतावदत्र वृत्तान्तं विनिवेद्य विरम्यते ॥७४॥

हमने भी यहां धीरोदात्त श्रीचन्द्र भगवान् का इतना वृत्तान्त लिखकर सज्जनों के समक्ष उपस्थित किया है ॥ ७४ ॥

एवंविधस्य जगदुद्धरणक्षमस्य
लोकोपकारकमनोहरभव्यमूर्त्तेः ।
नानाविधैरुपचितं ललितैः सुवृत्तैः
श्रीचन्द्रमौलिचरितं पठतादरेण ॥७५॥

इस प्रकार के भारत हितैषी धर्मपरायण जगत् के उद्धार में समर्थ श्रीचन्द्र भगवान् के चरित्र से अलंकृत यह महाकाव्य आपके समक्ष में प्रस्तुत है ॥ ७५ ॥

ये भावपूर्णमनसो मनसोपबद्धं
भावाभिराममरमणीयपदं ममेदम् ।
काव्यं विलोक्य हृदये मुदिता भवेयु–
स्ते चन्द्रमौलिकरुणामतुलां भजेयुः ॥७६॥

जो महानुभाव भावपूर्ण मन से इस का अवलोकन कर अपने हृदय में आनन्दित होंगे उन पर श्रीचन्द्र भगवान् की कृपा अवश्य रहेगी ॥ ७६ ॥

नातःपरं निजविनिर्मितकाव्यबन्धे
वक्तव्यमस्त्यपरमादरतो निवेद्यम् ।
किन्त्वेकमस्ति भवतां पुरतस्तदेतद्–
द्रष्टव्यमेतदधुना कृपया भवद्भिः ॥७७॥

इससे अधिक इस महाकाव्य में हम कुछ नहीं कहना चाहते हैं सन्तों से केवल इतना ही कहते हैं कि आप इसका ध्यान पूर्वक अवलोकन करें ॥ ७७ ॥

इतिश्री सनाढ्यवंशोद्भव कविवर श्रीमद्रसिलानन्दशर्मप्रणीते
सतिलके श्रीचन्द्रमौलिचरिते महाकाव्ये
शिवावतारोनाम–द्वितीयः सर्गः

तृतीयः सर्गः

अथात्तविद्यो विधिवद्गुरुभ्यः
स चन्द्रमौलिर्भगवानुदारः ।
गुहोदरे ध्यानपरोऽवतस्थे
विचारयन्भारतवर्षभावान् ॥१॥

विधिपूर्वक विद्याध्ययन के अनन्तर उदारचरित श्रीचन्द्र भगवान् पर्वत की गहर कन्दरा में ध्यानावस्थित होकर भारतवर्ष की दशा पर विचार करने लगे ॥१॥

चतुर्दशाब्देन मयाऽधुना किं
भुवस्तले मुख्यमवश्यकार्यम् ।
विधेयमित्येव हृदन्तरेऽस्य
विचारपंक्तिः प्रससार सारा ॥२॥

सबसे प्रथम आपके हृदय में यह प्रश्न उठा कि विद्याध्ययन करते २ हमारी अवस्था चौदहवर्ष की व्यतीत हुई, अब हमको कौनसा कार्य करना चाहिये ॥२॥

गृहानुबन्धेषु यदि प्रसक्तो
भवेयमन्यत्सकलं विहाय ।
वृथैव जन्मेदमनेन भूयो
भविष्यति प्रत्यवरुद्धशक्तेः ॥३॥

यदि अन्य कार्य छोड़ कर मैं गृह के कार्यों में प्रवृत्त होता हूं, तो उसके द्वारा शक्ति का ह्रास होने पर मेरा यह जन्म ही व्यर्थ जाता है ॥३॥

कृतेन किं तेन मया यदत्र
पुनर्भवेद्बन्धनहेतुभूतम् ।
विमुक्तिमार्गं व्रजतां जनानां
न बन्धनेषु स्खलनं शिवाय ॥४॥

जिस कार्य के करने से संसार में बार २ आवागमन का चक्र उच्छिन्न नहीं होता है, उस कार्य में मुक्तिमार्ग के पथिकों का चलना उचित नहीं है ॥४॥

ममास्ति कश्चिन्न पिता न माता
न पूर्वजन्मानुगकर्मबन्धः ।
निरञ्जनोहं भगवन्निदेशा-
दिहागतः कर्त्तुमनन्यसाध्यम् ॥५॥

मैं मुक्त पुरुष हूं, मेरे साथ पूर्व कर्म का कोई बन्धन नहीं है-इसीलिये मेरी न कोई माता है-और न कोई पिता है, मैं स्वभावतः निरञ्जन निर्विकार हूँ। केवल ईश्वरादेशसे अनन्य साध्य कार्य करनेके लिये पृथिवी पर अवतीर्ण हुआ हूं ॥५॥

मयोपदिष्टेन पथा जगत्यां
जना गमिष्यन्ति ततो मयात्र ।
तदेव कर्तव्यमितो यथास्या-
न्ममानुगानान्न कदापि बन्धः ॥६॥

मेरे चलाये हुये मार्ग पर संसार चलेगा-इसलिये मुझको वही कार्य करना चाहिये, जिससे मेरे अनुगामियों को संसार के बन्धनों में बार २ न पड़ना पड़े ॥६॥

मनुष्यकर्तव्यमिदं विधिज्ञै-
रुदीर्यते संसृतिचक्रगर्ते ।
परम्परातः पतितस्य जन्तो-
र्निवारणं तत्कृतकर्मबन्धात् ॥७॥

संसार चक्र में पड़े हुये पुरुषों का उद्धार करना ही मुक्तमनों का एकमात्र कर्तव्य है और यही वेदज्ञ विद्वानों ने मनुष्य का परम-कर्त्तव्य बतलाया है ॥७॥

सनत्कुमारः सनको मुनीन्द्रः
सनन्दनोन्यः स सनातनोऽपि ।
गुरुर्मुनीनामभवद्धिहाय
प्रवृत्तिमार्गं भवबन्धमूलम् ॥८॥

हमारे मार्ग प्रदर्शक सनक सनन्दन सनातन और सनत्कुमार हैं जो प्रवृत्ति मार्ग को छोड़कर पहिले से ही निवृत्ति मार्ग परक मुनि मंडलके गुरु कहे जाते हैं ॥८॥

महानुभावा मुनयो महान्तः
प्रवृत्तिमार्गं परिहाय दूरे ।
निवृत्तिमार्गं प्रगतास्ततोहं
तमेव मार्गं विधिवद्ग्रहीष्ये ॥९॥

संसार में सभी महा पुरुष प्रवृत्ति मार्ग को छोड़ कर निवृत्ति मार्ग में प्रवृत्त हुए, इस कारण मैं भी विधिपूर्वक निवृत्ति मार्ग पर ही चलूंगा ॥ ९ ॥

इदं स्वचेतस्यवधार्य सद्यः
स चन्द्रमौलेरवतारमासः ।
गुरोः प्रतीक्षामकरोत्स्ववेशं
निवृत्तिमार्गानुगतं विधातुम् ॥१०॥

इस प्रकार अपने मन में दृढ़ निश्चय करके शिवावतार श्री चन्द्र भगवान् निवृत्ति मार्ग के अनुकूल अपने वेष को बनाने के लिये सद्गुरुकी प्रतीक्षा में रहे ॥१०॥

जटाधरो हस्तगृहीतमालः
समाधिसंयोजितसर्वकालः ।
विसृष्टनानाविधकार्यजालः
प्रभाविशेषप्रथमानभालः ॥११॥

मनोविकारप्रधने कराल-
स्तपोधनानां सविधे मरालः ।
बनान्तवासी वयसातिबालः
समाधियोगानुगतस्तदासीत् ॥१२॥

उस समय में आपका वेष बड़ा ही सुन्दर था आपके शिर पर सुन्दर २ जटायें चमक रहीं थीं हाथ में स्फटिक माला और मुख पर प्रभा मंडल चमक

रहा। था। वन में निवास होने के कारण आपका समस्त काल समाधि योग में व्यतीत होता था मन के विकारों के साथ आपका युद्ध ठना हुआ था और अहर्निश सनकादि मुनियों के चरित्र पर ध्यान रहता था इस वेष के साथ आपका समय वन में व्यतीत होता था ॥ ११-१२ ॥

निरोद्धुमेनं विरतिप्रसंगा-
च्छशाक नो तत्र गतः पितापि ।
न बान्धवः कोपि नचास्यमाता
निवृत्तिमार्गानुगतं मुनीन्द्रम् ॥१३॥

इसी अवसर में आपके पास कुटुम्ब के समस्त पारिवारिक जन आपको घर ले जाने के लिये अनेक प्रयत्न करने लगे परन्तु अन्तमें वे सब विफल प्रयत्न रहे।१३।

गुरोः प्रतीक्षानिरतस्य तस्य
दिनानि यावन्ति ययुर्वनान्ते ।
समोपमान्येव समाधियोगे
स कल्पयामास विरक्तभावः ॥१४॥

गुरु की प्रतीक्षा में वन में रहते हुए आपको जितने दिन व्यतीत हुए वे सब एक २ वर्ष के बराबर प्रतीत होने लगे ॥ १४ ॥

अथ प्रसङ्गादविनाशिनामा
मुनिः प्रशस्तामरनाथयात्राम् ।
प्रकर्तुमागात्तमनुप्रदेशं
यदेकदेशे भगवानतिष्ठत् ॥१५॥

इसके अनन्तर प्रसंग से अविनाशी मुनि प्रसिद्ध अमरनाथ की यात्रा करने की इच्छा से उसी ओर आरहे थे जिस ओर आपका निवास था ॥ १५ ॥

मुनेरभूदस्य मनस्यलक्ष्या
भुवं समुद्धर्तुमलं मनीषा ।
तया तदानीमुपयातवत्या
सहैव सम्पादितमत्र कार्यम् ॥१६॥

संसार के उद्धार करने की जो इच्छा अदृश्य रूप में आपके हृदय में विद्यमान थी उसी ने समय पाकर यह सब आयोजन एकत्र कर दिया ॥ १६ ॥

मुनिर्गुरोरागमनप्रतीक्षो
गुरुर्मुनेरागमनप्रतीक्षः ।
क्रमादुभौ दैववशेन तत्र
परस्परं सङ्गममापतुस्तम् ॥१७॥

आपके हृदय में सद्गुरु प्राप्त करनेकी प्रबल इच्छा थी और अविनाशी मुनि के चित्त में सच्छिष्य प्राप्त करनेकी बड़ी इच्छा थी दैवयोग से दोनों की इच्छाओं के पूर्ण होने का अवसर उपस्थित हुआ ॥ १७ ॥

प्रसङ्गतः श्रीपुरुषोत्तमस्य
गुरोः समीपे गुरुभक्तिनिष्ठः ।
स्वतः समाकर्णयितुं जनेभ्यो
गुरुप्रशस्तिं स मुनिः समागात् ॥१८॥

इसी अवसर में प्रसंग से आप अविनाशी मुनि की प्रशंसा सुनने के लिये अपने गुरुवर्य श्री प० पुरुषोत्तम जी के स्थान पर आए ॥ १८ ॥

समागतं श्रीपुरुषोत्तमस्तं
मुनिं प्रसङ्गादविनाशिनाम्नः ।
महामुनीन्द्रस्य गुरोः प्रशस्तिं
निबोधयामास कथाक्रमेण ॥१६॥

पुरुषोत्तम जी ने भी अपने पास आए हुए श्रीचन्द्रमौलि को देखकर अविनाशी मुनि का समस्त वृत्तान्त यथा क्रम कहना आरम्भ किया ॥ १९ ॥

गुरोर्मुखादुच्चतमां प्रशस्तिं
महामुनेरस्य निपीय तुष्टः
स चन्द्रमौलिर्निभृतं दिनान्ते
समाप तस्योटजधाम दिव्यम् ॥२०॥

अपने गुरु जी से अविनाशी मुनि की प्रशंसा सुनकर श्रीचन्द्र जी मन में बहुत प्रसन्न हुए और सायंकाल के समय अविनाशी मुनि के स्थान पर पहुंचे ॥२०॥

गतेषु सर्वेषु कथाप्रदेशा-
ज्जनेषु पश्चादवशिष्य तेभ्यः।
रहस्यभूतं कमपि स्व-भावं
गुरोः समीपे समपृच्छदेषः ॥ २१ ॥

वहां पर दर्शनार्थ आये हुए मनुष्यों के यथा क्रम उठ जाने पर सब से पीछे आपने अवसर पाकर अपना हृद्गत भाव उनसे कहना आरंभ किया ॥ २१ ॥

कथं मया वास्तविकी सुशान्ति-
र्गुरो जगत्यामिह सा प्रलभ्या।
यया भवोद्बन्धनजालभित्तिः
स्वयं विनाशं समयेन यायात् ॥ २२ ॥

आपने कहा भगवन् इस संसार में भव बन्ध का उच्छेद करने वाली वास्तविक शान्ति मनुष्य को किस प्रकार से प्राप्त हो सकती है ॥ २२ ॥

अनन्यसाधारणमप्युपायं
क्रमेण साधारणरीतिगत्या।
गुरो भवानद्य दयोदयेन
वदत्ववश्यं परमार्थदृष्टिः ॥ २३ ॥

उसकी प्राप्ति का जो कठिन से कठिन उपाय हो वह आप कृपा करके हम को सरल रीति से बतलाने की कृपा कीजिये ॥ २३ ॥

इदं निवेद्यात्मगतं रहस्यं
मुनौ निवृत्ते समयक्रमेण।
गुरुः प्रसादादविनाशिनामा
समुत्तरं वक्तुमनास्तमाह ॥ २४ ॥

इस प्रकार हृद्गत भाव के कहने पर मौन हुए श्रीचन्द्र जी के प्रति अविनाशी मुनि ने जो उत्तर दिया वह भी सुनिये ॥ २४ ॥

[युग्मम्]

समस्तसच्छास्त्रकथानुरागः
सुसङ्गतिः सत्पुरुषोत्तमानाम् ।
क्रमेण योगानुरतिः समाधौ
निजाधिकारः परमार्थदृष्टिः ॥ २५ ॥

परोपकारव्यसनं विरागो
निरोधनं सत्वरमिन्द्रियाणाम् ।
वनेषुवासः परमात्मनिष्ठा
ददाति शान्तिं नियमानुगेभ्यः ॥२६॥

आपने कहा—अच्छे शास्त्रों का श्रवण, उत्तम पुरुषों का सङ्ग, योगाभ्यास, समाधि पर अधिकार, परमार्थ दर्शन, परोपकार करने का व्यसन, वैराग्य इन्द्रियों का निग्रह, वन में निवास आत्म-चिन्तन इन बातों पर ध्यान रखने से मनुष्य को वास्तविक शान्ति प्राप्त होती है ॥ २५-२६ ॥

इदं समाकर्ण्य वचः स योगी
यथोचितं तत्प्रतिवक्तुकामः ।
पुनर्मुनीन्द्रं प्रणिपत्य हर्षा-
दुवाचयोगेच्छितसत्प्रभावः ॥२७॥

इसप्रकार अविनाशी गुरु से प्रश्न का उत्तर मिलने पर आपने उसके विषय में और कुछ कहने के लिये अपनी इच्छा प्रकट की ॥ २७ ॥

[युग्मम्]

मुने मयाधीतमलं गुरुभ्यः
समस्तशास्त्रं विहितोस्ति योगः ।
कृतोधिकारश्चरमः समाधौ
सुसङ्गमश्चापि महामुनीनाम् ॥२८॥

निरुद्धमेवास्ति मनो निसर्गा-
दितस्ततो योगबलेन रुद्धम् ।
परं न शान्तिः समुदेति चित्ते
भवत्कृपेच्छुस्तदहं प्रपन्नः ॥२६॥

आपने कहा मैंने गुरुजनों से वेदादिशास्त्रों का अध्ययन किया साथ ही योग का अभ्यास समाधि पर पूर्ण अधिकार मुनियों का सत्संग भी किया इसके अतिरिक्त योगाभ्यास से मन भी वश में कर लिया परन्तु इतना करने पर भी चित्त में शान्ति न हुई इसलिये आपके समीप आया हूं॥ २८-२९ ॥

भवत्पदाम्भोरुहदर्शनेन
हृदन्तरे शान्तिरुदेति सद्यः ।
प्रभो यथा सा स्थिरतामुपेया-
त्तथा भवानद्य करोतु दृष्टिम् ॥३०॥

आपके चरणारविन्द के दर्शन से चित्त में शान्ति तो उत्पन्न होती है परन्तु स्थिर नहीं रहती इसलिये आप ऐसी दया दृष्टि करें जिससे वह शान्ति सर्वदा स्थिर बनी रहे ॥ ३० ॥

इदं निशम्यार्थयुतं वचोऽस्य
मुनेः सदैवादविनाशिनामा ।
समाहितान्तःकरणो बभूव
तदेकदृष्टिर्विगतान्यचेष्टः ॥३१॥

इस प्रकार आपने कथन का प्रत्युत्तर सुन कर अविनाशी मुनि अपने विचार में निमग्न हुये और गम्भीर भाव से श्रीचन्द्रजी की ओर देखकर विस्मित हुये।३१।

विलोक्य स ध्यानदशा मुनीन्द्रं
शिवावतारं शिवमेव साक्षात् ।
विहस्य पश्चादिदमाह शम्भो !
त्वमेव धन्योसि दयावतारः ॥३२॥

ध्यान-योग के द्वारा कुछ विलम्ब के पश्चात् जब अविनाशी मुनि ने श्रीचन्द्र
जी को साक्षात् शिव स्वरूप में देखा, तब श्रीचन्द्रजी से आप कहने लगे कि आप
। शिवावतार होने के कारण स्वयं धन्य हैं—आपके समक्ष मैं क्या कह
सकता हूं ॥ ३२ ॥

भवत्पदाम्भोरुहदास्यमाप्य
समस्तभूतप्रशमोपयुक्ता ।
अनन्तशान्तिर्मनुजानुपैति
यदर्थमेषो भगवन्प्रयासः ॥३३॥

जिस शान्ति का आप अन्वेषण करते हैं, वह तो आपके चरणों की दासी
बनकर समस्त विश्व को वश में कर सकती है और आपकी कृपा से ही हम जैसे
मनुष्यों को वह प्राप्त होती है ॥ ३३ ॥

महत्वमस्मभ्यमिदं प्रदातुं
यदस्ति चित्ते भवतस्तदाहम् ।
वदामि याहक्समयोधुनास्ते
यदस्तिचास्मिन्समयेऽनुकूलम् ॥३४॥

यदि आप मुझे महत्व देने के लिये इस प्रकार की लीला कर रहे हैं तो
देश कालानुरूप आपसे मैं कुछ निवेदन करता हूं ॥ ३४ ॥

भवानिदं वेत्ति समाधियोगा-
न्मनो जनानामधुना विनष्टम् ।
हृदि प्रवृत्ता विकृतिर्भविष्ये
भयङ्करो यत्परिणामभागः ॥३५॥

समाधि-योग के द्वारा यह आप स्वयं जानते हैं कि वर्तमान समय में मनुष्यों
की चित्त-वृत्ति धर्म से हट कर पाप में प्रवृत्त हुई है, जिसका परिणाम भविष्य में
बड़ा भयङ्कर होने वाला है ॥ ३५ ॥

भवत्प्रयासेन समस्तमेत-
द्विनाशमेष्यत्यघमं जनानाम् ॥

हृदिस्थितं पापमपास्तसौख्यं
यदर्थमेषो मम दीर्घयत्नः ॥३६॥

मेरी अनुमति में आपके प्रयत्न से यह व्यतिक्रम दूर हो सकता है, इस लिये आप कृपा कर के इस व्यतिक्रम के दूर करने का कोई उपाय सोचिये ? मैंने भी बहुत दिनों से इस पर विचार किया है ॥ ३६ ॥

इदं निवेद्यात्मगतं प्रकाशं
शिवावतारस्य पुरो महात्मा ।
बभूव तूष्णीमनघप्रवृत्ते-
र्जहास पश्चान्मुदितो यथावत् ॥३७॥

इस प्रकार अपने हृद्गत अभिप्रायको श्रीचन्द्र जीके समक्ष कहकर अविनाशी मुनि निवृत्त हुये, इन बातों का रहस्य तत्ववेत्ता मुनि ही समझ सकते हैं ॥३७॥

समस्तमेतद्धृदये निधाय
निजोचितं कार्यमसौ मुनीशः ।
मुनिव्रतं पूर्णतयाधिगत्य
गुरोरुदासीनपथं समागात् ॥३८॥

अविनाशी मुनि के द्वारा प्राप्त समयोचित सदुपदेश हृदय में धर कर श्रीचन्द्र भगवान् मुनिव्रत प्राप्त करने के लिये उनसे प्रार्थना करने लगे ॥ ३७ ॥

अवाप्य दीक्षामविनाशिनाम्नो
गुरोः सकाशादयमात्मनिष्ठः ।
कृतानि तान्येव चकार यानि
मुनिः स्वदीक्षासमये जगाद ॥३९॥

इसी अवसर में अविनाशी मुनि से निवृत्ति मार्ग की दीक्षा लेकर आपने उस कार्य का आरम्भ किया जिसकी मन्त्रणा दीक्षा के समय हुई थी ॥ ३९ ॥

त्रिधिप्रदिष्टं मुनिभिः पुराणै-
रुपासितं धर्मपथाऽविरुद्धम् ।

गुरोरुदासीनपथं प्रगृह्य
निरस्तचिन्तो भगवान्बभूव ॥४०॥

वेदों द्वारा समर्थित तथा सनकादि मुनियों द्वारा सेवित परम्परा प्राप्त उदासीन व्रत को अविनाशी मुनि से प्राप्त कर श्रीचन्द्रमौलि सर्वदा के लिये निश्चिन्त हो गये ॥ ४० ॥

हृदिस्थितानां शुभवासनानां
प्रसंगमभ्येत्य पुरःस्थितानाम् ।
शिवावतारश्चकमे समृद्धिं
यथा समेयाद्भुवनं प्रसिद्धिम् ॥४१॥

अपने हृदय में उत्पन्न शुभ वासनाओं को समक्ष में उपस्थित देखकर भगवान् अपने कार्य में प्रवृत्त हुये ॥ ४१ ॥

भुवस्तले या विकृतिः प्रवृत्ता
बलान्निराकर्तुमना मुनिस्ताम् ।
विचारमात्मन्यवरुद्धवेगं
चिराय वव्रे कृतयोगमायः ॥४२॥

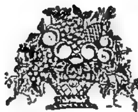
संसार में मनुष्यों के चित्त में अनेक प्रकार के जो विकार उत्पन्न हुये उनको हटाने के लिये आपने अपने हृदय में दृढ़-प्रतिज्ञा की और समयोचित आयोजन एकत्र करने में आप तत्पर हुये ॥ ४२ ॥

अतःपरं यत्परमं पवित्रं
चरित्रमस्याभवदत्र लोके ।
तदग्रिमे सर्वजनैर्विलोक्यं

क्व समयपरिणामस्तादृशोभारतेस्मि-
न्क्व पुनरुपशमाय श्रीशिवस्यावतारः ।
उभयमिदमभूद्यत्प्रेरणापारवश्या-
ज्जयति स जगदीशो विश्ववन्द्यो महेशः ॥४४॥

भारत में विप्लव मचाने वाला--कहाँ कलिकाल का विकाश ? और उसके उपशम करने के लिये कहां श्रीचन्द्रमौलि भगवान्‌का अवतार ? यह दोनों घटनायें [काकतालीय न्याय से] जिस शङ्कर भगवान् की प्रेरणा से एक साथ लोक में प्रवृत्त हुईं, वह जगत् के एक मात्र अध्यक्ष भगवान् शङ्कर ही वन्दनीय हैं ॥४४॥

इतिश्री सनाढ्यवंशोद्भव कविवर श्रीमदखिलानन्दशर्मप्रणीते
सतिलके श्रीचन्द्रमौलिचरिते महाकाव्ये
दीक्षाग्रहणं नाम-तृतीयः सर्गः



चतुर्थः सर्गः

अथ गुरुः समयोचितमादरा-
न्मुनिवराय वरायतबुद्धये ।
विधिवशादुपदेष्टुमुपस्थितो
द्रुतविलम्बितमेतदभाषत ॥ १ ॥

गत सर्ग में संक्षिप्त रूपसे जिस दीक्षा का दिग्दर्शन कराया गया था उसीका विस्तृत वर्णन इस सर्गमें किया जाता है। दीक्षा ग्रहणके अनन्तर अविनाशी मुनि ने श्रीचन्द्रजी के प्रति जो समयोचित सदुपदेश दिया था उसका यह उपक्रम है॥१

यदिदमद्य जगत्युपलभ्यते
नियमनं भवता भवतापनम् ।
प्रकृतिरत्र विकारमुपागता
मम मते न भवानपुनर्भवः ॥ २ ॥

आप कहते हैं कि—इस समय जगत में जो परिवर्त्तन दीख रहा है वह सब प्रकृति के विकार से ही उद्भूत है, अविनाशी ब्रह्म तो सर्वदा निर्विकार ही रहता है ॥ २ ॥

गुणसमुद्गतकर्मफलोदया
न नियमे नियमेन निवेश्यते ।
यदि बलात्प्रकृतिर्विकृतिस्तदा
जगदिदं विलयं स्वयमेष्यति ॥ ३ ॥

सात्विक, राजस, तामस भेद से अनेक विध कर्म-फलों की देने वाली प्रकृति—यदि बल-पूर्वक वश में नहीं की जायेगी तो जगत् का अवश्यम्भावी प्रलय उपस्थित होगा ॥ ३ ॥

प्रकृतिरात्मवशं पुरुषं बला-
न्नयति सोपि च तामनुसङ्गतः ।

नियमितानि मितानि निषेवते
गुणवशेन फलानि यथोत्तरम् ॥ ४ ॥

प्रकृति-पुरुष को बल-पूर्वक अपने वश में करती है और पुरुष प्रकृति को वश में करता है, यह दोनों आपस में एक दूसरे के वश में रहकर अनेक प्रकार के खेल खेला करते हैं ॥ ४ ॥

जगदिदं सुपथे विनिवेशय-
न्नमरतामरतामपि तां भुवि ।
स्थिरपदां कुरु साधनसंग्रहै-
रमरवन्दित! वन्दितसत्फलाम् ॥ ५ ॥

इस लिये जगत् को सन्मार्ग में लगाकर—हे अमरवन्दित! साधनों के द्वारा अपने अमरत्व को सर्वदा के लिये स्थिर कीजिये ॥ ५ ॥

विलयमद्यगतो भुवि लक्ष्यते
मुनिपरम्परया समुपागतः ।
श्रुतिपथः सुजनोपि च सङ्गतः
स विपदं-विपदन्तक! दृश्यताम् ॥६॥

आज संसार में मुनि परम्परा से प्रवृत्त श्रौत मार्ग सर्वथा लुप्त दीख रहा है और इसके प्रचारक सज्जन भी अनेक विपत्ति में फंसे हुये हैं ॥ ६ ॥

इयमनुत्तमसत्फलदायिनी
श्रुतिलता यदि नैव निषिच्यते ।
रसकला सकलापि तदालयं
प्रतिगतैव वर्तेति विचार्य ॥७॥

उत्तम फलों को देने वाली यह श्रुति-वल्लरी यदि सज्जनों द्वारा इस समय नहीं सींची जायगी तो संसार का समस्त सुख विलुप्त प्राय हो जायगा ॥ ७ ॥

यदि जरा मयि नैव पदं क्रिया-
दहह तर्हि कथंचिदहं बलात् ।

श्रुतिलतां तिलतामभितोगतां
श्रमजलैरुचितां गतिमापयम् ॥८॥

इस समय जरावस्था यदि मुझे न सताती, तो मैं बल पूर्वक शुष्क हुई इ. श्रुति-वल्लरी को अपने श्रम-जल से हरी-भरी करके दिखाता ॥ ८ ॥

परमहं जरया परिवेष्टितः
श्रमवशादतिवृद्धपदंगत. ।
न वितनोमि तनोमि पदं यदि
श्रमपदे गतएव तदा भवात् ॥९॥

परन्तु मैं इस समय जरा जीर्ण तथा अधिक श्रम के कारण अतिवृद्ध होगय हूं, इस कारण परिश्रम नहीं कर सकता—यदि करूं तो जीवन नष्ट होने क भय है ॥ ९ ॥

अहह किं भवता न विलोक्यते
मदवशात्प्रहरन्ति हरन्ति ताम् ।
मुनिजनोपचितां श्रुतिवल्लरी-
मुभयतो भयतोपि विरोधिनः ॥१०॥

आप क्या नहीं देख रहे हैं ?, विरोधीजन अपने गर्व से प्रबल आक्रमणों द्वारा मुनिजन परिपालित श्रुति-वल्लरी पर किस प्रकार निर्दयता पूर्वक प्रहार कर रहे हैं ॥ १० ॥

हरहरेति वदन्नधुना बलात्
प्रहर तेषु विरुद्धदलेष्वलम् ।
न दयिता दयिता विजनेषु ते
विजयितामुपगच्छ यथोचिताम् ॥११॥

इस समय आप विरोधि-वर्ग पर प्रहार कीजिये, यह समय साधुजनोचित दया का नहीं है प्रत्युत विरोधियों पर विजय प्राप्त करने का है ॥ ११ ॥

प्रथमतो नय भेदपथं लयं
भुवि बलेन नु येन कृतं पदम् ।

कुरु तदुत्तरमात्मविजृम्भणं
शिव ! शिवेति शिवेति सदा वदन् ॥१२॥

हे शिवावतार ! सब से प्रथम तो आप हिन्दू जाति में साम्प्रदायिक विरोध को दूर करनेका यत्न कीजिये, जिसने भारतमें अपना निवास स्थान बनाया है। इसके अनन्तर अपने आत्मिक-बल से धर्म का प्रसार कीजिये ॥ १२ ॥

प्रतिपदं विवदन्ति वृथा जना
हरिपदानुरतान्हरभावनाः ।
हरपदानुरतानथ ते सदा
मम मते धिगिमान्धिगिमानपि ॥१३॥

इस समय जहां देखो वहां व्यर्थ ही शैव-वैष्णवों से, और वैष्णव-शैवों से विवाद करते हैं, मेरी अनुमति में यह दोनों प्रशंसा के योग्य नहीं हैं ॥ १३ ॥

हरिरिति प्रवदन्यदि लभ्यते
भुवि विमुक्तिपदं पदमाश्रितैः ।
हरहरेति वदन्नपि लभ्यते
विवदनं वदनं कथमाविशत् ॥१४॥

हरि के स्मरण करने से यदि मुक्ति प्राप्त होती है तो हरहर करने से भी मुक्ति अनायास मिलती है फिर दोनों सम्प्रदायों में विवाद कहां से आया ? ॥ १४ ॥

अहह दुर्दिनमेतदुपस्थितं
विवदनाद्वदनादिह किं ब्रुवे ।
प्रकृतिरेकतया समुपस्थिता
तदुभयत्र मुधा जनवञ्चनाः ॥१५॥

दैव-दुर्विपाक से आज भारतमें वह दिन आगया जबकि हृत्-धातु रूप प्रकृति के एक होने पर भी हरिहरात्मक रूप में मनुष्य व्यर्थ विवाद उठा रहे हैं ॥१५॥

हरिहरौ रविशक्तिगणाधिपा
निगममन्त्रपदैः प्रतिपादिताः ।

प्रथमतोऽथ-मतोऽयमनुग्रहः
स निगमे निगमेक्षणकोविदैः ॥१६॥

वेदज्ञ विद्वानोंने वेदोंमें शक्ति, शिव, सूर्य, गणेश, हरि इन पाँचों देवताओंका पहिले ही से वर्णन किया है इसलिये इस विषय में विवाद उठाना व्यर्थ है ।१६।

निगममन्त्रशतैः प्रतिपादिते
भुवि समर्चनमार्गमुपागते ।
विविधदेवसमादरसत्पथे
न मनुजा मनुजादनरागिणः ॥१७॥

जब अनेक वेद मन्त्रों में भिन्न भिन्न उपासना का समर्थन मिलता है, तब उपासकों को अपने अपने इष्ट का पूजन करना चाहिये, उसको छोड़कर वे व्यर्थ ही आपस में प्राण-सहार क्यों करते है ? ॥ १७ ॥

विविधमांसरसाशनतत्पराः
प्रतिपुर सुरया-सुरयाजिन. ।
विधिविरुद्धपथेपु वितन्वते
गतधियः स्वमतिं निरयाहृताम् ॥१८॥

आजकल जहा देखो वहा सुरा से सुरों का यजन करने वाले तामस-जन मग्न, माम के चक्र में पड़ कर वेद विरुद्ध मार्ग का अवलम्बन कर रह हैं ॥१८॥

निजविनिर्मितपुस्तककल्पनै-
र्जगति तन्त्रविदो निगमानपि ।
जनमते न मतेऽपि विडम्बय-
न्त्यहह दैवविपाकविमोहिताः ॥१९॥

वाम मार्ग प्रतिपादक नवीन नवीन ग्रन्थ लिखकर बहुत से यवन तान्त्रिक वेदादि सद्ग्रन्थों की निन्दा करके मनुष्यों को वैदिक सिद्धान्त से विचलित कर रहे हैं ॥ १९ ॥

द्वयमिदं यदि लोकमते स्थिरं
प्रभवता भवता निजगौरवात् ।

जनपदे विनिवेश्य विधीयते
स्थिरतरं किमतःपरमीप्सितम् ॥२०॥

संसार में प्रचलित इन दो बातों को यदि आप अपने प्रबल पुरुषार्थ से हटाकर श्रौत-मार्ग का स्थिर प्रचार कर सकें तो इससे बढ़कर मेरे लिये अन्य कोई प्रसन्नता का स्थान नहीं है ॥ २० ॥

चरमभागमुपेयुपि जीवने
निगदितास्ति मया निजवासना।
शमरताऽमर ! तामुपजीवयं
स्वसमये निजपौरुषतः स्थिराम् ॥२१॥

हे अमर ! हमने अपने जीवन के अन्तिम भाग में आपके समक्ष यह अपनी प्रबल वासना उपस्थित की है, आप अपने बल से इसको पुनर्जीवन दे कर पूर्ण कर दीजिये ॥ २१ ॥

जगति ते नवजीवनतः स्थितिं
यदि गमिष्यति वेदपथः शिवः।
प्रभवते भवते विबुधोजनः,
स्तुतिपदानि पठिष्यति सर्वतः ॥२२॥

आपके जीवन में यह वैदिक मार्ग यदि आपके परिश्रम से स्थिरता को प्राप्त होगया तो समस्त वेदज्ञ विद्वान् आपका यश-गान करेंगे ॥ २२ ॥

जनपरिस्थितिमत्र भवे भवा-
न्यदि करिष्यति नैतिकजीवनाम् ।
अधमशासनमेष्यति सत्वरं
प्रविलयं विलयन्त्रितभोगिवत् ॥२३॥

आपने अपने पुरुषार्थ से यदि जनता में नैतिक-जीवन का सञ्चार कर दिया तो यवनों का समस्त उत्पात इस समय अन्तर्हित हो जायगा ॥ २३ ॥

शतशएव रघोः कुलसंभवा
यदुपतेरपि विस्मृतपौरुषाः

अनुभवन्ति दशामतिदुःखदां
परिभवेऽरिभवेऽत्र कुतः सुखम् ॥२४॥

यवनों के अत्याचारों से पीड़ित सैकड़ों रघुवंशी और यदुवंशी क्षत्रिय इस समय दुर्दशा का अनुभव कर रहे हैं ॥ २४ ॥

किमधिकं कथयामि भवानिदं
समधिकं परिवेत्ति मदुक्ततः ।
कुरु तथा कृतिमत्र यथा भवे-
दुपरता परतापसमुत्थितिः ॥२५॥

मैं कहां तक वर्त्तमान समय की दुर्दशा का वर्णन करू ? आप स्वयं मुझसे अधिक इस विषय में अनुभव प्राप्त कर चुके हैं, इस लिये ऐसा कार्य कीजिये जिससे इस दुःख का अन्त हो ? ॥२५॥

इदमुदीर्य मुनिम्प्रति सादरं
स भगवानविनाशिमुनिस्तदा ।
विधिवशादनयत्कथनं निजं -
शमवतामवतां हृदये स्थितिम् ॥२६॥

श्रीचन्द्र भगवान् के प्रति इतना कहकर अविनाशी मुनि ने समयोचित अपना कथन यथावसर समाप्त कर दिया ॥ २६ ॥

अवसितिं गमयन्प्रकृतं विधिं
पुनरसावुपविश्य निजासने ।
अनमनो नमनोचितसत्प्रभ-
स्तमिदमाह मुनिं शिवसन्निभम् ॥२७॥

प्रस्तुत कथन का उपसंहार कर अपने आसन पर बैठकर अविनाशी मुनि ने शिव-स्वरूप श्रीचन्द्र जी से फिर कहा ? ॥ २७ ॥

समुपदिश्य भवन्तमवस्थितं
विकसितं मम हृत्कमलं तथा ।

सकमलं कमलं रविमण्डलं

समवलोक्य यथा नभसि स्थितम् ॥२८॥

हे भगवन् ! आपके समक्ष अपना हृद्गत अभिप्राय कहकर मेरा हृदय ऐसा प्रफुल्लित हुआ है जैसा आकाशगत सूर्य को देखकर जलगत कमल का हृदय विकसित होता है ॥ २८ ॥

गुरुवरादधिगत्य यथोचितां

शमधनामधनार्थितभावनाम् ।

मुनिवरोपि निरस्तकुलक्रमो

व्रतमिदं समपूरयदादरात् ॥२९॥

इस प्रकार अविनाशी मुनि से समयोचित उपदेश पाकर श्रीचन्द्र भी अपने कुटुम्ब की समस्त चिन्ताओं को छोड़ अपने मुनिव्रत को पूरा करने के लिये प्रवृत्त हुये ॥ २९ ॥

उभयतो-भयतोपि जनस्थितिं

बहु विलोक्य विपत्तिविमर्दिनीम् ।

सुमनसो निजभक्तजनव्रजे

सुमनसां निचयं ववृषुः शिवम् ॥३०॥

संसार की बिगड़ी हुई परिस्थिति को सुधारने के लिये यह व्रत श्रीचन्द्रमुनि को प्रवृत्त देखकर देवगणों ने भी उस समय उनपर पुष्प-वर्षा की ॥ ३० ॥

एतद्रसान्निगदिदं बुधवन्दनीय-

देवस्य भव्यचरितं पठताञ्जनानाम् ।

भक्तिर्भवे भवतु भूतपतौ भयैक-

त्राणास्पदे हरिविरिञ्चिमहेन्द्रवन्द्ये ॥३१॥

हमने यहां तक बुधवन्द्य श्रीचन्द्र जी का जो वर्णन किया है, उसके पढ़ने वाले सज्जनों का सर्वदा श्रीशङ्कर में अनुराग हो, यही हमारी अभिलाषा है ॥३१॥

अभ्यागतां गुरुपरम्परया पुरस्ता-

दाविष्कृतां सनसनन्दननारदाद्यैः ।

पञ्चमः सर्गः

अथ वेदविदां भूत्यै निगमागमसम्मतम् ।
अविनाशिमुनिः प्राह-मुनिशब्दार्थनिर्णयम् ॥१॥

इसके अनन्तर वेदज्ञ विद्वानों के लाभार्थ अविनाशी मुनि ने निगमागम सम्मत मुनि-शब्द का विवेचन आरम्भ किया ॥ १ ॥

मुनयो वातरशनाः पिशङ्गा वसतेऽमला ।
इति ऋग्वेदमन्त्रोऽत्र निदर्शनमुपस्थितम् ॥२॥

आपने कहा—"मुनयो वातरशनाः पिशङ्गा वसतेऽमला" इस ऋग्वेद के [१०।१३६।२] मन्त्र में मुनियों का वर्णन प्रत्यक्ष में उपलब्ध होता है ॥ २ ॥

धुनिर्मुनिरिवेत्यत्र मन्त्रे ऋग्वेदसंगते ।
उपमानार्थकत्वेन मुनिशब्दो व्यवस्थितः ॥३॥

"धुनिर्मुनिरिव शर्धस्य जिष्णोः" इस ऋग्वेद के [६।५६।८] मन्त्र में उपमानार्थ में विद्यमान मुनि-शब्द प्रत्यक्ष में विद्यमान है ॥ ३ ॥

इन्द्रो मुनीनामभवत्सखेति परिदृश्यते ।
ऋग्वेदमन्त्रे प्रत्यक्षं तदाख्यानमुपागतम् ॥४॥

"इन्द्रो मुनीनां सखा" इस ऋग्वेद के (८।१७।१४) मन्त्र में इन्द्र मुनियों का मित्र था, यह भी प्राचीन वैदिक आख्यान मिलता है ॥ ४ ॥

मन्त्रेष्वेतेषु सर्वत्र मुनिशब्दव्यवस्थितौ ।
मुनयो वैदिकाः सिद्धमेतदेव यथोचितम् ॥५॥

पूर्वोक्त तीन मन्त्रों में मुनि शब्द के मिलने पर वैदिक समय में मुनि थे यह बात अनायास सिद्ध होती है ॥ ५ ॥

उपमानार्थके मन्त्रस्थिते मुनिपदे स्फुटम् ।
सञ्ज्ञा कस्यापि सुमुनेरियमस्तीति गम्यते ॥६॥

दीक्षामिमां गुरुवरादधिगत्य मन्ये
श्रीचन्द्रमौलिरभवद्विजयी-जगत्याम् ॥३२॥

नारद आदि मुनियों द्वारा अनुमत तथा गुरु-परम्परा प्राप्त इस उदासीन दीक्षा को प्राप्त कर श्रीचन्द्र जी जगद्विजयी हुये ॥ ३२ ॥

अस्य दिग्विजयभावनावत
पद्धति विजयवर्णनक्रमे।
वर्णितां गुरुपरम्परानुगा
भावुका. पठत रम्यवर्णनाम् ॥३३॥

दिग्विजयोपयोगी साधनों द्वारा सम्पन्न श्रीचन्द्र भगवान् का दिग्विजय तथा उसमें सहयोग देने वाली गुरु-परम्परा का दिव्य चरित्र जिनको देखना हो वे अग्रिम सर्गों का अवलोकन करें ॥ ३३ ॥

अत्र यन्निगदित मया रसा-
दद्भुत यमकसगते पदे. ।
तद्भवत्वतिविनोदकारक
काव्यनिर्मितिकलाहृतात्मनाम् ॥३४॥

इस सर्ग में हमने यमकालङ्कार सहित गुरु शिष्य संवाद को लेकर जो वर्णन प्रस्तुत किया है वह साहित्य सेवी विद्वानों के लिये आनन्द प्रद हो ॥ ३४ ॥

इतिश्री मनाढ्यशोद्भव कविवर श्रीमदखिलानन्द शर्मप्रणीते
मतिलक श्रीचन्द्रमौलिचरिते महाकाव्ये
गुरूपदेशवर्णननाम-चतुर्थ सर्ग

मन्त्र में उपमानार्थक मुनिशब्द के आने पर मुनिशब्द किसी व्यक्ति विशेष का वाचक अवश्य मानना होगा अन्यथा उपमान नहीं बन सकता ॥ ६ ॥

पिशंगवसनास्ते ते मुनयो मननक्षमाः ।
कथ्यन्ते वातरशना येषामिन्द्रोभवत्सखा ॥७॥

इन्द्र जिनका मित्र था वह मुनि वेद में पिशङ्ग (पीत) वसन, मननशील और वातरशन कहे जाते हैं ॥ ७ ॥

मुनिर्देवस्य देवस्य सौकृत्याय सखा हितः ।
इति ऋग्वेदमन्त्रेऽपि सखित्वमुपलभ्यते ॥८॥

"मुनिर्देवस्य देवस्य सौकृत्याय सखा हित." इस ऋग्वेद के (१०।१३६।४) मन्त्र में भी मुनियों के साथ इन्द्र का सखित्व मिलता है ॥ ८ ॥

परमेतत्सखित्वं यन्मघोन उपलभ्यते ।
मुनिष्वेव न तन्मन्ये यतिषु व्रतवैरिषु ॥९॥

परन्तु यह जो इन्द्र का सखित्व मन्त्रों में मिलता है वह केवल मुनियों के लिये ही नियत है, यतियों के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है ॥ ९ ॥

इन्द्रो जघान त वृत्रं यतीनिव सुदारुणान् ।
इत्याथर्वणमन्त्रोऽत्र प्रत्यक्षं भेदकल्पनः ॥१०॥

"इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो वृत्रं यो जघान यतीर्न" इस अथर्ववेद के (२।५।३) मन्त्र में मुनि और यति का भेद विस्पष्ट है । निरुक्त में (न) पद उपमानार्थक लिखा है । इन्द्र ने वृत्र को सन्यासियों की तरह मारा यह मान्त्रिक पदों का प्रत्यक्ष अर्थ है ॥ १० ॥

यतिभ्यो धनमादाय भृगुभ्यः समदात्पुरा ।
इन्द्र इत्यपि ऋग्वेदे विस्पष्टमुपलभ्यते ॥११॥

"येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते" इस ऋग्वेद के (८।६।१८) मन्त्र में यह भी आख्यान मिलता है कि इन्द्र ने यतियों से धन छीन कर भृगु नामक ऋषि को दिया है ॥ ११ ॥

कौपीतकोपनिषदि स्थिरमिन्द्रस्य तद्वचः ।
अरुन्मुखान्यतीन्यत्र सोदाच्छालावृकव्रजे ॥१२॥

कौषीतकि ब्राह्मण के–"अरुन्मुखान् यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छम्" (३।१) इस वाक्य में इन्द्र के द्वारा यतियों के माँस का शालावृकों के लिये देना प्रत्यक्ष है ॥ १२ ॥

उभयत्रात्र विद्वद्भिर्वेदमर्मानुवर्तिभिः ।
बलवत्कारणं मृग्यं येनायं भेद आगतः ॥१३॥

इसलिये मुनि और यति इन दोनों शब्दों के इतिहास पर विद्वानों को विचार करना चाहिये कि यह भेद किस कारण से वैदिक साहित्य में आकर प्रविष्ट हुआ है ? ॥ १३ ॥

अतःपरमुदासीनशब्दार्थस्य व्यवस्थितिः ।
वेदादेवात्र विदुषामुपकाराय कथ्यते ॥१४॥

इसके अनन्तर अब उदासीन शब्द के अर्थ पर विचार किया जाता है जो विद्वानों के लिये अत्यन्त मननीय है ॥ १४ ॥

"तस्योदितीति" छान्दोग्यश्रुतौ समुपलभ्यते ।
"उदि" त्येतच्छिवं नाम ब्रह्मणोऽव्यक्तरूपिणः ॥१५॥

"तस्य उत् इति नाम" इस छान्दोग्य श्रुति में [१।६।७] "उत्" यह नाम उस अव्यक्त ब्रह्म का है, जो सूर्य-मण्डल के अन्दर हिरण्मय रूप है ॥ १५ ॥

उपसंवेशनार्थस्य धातोरासेः प्रकल्पितः ।
आसीनशब्दो बहुधा लभ्यते वेदवाङ्मये ॥१६॥

उपवेशनार्थक (आस) धातु से आसीन शब्द बनता है, जिसका अधिक प्रयोग वैदिक साहित्य में मिलता है ॥ १६ ॥

---

(१) अथ य एषोन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुः हिरण्यकेशः आप्रणखात्सर्व एव सुवर्णः ।

तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी तस्य उदिति नाम स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदितः (रहितः) उदेति ह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यः य एवं वेद ।

[छान्दोग्य प्रपाठक १ खण्ड २ मन्त्र ७]

उदित्येतत्परं ब्रह्म-तत्र ये सुप्रतिष्ठिताः ।
उदासीना निगदितास्तएव निगमागमैः ॥१७॥

"तत्" शब्द से यहाँ पर परब्रह्म का ग्रहण है, उस ब्रह्म में जो प्रतिष्ठित रहते हैं उनका ही नाम उदासीन है ॥ १७ ॥

ब्रह्मसंस्थपदस्यार्थे यथा भवति धारणा ।
उदासीनपदे तद्वत्तस्यैवार्थस्य निश्चितिः ॥१८॥

"ब्रह्मसस्थोऽमृतत्वमेति" इस छान्दोग्य श्रुति में ब्रह्मसस्थ पद का जो अर्थ है वही अर्थ उदासीन पद का भी है ॥ १८ ॥

एकार्थकाविमौशब्दावतोनास्त्यत्र संशयः ।
येषामस्ति यथाकालं ते पठन्तु ऋचाश्चयम् ॥१९॥

ब्रह्म-सस्थ और उदासीन यह दोनों शब्द एकार्थक होने के कारण समानार्थक हैं, इसमें जिनको सन्देह हो वे ऊपर कहे हुये वैदिक मन्त्रों का अवलोकन करें ॥ १९ ॥

प्रवृत्तिमार्गनिरताः केवलं ये भुवस्तले ।
निवृत्तिमार्गविमुखास्तएव मुनिविद्विषः ॥ २० ॥

जो केवल प्रवृत्ति-मार्ग में रत होकर निवृत्ति मार्ग का सर्वथा विरोध करते हैं वे वास्तव में मुनियों के शत्रु हैं ॥ २० ॥

मिथ्या निवृत्तिगर्वेण-येऽलसाः कर्मविद्विषः ।
देवकृत्यं विनिन्दन्ति शत्रवस्ते शचीपतेः ॥२१॥

आलसी होने के कारण कर्म-मार्ग से विमुख जो मनुष्य दम्भ से निवृत्ति मार्ग का ढोंग दिखाकर देवकृत्य की निन्दा करते हैं वे इन्द्र के शत्रु हैं ॥२१॥

निवृत्तिमार्गनिरता अपि ये कर्मयोगिनः ।
मुनयस्ते मता लोके येषामिन्द्रोऽभवत्सखा ॥२२॥

निवृत्ति मार्ग में प्रवृत्त होने पर भी जो सज्जन कर्मयोग का विश्व-रक्षा के लिये समर्थन करते हैं, और वन में रहते हुए आत्म साधन भी करते हैं, इन्द्र उनसे मित्रता रखता है ॥ २२ ॥

अरण्यसंस्थोथमुनिर्बुभूपेदिति वाक्यतः ।
भारते मुनिशब्दोयमुदासीनार्थको मतः ॥२३॥

"अरण्यसंस्थोय मुनिर्बुभूषेत्" यह प्रयोग पर्वोय [३७।३९] महाभारत का वचन अरण्य-संस्थ होने के कारण उदासीनों को ही मुनि कहता है ॥ २३ ॥

बृहदारण्यकेप्येवं मुनिशब्दः प्रलभ्यते ।
तमेवात्मानमित्यत्र वाक्ये विज्ञैर्विलोक्यताम् ॥२४॥

"तमेवात्मानं विदित्वा मुनिर्भवति" इस बृहदारण्यक (४।४।२२) श्रुति में भी आत्म-ज्ञान के अनन्तर मुनित्व प्राप्त होना सिद्ध है ॥ २४ ॥

उदासीनवदासीनमिति वाक्ये व्यवस्थिते ।
सादृश्यार्थे वतिः सोपि व्यक्तिमाश्रित्य तिष्ठति ॥२५॥

"उदासीनवदासीनम्" इस भगवद्गीता वाक्य में (९ । ९) सादृश्यार्थक जो वतिप्रत्यय है वह व्यक्ति का अवलम्ब लेकर ही लोक में रहता है ॥ २५ ॥

नास्तिचेत्कोप्युदासीनः कथं तद्वदिति स्मृतिः ।
अस्तिचेत्सिद्धमेवात्र तस्य पूर्वत्वमादृतम् ॥२६॥

यदि उदासीन संज्ञक कोई प्राचीन वैदिक मुनि न माना जावे तो "तद्वत्" प्रयोग नहीं बन सकता, यदि उसका अस्तित्व प्राचीन है तो उसकी प्राचीनता स्वतः सिद्ध है ॥ २६ ॥

न केनाप्युच्यते लोके तवाकाशवदाननम् ।
चन्द्रवन्मुखमित्यादि वाक्यं सर्वैः प्रयुज्यते ॥२७॥

संसार में कोई भी बुद्धिमान् [आकाशवत्-मुखम्] ऐसा नहीं कहता है। प्रत्युत [चन्द्रवन्मुखम्] ऐसा सब कहते हैं ॥ २७ ॥

उपमानोपमेयत्वभावो वस्तुनि तिष्ठति ।
नावस्तुनि ततः सिद्धमुदासीनपदं स्थिरम् ॥२८॥

संसार में उपमानोपमेय भाव किसी वस्तु को लेकर ही ठहरता है, विना वस्तु के नहीं इस लिये उदासीन पद प्राचीन अवश्य मानना होगा ॥ २८ ॥

भगवद्वाक्यतः सिद्धमुदासीनपदं यदि ।
कः पुनस्तत्र सन्देहः स्थितोद्यापि मनस्विनाम् ॥२९॥

भगवद्गीता में भगवन्मुख से जब उदासीन पद की प्रतिष्ठा हो चुकी, तब उसके विषय में अब विवाद उठाना व्यर्थ है ॥ २९ ॥

अतः परमुदासीनपथस्यास्य प्रवर्तकान् ।
मुनीनहं प्रवक्ष्यामि महाभारतवाक्यतः ॥३०॥

अब यहां पर उदासीन मार्ग प्रवर्त्तक प्राचीन मुनियों का प्रसङ्ग महाभारत के आधार पर कहा जाता है ॥ ३० ॥

[युग्मम्]

सनः सनत्सुजातश्च सनकः ससनन्दनः ।
सनत्कुमारः कपिलः सप्तमश्च सनातनः ॥३१॥
सप्तैते मानसाः प्रोक्ता ऋषयो ब्रह्मणः सुताः ।
स्वयमागतविज्ञाना निवृत्तिं धर्ममास्थिताः ॥३२॥

महाभारत के शान्ति पर्व में नित्यसिद्धज्ञान तथा निवृत्ति मार्ग का आश्रय लेने वाले—सन, सनत्सुजात, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, कपिल, सनातन यह सात ब्रह्मा के मानस पुत्र कहे हैं [३४० ७२।७३] ॥ ३१—३२ ॥

वैधात्रोयं मुनिगणः स्वभावाद्विषयव्रजे ।
उदासीनः पुरा मार्गमुदासीनमकल्पयत् ॥३३॥
खेलन्तोद्यापि ते बाला मुनयो नयवेदिनः ।
उदासीना इति जनैरुच्यन्ते वेदमानिभिः ॥३४॥

यह वैधात्र मुनिगण स्वभाव ही से विषयों में उदासीन रहने के कारण प्राचीन समय में उदासीन पद्धति के प्रवर्त्तक हुए—जो आज भी बालखिल्य नाम से ऋग्वेद के अन्दर बालखिल्य सूक्त के द्रष्टा माने जाते हैं ॥३३-३४॥

इमानुत्पाद्य तनयान्विधाता सृष्टिकल्पने ।
नियोजितुं प्रववृते परं ते न तथा गताः ॥३५॥

सृष्टि के आरम्भ काल में सन आदि सात मानस पुत्रों को उत्पन्न कर विधाता ने इनसे सृष्टि उत्पन्न करने को कहा, परन्तु इन्होंने पिता का यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया ॥ ३५ ॥

उदासीनानिमान्वीक्ष्य विधाता सर्जने पुनः ।
सप्तपुत्रान्स्वमनसा सुपुवे सर्जने रतान् ॥३६॥
मरीचिरङ्गिराश्चात्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
वसिष्ठ इति सप्तैते मानसा निर्मिता हि ते ॥३७॥

सृष्टि कार्य में उदासीन इन पुत्रों को देखकर विधाता ने सृष्टि-क्रम चलाने के लिये अन्य सात मानस पुत्रों को उत्पन्न किया, जो कि मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ इन नामों से संसार में प्रसिद्ध हुए ॥३६-३७॥

एते वेदविदो मुख्या वेदाचार्याश्च कल्पिताः ।
प्रवृत्तिधर्मिणश्चैव प्राजापत्ये च कल्पिताः ॥३८॥

यह सातों पुत्र आज भी वेदज्ञ, प्रवृत्ति मार्ग निरत, मुख्य वेदाचार्य और प्राजापत्य सर्ग के प्रवर्त्तक माने जाते हैं ॥ ३८ ॥

इति भारतपद्याभ्यां शान्तिपर्वणि वर्णिताः ।
सप्तैव मानसाः पुत्राः प्रवृत्तिपथमाश्रिताः ॥३९॥

ऊपर कहे हुये महाभारत के दो पद्यों में जो कि (शान्तिपर्व अध्याय ३४० पद्य ६९—७०) में विद्यमान है; सात ही मानस पुत्र प्रवृत्ति मार्ग के पथिक कहे गये हैं ॥ ३९ ॥

द्वाविमौ सुपथौ लोके प्रवृत्तौ सर्जनक्रमे ।
आद्यस्तेषामुदासीनः परो लोकप्रवर्तकः ॥४०॥

सृष्टि के आरम्भ काल से ही संसार में यह दोनों ही मार्ग प्रचलित हुए; जिनमें पहिला उदासीन मार्ग है और दूसरा प्रवृत्ति मार्ग है ॥ ४० ॥

त्रयोन्ये मानसाः पुत्रा मनुप्रोक्ताः पुरातनाः ।
लभ्यन्ते नारदभृगुप्राचेतसमुखाः क्रमात् ॥४१॥

पूर्वोक्त मानस पुत्रों के अतिरिक्त मनुस्मृति में तीन और मानस पुत्रों का वर्णन मिलता है जिनका नाम नारद, भृगु और प्राचेतस है ॥ ४१ ॥

एष्वेको नारदः सर्गादुदासीनतया स्थितः ।
उदासीनपथं भेजे तदन्यौ सर्जनक्रमम् ॥४२॥

इन तीन पुत्रों में से देवर्षि नारद पहिले ही से विषयों से उदासीन र शेष दो सृष्टि मार्ग के प्रवर्तक हुए ॥ ४२ ॥

सनाद्याः सप्त मुनयो नारदश्चाष्टमः पुरा ।
उदासीनपथं लोके तेनुः सर्जनकालतः ॥४३॥

सन आदिक सात पहिले और अष्टम नारद ये सृष्टि के आरम्भ काल से उदासीन धर्म के प्रचारक हुये ॥ ४३ ॥

एभ्यः प्रवृत्तो भुवने मार्ग एषः सनातनः ।
अद्यापि लभ्यते भूमावुदासीनतया स्थिरः ॥४४॥

संसार में इन आठ मुनियों से प्रवृत्त यह सनातन उदासीन धर्म आज भारत में उदासीन नाम से प्रचलित है ॥ ४४ ॥

श्रीमद्भागवतेऽप्येष मार्गः समुपलभ्यते ।
तृतीयस्कन्धमध्यस्थद्वादशध्यायदर्शितः ॥४५॥

यह उदासीन मार्ग श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध में द्वादशाध्याय के अन मी कपिल और देवहूति के सम्वाद में विद्यमान है ॥ ४५ ॥

निवृत्तिमार्गपरतामनुसृत्य विनिर्मितम् ।
तत्रैतत्पद्ययुगलं यदधः परिलिख्यते ॥४६॥

वहां पर निवृत्ति मार्ग का अवलम्ब लेकर श्री व्यासदेव ने दो श्लो लिखे हैं, जो नीचे प्रस्तुत हैं ॥ ४६ ॥

सनकञ्च सनन्दञ्च सनातनमथात्मभूः ।
सनत्कुमारञ्च मुनीन्निष्क्रियानूर्ध्वरेतसः ॥४७॥

तान्वभाषे स्वभूः पुत्रान्प्रजाः सृजत पुत्रकाः ।
ते नैच्छन्मोक्षधर्माणो वासुदेवपरायणाः ॥४८॥

वहाँ पर लिखा है कि ब्रह्मा ने—ऊर्ध्वरेता, निष्क्रिय, सनक, सनन्दन सनातन और सनत्कुमार इन चार पुत्रों को उत्पन्न कर उनसे कहा कि तुम प्रज

का सर्जन करो ? परन्तु, केवल वासुदेव-परायण उन पुत्रों ने मोक्ष-मार्गी होने के कारण अपने पिता की आज्ञा का पालन नहीं किया ॥ ४७—४८ ॥

पद्याभ्यामेवमुक्ताभ्यां व्यासदेवेन दर्शितः ।
उदासीनपथः पूर्वं योधना प्रसृतिङ्गतः ॥४६॥

ऊपर कहे दो पद्यों द्वारा व्यासदेव ने पूर्व समय में ही उदासीन मार्ग का समर्थन कर दिया जो आजकल विस्तार को प्राप्त होगया है ॥ ४९ ॥

एतावेव पथौ लोके श्रेयः प्रेय इति स्मृतौ ।
कठोपनिषदिन्यस्तो ययोर्भेदः प्रलभ्यते ॥५०॥

प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग इन दो मार्गों का वर्णन ही कठोपनिषद् में श्रेय और प्रेय के नाम से उपलब्ध होता है ॥ ५० ॥

श्रेयो निवृत्तिमार्गोस्ति य उदासीन उच्यते ।
प्रेयः प्रवृत्तिमार्गोस्ति योयं बहुजनानुगः ॥५१॥

श्रेय निवृत्ति मार्ग है-जिसको उदासीन मार्ग कहते हैं और प्रेय प्रवृत्ति मार्ग है जो सृष्टि क्रम का सचालन करता है ॥ ५१ ॥

निवृत्तिमार्गनिरता मुनयः सनकादयः ।
प्रवृत्तिमार्गनिरता वसिष्ठाद्या महर्षयः ॥५२॥

ससारमें निवृत्ति मार्ग में निरत सनकादि मुनि हुये और प्रवृत्ति मार्ग निरत वसिष्ठादि महर्षि हुये ॥ ५२ ॥

भेदोऽनयोर्महानेष लभ्यते मार्गभेदतः ।
तस्मादिमौ मुनिऋषी भिन्नावेव निसर्गतः ॥५३॥

मार्ग भेद से इन दोनों में बड़ा भारी भेद विद्यमान है इसलिये मुनि और ऋषि स्वभाव से ही भिन्न हैं ये कदापि एक नहीं हो सकते हैं ॥ ५३ ॥

एकरूपेण पश्यन्ति ये नरा भुवि तानृषीन् ।
मुनीगपि न ते विज्ञाः पण्डितम्मन्यमार्गगाः ॥५४॥

जो मनुष्य इनमें भेद न मानकर इन दोनों को एक मानते हैं वे पण्डितम्मन्य कदापि विज्ञ नहीं कहे जा सकते हैं ॥ ५४ ॥

सनाढ्यगौरवादर्शे विस्तरेण मया कृतम् ।
सनकादिमुनिव्रातवर्णनं तत्र वीक्ष्यताम् ॥५५॥

हमने "सनाढ्य गौरवादर्श" नामक निबन्ध में सनकादि मुनियों के विषय मे बहुत कुछ विवेचन किया है वह वहीं पर देखना चाहिये ॥ ५५ ॥

उदासीना. स्वविषये सर्वेपीमे महोदयाः ।
उदासीनपदं प्राप्य रमन्ते बालखिल्यवत् ॥५६॥

उदासीन मार्ग प्रवर्तक सभी सनकादि मुनिगण विषयों से बहिर्मुख होने के कारण आज भी बालखिल्यों के समान सर्वत्र विचरते हैं ॥ ५६ ॥

बाल्यखिल्यपदं वेदे प्राणेष्वेव प्रतिष्ठितम् ।
आबालं तद्गतिर्यस्माल्लभ्यते जन्मभागिषु ॥५७॥

शतपथ ब्राह्मण में [८ । २ । ३१ ।] बालखिल्य शब्द सर्वत्र गति होने के कारण प्राणवाचक भी लिखा है ॥ ५७ ॥

प्राणा यथा प्रियतमाः शरीरे देहमानिनाम् ।
उदासीनास्तथा लोके सर्वदा ब्रह्मवादिनाम् ॥५८॥

देहाभिमानी पुरुषों को जिस प्रकार प्राण प्रियतम हैं उसी प्रकार ब्रह्मवादी महात्माओं को उदासीन मुनि प्रिय हैं ॥ ५८ ॥

मनसा कल्पिता यस्मादिमे मुनिवरा. पुरा ।
विधात्रा तत एतेषु न विकारोस्ति योनिजः ॥५९॥

इन सनकादि मुनियों को ब्रह्मा ने मन से उत्पन्न किया इस कारण इनमे योनिज विकार नहीं होता है । योनिज तथा अयोनिज भेद से सृष्टि में द्वैविध्य स्वभाव सिद्ध है ॥ ५९ ॥

विद्यावंशमिमं सर्वे वर्धयन्ति पुरातनम् ।
उदासीना मुनिवरा न वंशं योनिसम्भवम् ॥६०॥

विषयों से उपरत उदासीन मुनिगण प्राचीन विद्या वंश को ही अब तक चलाते आरहे हैं इनमें यौन वंश नहीं चलता है ॥ ६० ॥

मुनिभ्यः प्रसृतो लोके नानाभेदमुपागतः ।
उदासीनपथः प्रायो लभ्यते मुनिमण्डले ॥६१॥

सनकादि मुनियों से प्रवृत्त अनेक भेदों से विभिन्न यह उदासीन मार्ग आज कल प्रायः मुनि मण्डल में मिलता है ॥ ६१ ॥

अतो मुनिव्रतं धार्यं वेदमार्गानुयायिभिः ।
श्रुतिसिद्धः पथो यस्य राजमार्गइव स्थितः ॥६२॥

इसलिये वैदिक मुनियों को इसी मुनि व्रत को धारण करना चाहिये जिस का श्रुति सिद्ध मार्ग राजपथ की तरह सर्वत्र प्रसिद्ध है ॥ ६२ ॥

सोयं तव प्रयत्नेन-नितरां परिवर्द्धितः ।
निवृत्तिमार्गो भुवने वर्धतामुत्तरोत्तरम् ॥६३॥

हमारे परिश्रम से वृद्धि को प्राप्त हुआ यह निवृत्ति मार्ग आपके प्रयत्न से अब बहुत वृद्धि को प्राप्त होगा ॥६३॥

यस्योदयेन सर्वत्र भारते वैदिकः पथः ।
पुनरेष्यति वेगेन निरस्तेतरकापथः ॥६४॥

और इसीके द्वारा समस्त भारत में अन्य कुत्सित मतों का नाश करने वाला वैदिक मार्ग फिर चमकेगा ॥६४॥

यस्यायं भुवनतले महानुदारः
सन्मार्गः प्रसृतिमुपेत्य धर्मभावम् ।
अद्यापि प्रथयति भारतीयमात्रे
सर्वज्ञः स जयति निर्भयो महेशः ॥६५॥

जिसके द्वारा प्रवृत्त बड़ा उदार यह मार्ग आज भी भारतीय-जनों में धर्म मार्ग को विस्तृत कर रहा है, वह निर्भय भगवान् शङ्कर ही वन्दनीय है ॥६५॥

इतिश्री सनाढ्यवंशोद्भव कविवर श्रीमदखिलानन्दशर्मप्रणीते
सतिलके जगद्गुरुश्रीचन्द्रदिग्विजये महाकाव्ये
मुनिमार्गनिरूपणंनाम-पञ्चमः सर्गः

षष्ठः सर्गः।

अथ प्रसङ्गादविनाशिनामा
मुनिः स्वशिष्यं पुरतो निविष्टम्।
परम्परां बोधयितुं प्रवृत्तो
यथाक्रमं सादरमेवमाह ॥१॥

गत सर्ग में मुनि मार्ग का विवेचन किया गया है, इसके अनन्तर अपने शिष्य के प्रति अविनाशी मुनि-मुनियों की परम्परा का वर्णन करते हुए अपने कथन का उपक्रम इस प्रकार करते हैं ॥ १ ॥

सनातनं सद्गुरुभिः प्रदिष्टं
निवृत्तिमार्गं जगतीतलेऽत्र।
पुनर्नवीकर्तुमनन्तवीर्यः
सनत्कुमारः प्रथमो बभूव ॥२॥

गुरु परम्परा प्राप्त सनातन निवृत्ति मार्ग का इस भारतवर्ष में शैथिल्य दूरकर पुनः नवीन रूप से इसमें जीवन लाने वाले प्रथम सनत्कुमार मुनि हुए ॥ २ ॥

मुनिव्रतोऽयं-मुनिवेषधारी
प्रवृत्तिमार्गं परिहाय दूरे।
निवृत्तिमार्गं भुवने यथाव-
त्ततान निर्वासितलोकमायः ॥३॥

विषयों से उदासीन रहकर आपने प्रवृत्ति मार्ग का निराकरण करते हुए समस्त लोकों में निवृत्ति मार्ग का प्रसार किया ॥ ३ ॥

गुरुर्मुनीनामथ्यमादिसर्गे
सनत्कुमारो निगृहीतमारः।
सनातनेषु स्वमहोदरेषु
ततान दीक्षां परमार्थवीक्षाम् ॥४॥

आदि सर्ग में नेही सनत्कुमार प्रवृत्ति मार्ग में प्रवृत्त अपने सहयोगियों को निवृत्ति मार्ग में लगाकर अपने कर्तव्य का पालन करते थे ॥ ४ ॥

अथ नारदमीक्ष्य तादृशं
तमुदासीनपथे निवेशयन् ।
मुनिरेष यथार्थदर्शनः
प्रथयामास निजोचितं मतम् ॥५॥

आपने नारद मुनि को अपने सिद्धान्त का रहस्य समझाकर अपना अनुयायी बनाया, जिससे सर्वत्र इसका प्रसार होगया ॥ ५ ॥

दीक्षामवाप्य सदृशीं मुनिवंशकेतुः
श्रीनारदो जगति धातृसुतात्सबन्धोः ।
वीणानिनादमुखरीकृतसर्वलोकः
सर्वान्निवृत्तिपथमेव निनाय लोकान् ॥६॥

मुनि मण्डल मण्डन श्री नारद जी महाराज अपने पूर्वज सनत्कुमार जी से निवृत्ति मार्ग की दीक्षा पाकर बड़े प्रसन्न हुए और वीणा का मधुर निनाद सुनाते हुए समस्त मुनि मण्डल में अपने सिद्धान्त का प्रसार करते रहे ॥६ ॥

हारीतगोत्रप्रथितो महात्मा
वाभ्रव्यनामा जगृहेऽथ दीक्षाम् ।
श्रीनारदादेव यथाक्रमेण
सम्वर्धयामास निवृत्तिमार्गम् ॥७॥

इनके अनन्तर हारीत गोत्र में जन्म लेने वाले श्रीवाभ्रव्य मुनि ने नारद जी से उदासीन मार्ग की दीक्षा लेकर ससार में निवृत्ति मार्ग का प्रसार किया ॥ ७ ॥

वाभ्रव्यादधिगतभव्ययोगमार्गः
सम्प्राप्य क्रमवशतोऽत्र धर्मदीक्षाम् ।
श्रीदाल्भ्योप्यनुपदमादरादुपेतं
लोकेस्मिन्मुनिपथमेकमेव तेने ॥८॥

बाभ्रव्य मुनिके अनन्तर उनसे ही योग प्राप्त करके महामुनि दाल्भ्य इस मार्ग के आचार्य हुए जिन्होंने समस्त भूमण्डलमें उदासीन मार्ग चलाकर इसका महत्व विस्तृत किया ॥ ८ ॥

अयमेव दाल्भ्यनामा
मुनिः स्वयोगेन दर्शयामास ।
छान्दोग्योपनिषदि तां
विद्यामन्नप्रवर्धिनीं रम्याम् ॥९॥

इसी दाल्भ्य मुनि ने जिनका छान्दोग्य में दूसरा नाम बकदाल्भ्य मिलता है अपने योग बल से अन्नविद्या का आविष्कार किया जिसका वर्णन छान्दोग्य के प्रथम प्रपाठक में शौवउद्गीथ के नाम से मिलता है ॥ ९ ॥

अयमेवपाणिपात्रो
दिगम्बरोऽश्वेन सङ्गतं पार्श्वे ।
अर्जुनमुत्तरदानै-
र्निरस्तबन्धश्चकार मुनिवर्यः ॥१०॥

येही दिगम्बर दाल्भ्य मुनि अश्वमेधीय यज्ञाश्व की रक्षामें नियुक्त होकर अपने शरण में आए हुए अर्जुन के प्रति उपदेश देकर उसको निरस्तसमस्त बन्धन कर चुके ॥ १० ॥

अथ जयमुनिरस्मिन्भारते दाल्भ्यशिष्यः
स्वकृतिभिरुपकारं भारतस्यास्य चक्रे ।
तदुपकृतिमपीमे भारतीयः प्रसन्ना
जयपदकथनेनाहर्निशं संस्मरुस्ताम् ॥११॥

आपके अनन्तर इस भारत भूमि में आपके शिष्य जयमुनि इस मार्गके प्रचारक हुए जिनका गुण गान आज भी यहां के सत्पुरुष "जय" शब्द के साथ करते हुए आनन्दित होते हैं ॥ ११ ॥

भुवनविदितवृत्तां भारतीमेष वन्द्यो
जयमुनिरुपचारैरर्चयन्वेदतत्त्वम् ।

तदुदितवरदानैराप्य यद्यद्विवव्रे
तदिह मुनिचरित्रग्राहिणः ख्यापयन्ति ॥१२॥

आपने विधिपूर्वक सरस्वती माता की आराधना करके उनसे वर प्राप्त कर जिन गूढ़ वैदिक तत्वों को प्राप्त किया वे वैदिक गूढ़ रहस्य आज मुनि मण्डल में गाये जारहे हैं ॥ १२ ॥

अस्याभवज्जनपदप्रथितः स शिष्यः
सञ्जीवनीं जगति यः समवाप्य विद्याम् ।
मृत्योर्मुखाज्जगदिदं विनिवार्य मन्ये
सञ्जीवनेति निजनाम चकार सार्थम् ॥१३॥

आपके अनन्तर इस सम्प्रदाय के प्रचारक आपके शिष्य सञ्जीवन मुनि हुए जिन्होंने अपने तपोबल से सञ्जीवनी विद्या को प्राप्त कर मृत्यु के मुख से संसार को बचाते हुए अपना नाम अन्वर्थक सिद्ध कर दिया ॥ १३ ॥

कश्यपाय मुनये निजविद्या-
मेष शिष्यपदवीं प्रगताय ।
सम्प्रदाय मुनिराडुपकारं
भारतीयमनुजेषु ततान ॥१४॥

आपने शिष्य पदवी को प्राप्त हुए मुनिवर कश्यप जी को अपनी मृत सञ्जीवनी विद्या देकर संसार का जो उपकार किया वह परिमित अक्षरों में नहीं लिखा जा सकता है ॥ १४ ॥

दष्टुं परीक्षितनृपं रभसाद्व्रजन्तं
मार्गे विलोक्य मुनिरेष विचित्रवीर्यः ।
तं तक्षकं गुरुपरम्परयाऽनुलब्धां
विद्यामिमां कृतिवशात्सफलीचकार ॥१५॥

एक समय की बात है कि राजा परीक्षित को डसने के लिये जिस समय तक्षक सर्प जारहा था उस समय कश्यप मुनि ने राजा को बचाने के लिये बहुत

कुछ प्रयत्न किया जिसका वर्णन महाभारत के आदि पर्व में ४१ और ४२ अध्याय के अन्दर आता है ॥ १५ ॥

सञ्जीवनानन्तरमत्र लोके
श्रीपद्मनामा मुनिराविरासीत् ।
येनातियत्नेन महामहिम्ना
वेगादुदासीनपथः प्रतेने ॥१६॥

सञ्जीवन मुनि के अनन्तर यहां पर श्रीपद्म नामक उदासीनाचार्य प्रकट हुए जिन्होंने बड़े पुरुषार्थ के साथ इस निवृत्ति मार्ग का प्रसार किया ॥ १६ ॥

अयमदान्मुनये नयपण्डितः
प्रथितपाणिनये शिवतुष्टिदम् ।
वरमनुं यदनुग्रहतस्तदा
स रचनामकरोदतिसुन्दरीम् ॥ १७ ॥

आपने ही मुनिवर पाणिनि जी को विनीत रूप में उपस्थित देखकर उनको शैव मन्त्र का उपदेश दिया जिसके प्रभाव से प्रभावित होकर पाणिनि ने अष्टाध्यायी जैसा उत्तम व्याकरण का ग्रन्थ लिखा ॥ १७ ॥

अस्मात्परं स विधिदेव इति प्रसिद्धः
शिष्यो बभूव किल सत्यमुनेः समिद्धः ।
यो वेदमार्गमनघं स्वपरिश्रमेण
तस्तार भूमिवलये बहुभिः प्रयासैः ॥१८॥

पद्म मुनि के अनन्तर इस सम्प्रदाय के आचार्य विधिदेव हुए ये सत्य मुनिके शिष्य थे इन्होंने अपने परिश्रम से संसार में वैदिक तत्वों का बहुत प्रचार किया ॥ १८ ॥

शौनकशिष्यो व्याडिः
कथनादस्यैव सन्मुनेः पूर्वम् ।
संग्रहनामकमेकं
दिव्यं ग्रन्थं विनिर्ममे यत्नात् ॥१९॥

आपके कथन से ही शौनक शिष्य मुनिवर व्याडिने सग्रह नामक एक बड़ा ग्रन्थ निर्माण किया जो व्याकरण में ऊंची श्रेणी का ग्रन्थ माना जाता है ॥१९॥

अस्यैव सन्मुनेराज्ञामुपेत्य धरणीतले ।
व्याडिश्चकार हर्षेण रम्यां विकृतिवल्लरीम् ॥२०॥

आप ही के कथन से उत्साहित होकर व्याडिने एक वेद विषयक विकृतिवल्ली नामक उत्तम ग्रन्थ लिखा जो आज भी वैदिक साहित्य की शोभा बढ़ा रहा है ॥२०॥

गोदावरीतीरसमाश्रितोयं
स त्र्यम्बकेशं जगति प्रसिद्धम् ।
आराधयन्नेकमनाः स्वकालं
तत्रैव चिक्षेप समाधियोगैः ॥२१॥

सत्य मुनि के शिष्य ये विधिदेव जो गोदावरी के तट पर त्र्यम्बकेश्वर महादेव के पास रह कर शिव जी की आराधना में ही अपना समस्त जीवन व्यतीत करते थे ॥ २१ ॥

अतःपरं प्रादुरभूद्धरित्र्यां
मुनिप्रकाण्डः श्रुतिसिद्धनामा ।
यमाप्य लोकेषु बभूव सिद्धा
श्रुतिः समस्तार्थनिबोधयित्री ॥२२॥

आपके अनन्तर इस मार्ग के प्रचारक मुनिवर्य श्रुति सिद्ध जी हुए जिनको पाकर समस्तार्थ प्रकाशक श्रुति मार्ग सब प्रकार से सिद्ध हुआ ॥ २२ ॥

अयं मुनिर्वेदविवेचनार्हं
विनिर्ममे वैदिककोषमेकम् ।
निघण्टुनाम्ना निगमप्रवीणा
वदन्ति यं भूतलमात्रकोषम् ॥२३॥

आपने वैदिक शब्दों का प्रसङ्ग बतलाने वाला निघण्टु नामक एक कोष लिखा जो आज कल वेदज्ञ विद्वानों को बहुत आश्रय देता है ॥ २३ ॥

एतत्सखित्वेन निवृत्तशङ्को
यास्को मुनिस्तं रचयाम्बभूव ।
ग्रन्थं निरुक्ताभिधमादरेण
यो वेदकोपस्य बभूव गुप्तिः ॥२४॥

आपके समकालीन निरुक्तकार यास्कमुनि ने भी मित्र होने के कारण आपके बनाये हुए निघण्टु पर निरुक्त नामक भाष्य लिखा जो आज भी वैदिक शब्दों का रक्षक माना जाता है ॥ २४ ॥

अनेन मुनिना पुरा निगममार्गमातन्वता
बहुत्र निजयत्नतो निगममन्दिरस्थापना ।
व्यधायि तदनु प्रथां निगमपूजनस्याप्यसौ.
ततान भुवने यथा भवतु वेदसम्पूजनम् ॥२५॥

आपने अपने समय में वेदों का मान बढ़ाने के लिये भारत में बहुत से वैदिक मन्दिरों की स्थापना की जिनमें आपने वैदिक ग्रन्थों के पूजन की प्रथा प्रारम्भ कर अविद्या का उच्छेद कर दिया ॥ २५ ॥

यथा जगति पूज्यते गुरुरहर्निशं मानवै-
स्तथा निगमपूजनं कुरुत वेदसंरक्षकाः ।
स्तवैः स्तुवत देववत्प्रणमत प्रपन्नार्तिहं
यथाविधि गुरोः पदं नयत साधुनीराजनम् ॥२६॥

आपने अपने शिष्यों से कहा कि जिस प्रकार मनुष्य अपने गुरु की पूजा करते हैं उसी प्रकार आप लोग वेदों की पूजा करें उनकी स्तुति करें उनको प्रणाम और उनही को गुरु मानकर उनकी आर्ति करें ॥ २६ ॥

एवं समागतजनानुपदिश्य भूयः
श्रौतम्पथं मुनिरयं निगमैकपक्षः ।
सर्वत्र भूमिवलये निगमोक्तधर्मं
विस्तार्य विस्तृतिमवाप गुणैरुदारैः ॥२७॥

इस प्रकार अपने समीप में आए हुए मनुष्यों को उपदेश देकर आपने समस्त भारत में वैदिक मार्ग का प्रचार करते २ वेदों की रक्षा में ही अपना समस्त जीवन व्यतीत किया ॥ २७ ॥

अतःपरं भारतभूमिभागे
समाजगाम प्रथितस्वभावः ।
हिरण्यकेशस्य मुनेः स शिष्यो
मुनिः सुवेशो भगवत्प्रसादात् ॥२८॥

आपके अनन्तर इस उदासीन मार्ग के प्रचारक हिरण्यकेश नामक मुनि के शिष्य सुवेश मुनि हुए इनका वेश संसार में सबसे निराला था ॥ २८ ॥

वेषं विलोकयितुमस्य विचित्रवेषं
नानादिगन्तरगता बहवो मुनीशाः ।
अभ्याययुः समवलोक्य मुनिं सुवेशं
मोदेन पूर्णमनसो बहमाभ्यनन्दन् ॥२९॥

आपके विचित्र वेष को देखने के लिये भारत के समस्त मुनिजन अपने २ देशों से आपके पास पहुंचे साथ ही आपको देखकर अपने २ मन में प्रसन्न हुए और आपकी प्रसंशा करने लगे ॥ २९ ॥

अस्यावदातचरितस्य मुनेर्बभूव
काले क्रमान्मगधदेशभुवः स भूपः
यः पुष्पमित्रतनयो भृतराज्यभारः
श्रीबिम्बसारइति नाम चकार सार्थम् ॥३०॥

आपके समय में भारतवर्ष का प्रधान राजा मगध देशीय पुष्पमित्र का ज्येष्ठ पुत्र बिम्बसार हुआ जिसने अच्छे प्रकार राज्य करते हुए अपने नाम को सर्वत्र प्रसिद्ध किया ॥ ३० ॥

काले गते स मगधाधिपतिः समुद्र-
तीरादिमं मुनिवरं निजराजधानीम् ।

आनीय तस्य पदयोस्तमजातशत्रुं
पुत्रं निजं प्रमुदितो विनयान्न्यधत्त ॥३१॥

कुछ दिनों के अनन्तर मगधेश्वर बिम्बसार राजा ने समुद्रतट से सुवेश मुनि को अपनी राजधानी में बुलाकर अपने पुत्र अजातशत्रु को उनके लिये भेंट किया ॥ ३१ ॥

उदासीनदीक्षामयं सम्प्रदाय
प्रकर्षेण तस्मै भुवः शामकाय ।
निजं धर्मतत्वं पुनः सन्निबोध्य-
प्रकामं मुदाऽऽनन्दलीलामपश्यत् ॥३२॥

आपने भी भेंट में आए हुए अजातशत्रु को अपना शिष्य बनाकर उसके द्वारा सर्वत्र उदासीन धर्म का प्रचार कराया और आप ब्रह्मानन्द में सर्वदा मग्न रहे ॥ ३२ ॥

लोकपालमुनेः शिष्यः सुयत्नो नाम तत्परः ।
उदासीनपथं लोके वर्धयामास सत्वरः ॥३३॥

आपके अनन्तर इस अवधूत गद्दी पर लोकपाल मुनि के शिष्य सुयत्न मुनि आसीन हुए जिन्होंने उदासीन धर्म का बहुत प्रचार किया ॥ ३३ ॥

अनेन मुनिना धर्मप्रचाराय निजेच्छया ।
मण्डलं मुनिसाधूनां यत्र तत्र प्रवर्तितम् ॥३४॥

आपने अपने सिद्धान्त का प्रचार करने के लिये बौद्ध समय में मुनियों के अनेक मण्डल बनाये जो इधर उधर जाकर वैदिक धर्म का प्रचार करते थे ॥ ३४ ॥

अस्यैव मुनिवर्यस्य समये मगधाधिपः ।
चन्द्रगुप्तो नरपतिः शशास पृथिवीमिमाम् ॥३५॥

आपके ही समय में मगध देश का सम्राट् चन्द्रगुप्त हुआ जिसने समस्त पृथ्वी पर अपना अधिकार स्थापित करके उस समय का शासन चलाया ॥ ३५ ॥

अस्मिन्नस्तमिते देवे सुषेणमुनिराप्तवान् ।
पदमस्य यतः सोभूदस्य शिष्यः प्रतापवान् ॥३६॥

आपके अनन्तर इस मार्ग के अधिनायक आपके शिष्य सुषेण मुनि हुए जो उस समय के मुनि मण्डल में बहुत प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे ॥ ३६ ॥

शिष्यतामस्य सम्प्राप्तश्चन्द्रगुप्तो महीपतिः ।
वैदिकं धर्ममातेने भारते भास्तप्रियः ॥३७॥

आपने उस समय के सम्राट् चन्द्रगुप्त को अपना शिष्य बनाकर उसके द्वारा भारत में वैदिक धर्म का प्रचार कराया ॥ ३७ ॥

शिष्यः सुयत्नस्य मुनेः परस्ता-
द्बभूव लोके सुनयो मुनीशः ।
यो ब्रह्मभूयं प्रगते सुषेणे
वृतो मुनीन्द्रैर्निजमण्डलेशः ॥३८॥

आपके अनन्तर सुयत्न मुनि के प्रियशिष्य सुनय मुनि-इस गद्दी के अधिनायक हुये जोकि सुषेण मुनि के ब्रह्मलीन होने पर—अनेक मुनियों द्वारा मण्डलेश्वर चुने गये ॥३८॥

असौ महात्मा सुनयो जगत्यां
स्वमण्डलैर्धर्मपथं प्रसार्य ।
समेत्य काश्मीरभुवं तदन्ते
समाधिलीनोऽभवदात्मनिष्ठः ॥३९॥

आपने अपने मण्डलों के द्वारा भारत भूमि में निवृत्ति मार्ग को फैलाकर अन्त में काश्मीर में जाकर-आत्म चिन्तन करते २ समाधि प्राप्त की ॥३९॥

अस्मात्परं समभवन्मुनिमण्डलेशः
श्रीमाननन्तमहिमोऽभयनामधेयः ।
यो धर्मवर्धनसुतं शरणं प्रपन्नं
दृष्ट्वा तदीयजनकाय दृशं समादात् ॥४०॥

आपके अनन्तर उदासीन मार्ग के अध्यक्ष श्रीमान् अभय मुनि हुये-जिन्होंने अपने शरण में आये हुये धर्मवर्द्धन के पुत्र को देखकर उसके पिता के लिये दृष्टि-दान दिया । धर्मवर्धन महाराजा अशोक का पुत्र था । इसीका दूसरा नाम कुनाल

था। इसकी दोनों आंखें नष्ट हो गई थी। जलोक नामक इनके पुत्र ने अभय मुनि से अपने पिता को आंखें दिलवाईं, यह घटना ऐतिहासिक है ॥४०॥

अन्धः कुनालनृपतिर्दृशमाप्य देवा-
दस्मान्मुनेरभयतः परिहाय बौद्धम्।
मार्गं दधार हृदये निगमोक्तमार्ग
वीरस्ततान यलवद्धिषणः स्वधर्मम् ॥४१॥

महाराजा अशोक का अन्धपुत्र धर्मवर्द्धन अपने पुत्र जलोक की प्रार्थना से प्रसन्न हुये अभयमुनि से दुबारा नेत्र प्राप्तकर बौद्धमत से अलग हो वैदिक सिद्धान्तों पर दृढ़ विश्वास करके सनातन धर्म का पालन करने वाला बन गया। यह घटना भी ऐतिह्यसिद्ध है ॥४१॥

एतस्मात्परतो मुनेः समभवल्लोके सतामग्रणी
रोचिष्णुर्मुनिराडनन्तमहिमः शिष्योऽभयस्य क्रमात्।
यः शुङ्गान्वयजं नृपं निजतपोयोगेन वश्यं बलात्-
कृत्वा पाटलिपुत्रनाम्नि नगरे यज्ञं ततान द्रुतम् ॥४२॥

आपके अनन्तर आपके शिष्य रोचिष्णु मुनि इस गद्दी के अधिकारी हुए जिन्होंने शुङ्ग वंशीय राजा पुष्पमित्र को अपने योगबल से वश में करके उनके पाटलिपुत्र में एक अश्वमेध यज्ञ कराया जिसका उल्लेख भाष्यकार ने [इहपुष्पमित्र याजयामः] इन शब्दों में किया है ॥४२॥

अतःपरं चन्द्रमुनिर्मनस्वी
समेत्य दीक्षां सुतपोभिधानात्।
मुनेः स्वधर्मं गुरुणोपदिष्टं
ततान लोके तपसः प्रभावात् ॥४३॥

आपके अनन्तर इस उदासीन मार्ग के सञ्चालक सुतपा मुनि के शिष्य चन्द्र मुनि हुये जिन्होंने अपने गुरुदेव से प्राप्त रहस्य को सर्वत्र फैलाकर अपने कर्तव्य का पालन किया ॥४३॥

स विक्रमादित्यनृपं महात्मा
तपोबलेन स्ववशे चकार ।
सत्रापि तस्मादुपलब्धदीक्षो
द्रुतं व्रतेने निगमोक्तधर्मम् ॥४४॥

आपने अपने योगबल से उस समय के चक्रवर्ती सम्राट् विक्रमादित्य को अपने वशमें किया-जिसके द्वारा समस्त भारत में वैदिक धर्म का प्रचार हुआ ॥४४॥

कालिदासकविरस्य भूपते-
रन्तरङ्गसचिवोभवत्तदा ।
येन काव्यरचनावशात्कृतं
विस्तृतं भुवि यशोस्य भूपतेः ॥४५॥

राजाविक्रमादित्य के अन्तरङ्ग सचिव महाकवि कालिदास जी थे-जिन्होंने उनके राज्य में रहकर-अनेक काव्यों द्वारा राजाविक्रमादित्य का यश दिगन्त व्यापी कर दिया ॥४५॥

अतःपरमभूदत्र महेशमुनिरागतः ।
जितानन्दमुनेः शिष्यो दक्षिणापथतः क्रमात् ॥४६

इसके अनन्तर जितानन्द मुनि के शिष्य दाक्षिणात्य महेश मुनि जी-इस अवधूत सिंहासन के उत्तराधिकारी चुने गए, जो दक्षिण से उत्तर की ओर यात्रा करते हुये मगधदेश में पहुँचे ॥४६॥

स राजगृहमागत्य मगधान्तःप्रतिष्ठितम् ।
समुद्रगुप्तनामानं राजानं वशमानयत् ॥४७॥

आपने मगध देश में राजगृह के अन्दर कुछ दिन निवास कर समुद्र गुप्त नामक यहां के राजाको वश में करके उनके द्वारा अपना कार्य सम्पादन किया ॥४७॥

चन्द्रगुप्तसुतः सोयं नृपो मुनिवराज्ञया ।
अश्वमेधं महायज्ञं चकार मगधव्रजे ॥४८॥

आपके आदेश से चन्द्रगुप्त के पुत्र समुद्रगुप्त ने-मगध प्रान्त में एक अश्वमेध यज्ञ किया, जिसका प्रभाव दूर तक फैल गया ॥४८॥

एवमेष महामान्यो मुनिर्लक्ष्यत्रयं गुरोः ।
उदासीनस्य विधिवत्पूरयामास हर्षितः ॥४६॥

आपने अपने गुरुवर जितानन्द मुनि के तीन लक्ष्य पूरे किये जिनमें पहिला लक्ष्य नैतिक ऐकमत्य था दूसरा यज्ञों का प्रचार था तीसरा अयोध्या में रह कर उदासीन मार्ग का प्रचार करना था इन तीनों लक्ष्यों को आपने अपने परिश्रम से पूरा कर दिया ॥४९॥

अस्मादप्यपरः स शोभनमुनिर्देवेन गत्वा जवा-
द्राजस्थानमनन्तपुण्यनिलयं तत्रापि दिव्यं मुनिम् ।
हारीतं तमनुप्रबोध्य च निजं भावं यथावत्पुन-
स्तेने योगविजृम्भितेन भुवने शार्दूलविक्रीडितम् ॥५०॥

आपके अनन्तर शोभन मुनि उदासीन मार्ग के प्रचारक हुये आप उत्तर भारत से राजस्थान की ओर चलकर हारीत मुनि के आश्रम पर पहुँचे वहाँ जाकर आपने अपना अभिप्राय हारीत से कहकर समस्त राजस्थान अपने वश में किया ॥५०॥

अयं राजस्थानान्मुनिवर उपेत्य द्विजवरो
यथावद्गङ्गायास्तटभुवि समृद्धं पुरवरम् ।
उदासीनं धर्मं निजममुपदेशैः प्रतिदिनं
प्रतन्वन्नापेदे गतिमनुपमेयां शिखरिणीम् ॥५१॥

शोभन मुनि के ब्रह्म लीन होने पर हारीत मुनि राजस्थान से गंगातट पर कन्नौज आये। यहां आकर आपने उदासीन मार्ग का उपदेश देते हुए अपने मार्ग को बहुत उच्चशिखर पर पहुचा दिया ॥५१॥

अत.परं स दक्षिणामनुव्रजन्दिशं मुनि-
र्महानदीतटस्थितं पुरं समेत्य तद्भवम् ।
कुमारिलं महामतिं विलोक्य भव्यलक्षणं
निबोधयाम्बभूव हृद्गतं सुपञ्चचामरम् ॥५२॥

वहां से हारीत मुनि दक्षिण की ओर महानदी तट पर अवस्थित जयमङ्गल नामक ग्राम में पहुंचे और पहुँचकर आपने यहां पर कुमारिलभट्ट को वैदिक मार्ग का रहस्य बताकर अपने धर्म का पञ्चचामर की तरह प्रगतिशील बना दिया ॥५२॥

एवं लोके निजमतिबलाद्वैदिकं भव्यमार्गं
हारीतोयं मुनिजनवरो वर्धयन्नादरेण ।
देशे देशे भ्रमणवशतो मानवानां प्रवृत्तिं
मन्दाक्रान्तामपि गुणवतीं योगवेगाच्चकार ॥५३॥

इस प्रकार हारीत मुनि ने अपने परिश्रम से लोक में वैदिक धर्म का प्रचार कर प्रत्येक देश में भ्रमण करते हुये मनुष्यों को धर्म मार्ग पर चलता देखकर अपना श्रम सफल माना ॥५३॥

अस्मात्परं जसलमेर भवः प्रतापी
लोकप्रियो मुनिरभूद्भुवने वलक्षः ।
सामप्रियान्मुनिवरादधिगत्य दीक्षां
यः पुष्करे जगति दुष्करमन्वतप्त ॥५४॥

आपके अनन्तर इस सम्प्रदाय के प्रधान पुरुष लोकप्रिय मुनि हुये। आप का जन्म राजस्थान के अन्दर जैसलमेर में हुआ। आपने पुष्कर क्षेत्र में उदासीन दीक्षा ग्रहण की और वहीं घोर तप करने में तत्पर रहे ॥५४॥

अस्य प्रख्यातकीर्तेः प्रखरतरमतिः कः कविर्लोकमध्ये
निश्वत्राणे समर्थं विमलगुणगणं वक्तुमीहां विदध्यात् ।
वेदव्याख्यानदक्षः क्षपितकलिमलो योगमार्गप्रतिष्ठो
यः सौजन्यैकमूर्तिः प्रतिपुरमकरोत् स्रग्धरां वेदवीथीम् ॥५५

ख्यातनामा स्वनामधन्य लोकप्रिय मुनि का पूर्णरूप से वर्णन करना कवियों की शक्ति से बाहर है क्योंकि आपने कठिन समय में योगाभ्यास के द्वारा कलिमल को हटाकर वेदवीथी को 'स्रग्धर' अर्थात् पुष्प मालाओं से अलंकृत करदिया ॥५५

यत्कृपा भूतले मानदे मानवे
भावनामुत्तमां सर्वदा शर्मदाम् ।

वर्धयत्यादृता सत्वरं गत्वरी
स्रग्विणी तत्कृते मत्कृतेयं नतिः ॥५६॥

जिस लोकप्रिय मुनि का आदर्शचरित उत्तम मनुष्यों में उत्तम भावनाओं को उत्पन्नकर सर्वदा सुख देने वाली शान्ति को बढ़ाता है उस मुनिराज को पुष्पमाला के साथ हमारा प्रणाम है ॥५६॥

अस्मिन्नेवान्तराले भुवनपरिवृढः सर्वराजन्यमान्यः
पृथ्वीराजः प्रतापी मुनिवरपदयोरागतः शिष्यभावम् ।
यस्य ख्यातिः समस्ते जगति कविवरैः शूरवीरैकवेद्या
भूयो भूयः प्रबन्धैर्बहुभिरभिसिता स्रग्धरेव क्रमेण ॥५७॥

भारत में लोकप्रिय मुनि का जो समय था, उसी समय में राजा पृथ्वीराज का शासन चलता था उसमें उसने लोकप्रिय मुनि की प्रशंसा सुनकर आपका शिष्य होना स्वीकार किया और आपने भी उसे दीक्षा देकर अपना शिष्य बनाया ॥५७॥

एवमेष भुवोभागे लोकप्रियमुनिः कृती ।
विस्तार्य वैदिकं धर्म ब्रह्मभूयं गतोऽभवत् ॥५८॥

इस प्रकार भारत में वैदिक धर्म का डङ्का बजाकर लोकप्रिय मुनि जी ब्रह्मी भाव को प्राप्त हुए ॥५८॥

अस्मात्परं प्रथितकीर्तिरनन्तवीर्यः
स श्वेतकेतुरभवन्मुनिमण्डलस्य ।
संरक्षकः क्षपितपापकथाप्रपञ्चः
सम्वर्द्धनो निगमगीतपथस्य पान्थः ॥५९॥

आपके अनन्तर अनन्त पराक्रम मुनिवर श्वेतकेतु उदासीन मुनि मण्डल के अधिनायक बने जोकि वैदिक मार्ग के प्रचारक तथा योग विषय के अच्छे ज्ञाता हुये ॥५९॥

अस्य प्रचण्डमुनिमण्डलगीतकीर्तेः
पापापनोदनपरस्य गुणैकसिन्धोः ।

मोक्षमार्गमुपदिश्य भूतले
नाम सार्थमकरोन्मखकर्मैः ॥६४॥

आपके अनन्तर इस मार्ग के प्रचारक मुनिराज वीतहव्य हुए, जिन्होंने संसार में मोक्ष-मार्ग का उपदेश देते हुये अपने नामको यज्ञों के द्वारा सार्थक बनाया ॥६४॥

वीतमप्यहह हव्यमादरा-
देष देवनिलयेषु यापयन् ।
सोपसर्गमपि नाम तत्वतो
द्व्यर्थकं विरचयाम्बभूव यः ॥६५॥

यज्ञ-प्रथा के उठ जाने से नष्ट हुये हव्य को पुनः देवगणों के पास यज्ञों के द्वारा पहुचा कर आपने अपना नाम सार्थक किया। [विशेषेण इत वीत वीतश्चतत् हव्य वीतहव्यम्] ॥६५॥

अस्मात्परश्च्यवन इत्यभिधामवाप्तः
सर्वोपकारकरणक्षमशालिशीलः ।
मान्यो बभूव जगतामधियो महात्मा
यो वैदिकं पथमुदारतया ततान ॥६६॥

आपके अनन्तर इस उदासीन मञ्च पर च्यवनमुनि जी आकर विराजमान हुये जो हर प्रकार से वैदिक-धर्म का उद्धार करना अपना कर्त्तव्य समझते थे ॥६६॥

विश्वश्रवास्तदपरः समभूदभ्रमिः
पापस्य पापदलने बहुदत्तशक्तिः ।
यस्योत्तमं चरितमद्य महामहिम्नः
प्रायो जनेषु निगदन्ति मुनिप्रधानाः ॥६७॥

आपके अनन्तर इस उदासीन सम्प्रदाय को विश्वश्रवा नामक मुनिराज ने चलाया, जो कि अत्यन्त धर्मनिष्ठ तथा योग क्रिया के आचार्य माने जाते थे ॥६७॥

कस्यास्त वर्णनमलं विदधातु लोके
देवस्य कीर्तिधवलीकृतदिङ्मुखस्य ।

यो धर्मसेतुमवलम्ब्य निजं चरित्रं
नामापि च स्वमजरं भुवने चकार ॥६८॥

आपके अनन्तर इस मुनि मार्ग के संरक्षक मुनिवर धर्मसेतु जो हुए जो धर्म का सेतु पकड़ कर अपने को तथा अपने चरित्र को भी उज्वल बना गये ॥६८॥

आस्थां विहाय निजदेहगतां यथाव-
द्दिव्यं यशोमयवपुः समवाप्य लोके ।
अद्यापि यो मुनिमनःसु वितिष्ठतेत्र
धन्यः सएव सुयशो मुनिरप्रधृष्यः ॥६६॥

आपके अनन्तर इस उदासीन सिद्धान्त को संसार में सुयश मुनि ने प्रसारित किया जो अपने शरीर की भी परवाह न कर अपने यश को ही अपना शरीर मानते थे ॥६९॥

दानार्थकस्य किल रेत्यभिधस्य धातोः
सार्थक्यमर्थनिचयस्य बहुप्रदानैः ।
कुर्वन्नमन्दमतिरत्र ततान कीर्तिं
लक्ष्मीर इत्यभिधया प्रथितः सदेवः ॥७०॥

आपके अनन्तर इस गद्दी पर लक्ष्मीर मुनि आकर आसीन हुये जो दानार्थक रा-धातु को-लक्ष्मी के साथ लगाकर अपने नाम को अन्वर्थक बना गये [लक्ष्मीं राति ददाति यः स लक्ष्मीरः] ॥७०॥

धर्मादित्यं समन्तादुदयमुपनयन्नन्धकारं विधुन्व-
न्नानाविघ्नानुदस्यन्परहितनिरतान्बोधयन्नागमेन ।
रक्षोवक्षःसु वज्रं बलवदतिजवं पातयन्नव्ययघोषैः
सत्यं लोके सुमेरुर्जयति मुनिवरः स्त्रग्धरो मेरुरत्र ॥७१॥

आपके अनन्तर उदासीनों की इस गद्दी पर धर्म रूपी सूर्य के उदयाचल-अन्धकार के हटाने वाले, विघ्नों को दूर करने वाले, सज्जनों के जगाने वाले, राक्षसों की छाती-दहलाने वाले सुमेरु मुनि आसीन हुये ॥७१॥

यस्यालोकः प्रकामं मुनिजनकमलव्रातमेकान्तरम्यं
दिव्यालोकप्रदानैरवनिमुपगत. स्फोटयत्यप्रमेयः ।
शोकं कोकव्रजेषु प्रकिरति महसा योलमस्तं प्रगच्छन्
वन्द्यः सर्वैः प्रभाते जगति विजयते भास्करो भव्यमूर्तिः ॥७२॥

आपके अनन्तर इस गद्दी पर भास्कर मुनि आरूढ़ हुये- जो अपने आलोक से मुनि-मण्डल रूप कमलों को खिलाकर-कोकमण्डल में शोक उत्पन्न करते हुये अपने नामको अन्वर्थक बना गये ॥७२॥

भूपाला यस्य नित्यं चरणनतिपराःशासनं शास्तुरुच्चैः
सर्वस्मिन्नेवकाले मुकुटगतमणिश्रेणिभिर्धारयन्तः ।
नामं नामं प्रपन्नाश्चिरतरमनयन्कालमप्राप्तकालं
सोऽनीतोनाम धन्यो मुनिगदितकथ. स्रग्धरः सर्वमान्यः॥७३॥

आपके अनन्तर-उदासीन मार्ग प्रवर्द्धक अतीत मुनि इस गद्दी पर आसीन हुये जिनका कथन समस्त राजालोग बड़े आदर के साथ मानते थे ॥७३॥

भूतं भव्यं भविष्यस्त्रितयमपि तथा यत्र दैवाद्विलीनं
तिष्ठत्येकान्तमौनं जगदिदमखिलं यत्र कालानुपातात् ।
सर्वं यस्मिन्विलीनं हरिहरविधिभि.कल्पितं धर्मतत्त्वं
सोयं वेदाभिधानो गुरुजनगदितो देववन्द्यो मुनीन्द्रः ॥७४॥

आपके अनन्तर उदासीन सिद्धान्त के प्रचारक वेद मुनि इस धरातल पर अवतीर्ण हुये, जो योगबल से त्रिकालदर्शी और पर अद्वैत ब्रह्म के मानने वाले थे ॥७४॥

यस्माद्दीक्षामवाप्य श्रुतिपथमतनोद्धारते भारतेन्दु-
र्यस्मिन्नस्तं प्रयात. खलखलनिकरो धैर्यराशौ मुनीन्द्रे ।
यः श्रीचन्द्रं समेत्य स्वमनसि निहितं पूरयामास सर्वं
सोऽयं लोकेऽविनाशी जयति मुनिगुरुः सर्वदा सर्वमान्यः ॥७५

जिनसे उदासीन धर्म की दीक्षा लेकर श्रीचन्द्र भगवान् भारत में वैदिक मार्ग के बढ़ाने में तत्पर हुये-तथा जिनको देखकर शत्रु वर्ग स्वयं पराजित हुये, साथ

ही जो मुनिवर श्रीचन्द्र जैसे योग्य शिष्य को प्राप्त कर अपने मन की समस्त शुभ कामनायें पूरी कर चुके, वे सर्वमान्य अविनाशी मुनि धन्यवाद के योग्य हैं ॥७५॥

इत्थं यस्य क्रमेण प्रथममभिहिता पूर्वजानां मुनीनां
सर्गारम्भात्प्रवृत्ता जगति बहुविधा सूचिरेषा यथावत् ।
मार्गः सोयं पुराणः सकलजनमनोमोदको मोक्षभाजा-
मेकालम्बः समन्तात्प्रसरतु भुवने सज्जनानां हिताय ॥७६॥

सर्ग के आरम्भ काल से लेकर अब तक यथा क्रम जिनकी सूची ऊपर कही गई है, वे मुनिगण जिस मार्ग के प्रचारक हुये वह उदासीन सम्प्रदाय भारत में सब का कल्याणकारक हो ॥७६॥

यः श्रीचन्द्रो जगत्यां विविधमतकथाजालमेकान्तमस्तं
नीत्वा वेदोक्तधर्मं मुनिजनगदितं वर्धयामास भूयः ।
यस्यालम्बेन मुक्ता मुनिमतगतयो वर्तमानेपि काले
धर्मं तन्वन्ति सन्तः स भवतु भवतां भूतये चन्द्रमौलिः ॥७७॥

जिन्होंने भूतल में अनेक अवैदिक मतों को हटाकर मुनिगण प्रवर्तित एकमात्र वैदिक धर्म को बढ़ाया, साथ ही जिनका अवलम्ब लेकर आज भी सैकड़ों वैदिक मुनि सनातनधर्म की रक्षा करते हुये नजर आते हैं वे श्रीचन्द्र मौलि भगवान्-संसार में सब के कल्याणकारक हों ॥७७॥

कुन्दावदातमहनीयगुणोज्वलानि
लोकोत्तराणि भुवि यस्य मुनेर्मतानि ।
लोके जनानुपदिशन्ति स भारतेन्दुः
श्रीचन्द्रमौलिरभयं दिशतु प्रजाभ्यः ॥७८॥

कुन्द जैसे अवदात गुणों से अलङ्कृत लोकोत्तर जिस मुनिवर के सिद्धान्त-संसार में सज्जनों को धर्म-पथ पर चला रहे हैं वह भारतेन्दु श्रीचन्द्र भगवान् सबको अभय प्रदान करें ॥७८॥

आक्रान्तमार्यविषयं यवनैर्यथाव-
द्योदीधरत्करुणया करुणावतारः ।
वेदोपवेदपरिशीलनदत्तभाव-
श्रीचन्द्रमौलिरमरः स शिवाय भूयात् ॥७८॥

यवनों से आक्रान्त आर्यावर्त को जिन्होंने अपनी करुणा से बचाकर, उसकी हर प्रकार से रक्षा की, वे वेदतत्वज्ञ श्रीचन्द्र भगवान् सबका कल्याण करते हुये अमर हों ॥७९॥

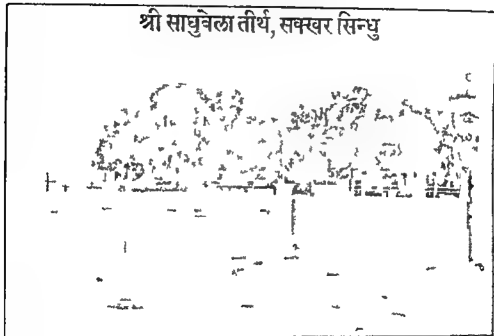
एतावदत्र विशदं चरितं मुनीना-
मत्यादरेण विनिवेद्य यथाक्रमेण ।
सर्गान्तरे गतमतिः कविरेष सर्गं
षष्ठं समापयति तं मुनयः पठन्तु ॥८०॥

इस सर्ग में इतना मुनियों का परम्पराऽऽगत विशदचरित्र लिखा गया है, इस से अगला वृत्तान्त देखने की जिनको इच्छा हो वे अग्रिमसर्ग देखें, इतनी सूचना देकर यह सर्ग समाप्त किया जाता है ॥८०॥

इतिश्री सनाढ्यवंशाद्भव कविवर श्रीमदखिलानन्दशर्मप्रणीते
सतिलक जगद्गुरश्रीचन्द्रदिग्विजय महाकाव्य
मुनिपरम्परावर्णननाम षष्ठ सर्ग



वरुणघाट उत्तर दिशा



VARAN GHAT NORTHERN ELEVATION

Of

SHRI SADHUBELLA TIRATH SUKKUR (SIND)

सप्तमः सर्गः

अथ दिगन्तरवीक्षणमानसो
मुनिरयं गमने कृतनिश्चयः ।
विधिवशादशृणोन्निजवासभू-
परिसरेऽधिगतं नवपण्डितम् ॥१॥

मुनि परम्परा का श्रवण करने के अनन्तर अनेक देशों के भ्रमण में उत्तचित्त भगवान् श्रीचन्द्र जी ने यहा से चलने का जिस समय निश्चय किया उसी समय दैवयोग से काश्मीर में दिग्विजय करने की इच्छा से आये हुये एक पण्डित का आपने नाम सुना ॥१॥

समधिगत्य तदागमनं पुन-
र्विवदिषां हृदये पुरतः स्थिताम् ।
मुनिवरोऽयममुञ्चदुपस्थित-
क्रमपथं गमनक्रमसङ्गतम् ॥२॥

नाम सुनते ही आपके चित्त में उसके साथ विचार करने की जो इच्छा प्रकट हुई इससे आपने देश भ्रमण की पहिली इच्छा को कुछ दिन के लिये स्थगित कर दिया ॥२॥

अयमतिप्रमदो विजयी महा-
न्प्रतिदिशं विदुषो बहु तर्जयन् ।
विजयकामनया समुपागतः
स्वनगरादिह दिग्विजयक्रमे ॥३॥

इतने ही में काशी के प्रसिद्ध वैतण्डिक सोमनाथ त्रिपाठी प्रत्येक प्रान्त में पण्डितों को विवाद में पराजित करते हुये काश्मीर की राजधानी में यथा-क्रम पहुंचे ॥३॥

अभ्यागमं समधिगत्य निजाधिवासे
काश्मीरदेशजमना बहवो मनुष्याः ।

कौतूहलेन गणशः समयुः समन्ता-
द्दाराणसेयबुधमण्डलमण्डनं तम् ॥४॥

अपने नगर में आपका आगमन सुनकर काश्मीर के अनेक पण्डित व कुतूहल के साथ मण्डली बना बनाकर काशी निवासी सोमनाथ जी के पा पहुचने लगे ॥४॥

सोऽप्यत्र पण्डितदलं बलवत्समीक्ष्य
विज्ञापनेन निजदिग्विजयप्रशस्तिम् ।
विज्ञाप्य तानवददाशु मयासहात्र
कुर्वन्तु शास्त्रविषये विविधं विचारम् ॥५॥

पण्डित सोमनाथ जी ने भी यहा के पण्डित मण्डल को बढा हुआ देखक रक विज्ञापन पत्र के द्वारा अपनी दिग्विजय की प्रशस्ति प्रकाशित करके कहा यहाँ के विद्वानों को चाहिये कि वे चाहे जिस विषय म मेरे साथ विचार कर का उचित प्रबन्ध करें ॥५॥

यः कोपि सर्वविबुधेषु महत्वमत्र-
प्रख्यापयत्यतितरां पुरत. स एव ।
वादाय मय्युपगते प्रकरोतु वादं
यद्यस्ति शक्तिरथवा विजितोस्तु मत्त. ॥६॥

यहा के पण्डितों म जो अपने को सबसे बड़ा पण्डित मानता हो वही हमा समक्ष में आकर हमसे शास्त्रार्थ करे या हमसे पराजय मानकर हमको विजय प लिख दे ॥६॥

इदमस्य निशम्य गर्जितं
बहवः पण्डितमानिनो जनाः ।
दिवसे नभसि प्रतिष्ठितं
ददृशुस्तारकमण्डलं भयात् ॥७॥

इस प्रकार सोमनाथ त्रिपाठी का गर्जन सुनकर बहुत से पण्डितम्मन्य भ से दिन में ही आकाश में तारा-मण्डल देखने लगे ॥७॥

बहवो नगर प्रतिष्ठिताः
प्रथितं तं पुरुषोत्तमाभिधम् ।
जगदुर्वद कोधुना बुधः
श्रियमालिङ्गति वादसम्भवाम् ॥८॥

नगर के बहुत से प्रतिष्ठित पण्डित प० पुरुषोत्तम (काँल) के पास जाकर कहने लगे कि इस शास्त्रार्थ में विजय-श्री किसका आलिङ्गन करेगी यह बताइये ॥८

अयमत्र समागतो वली
विजितानेव विधास्यति द्रुतम् ।
इदमद्य विनिश्चितं मतं
वद कस्को विवदिष्यति स्फुटम् ॥९॥

काशी का यह सोमनाथ त्रिपाठी बड़ा प्रबल पण्डित है उसके समक्ष में हमारा अवश्य पराजय होगा, यह निश्चित बात है, इसलिये इसके साथ विचार करने में आप किसको उपयुक्त समझते हैं ॥९॥

अतिदुर्बलतामपिश्रितः
प्रतिवादी भयदः प्रतीयते ।
यदवध्यभयो निजो भटो
विजयं नैति विवादमध्यगम् ॥१०॥

अपना पण्डित निर्भय होकर जब तक शास्त्रार्थ जीत कर नहीं आता तब तक दूसरे पक्ष का पण्डित कितना ही दुर्बल क्यों न हो ? परन्तु डरावना प्रतीत होता है ॥१०॥

इति चिन्तयति प्रतिष्ठिते
नगरस्थे पुरुषोत्तमे गुरौ ।
मुनिरेप समागतः श्रिया
विमलं कर्तुमिदं भुवस्तलम् ॥११॥

इस प्रकार की चिन्ता में व्यस्त हुये अपने गुरुवर पण्डित पुरुषोत्तम जी को देखकर-अपने आश्रम से भगवान् श्रीचन्द्र जी पहुंचे ॥११॥

अमुमागतमीक्ष्य निर्भयं
मुनिराजं शिवसन्निभं तदा ।
गुरुरस्य जगाद संस्थिता-
न्पुरतो यात शिवं भविष्यति ॥१२॥

शिवस्वरूप शिवावतार श्रीचन्द्रमौलि को देखकर पास में आए हुये पण्डितों के प्रति पुरुषोत्तम जी ने कहा कि अब आप कोई चिन्ता न करें-भगवदिच्छा से सब काम ठीक होगा ॥१२॥

इदमस्य निपीय सूत्तरं
गतवत्सु क्रमशो यदृच्छया ।
विबुधेष्वभिवाद्य सद्गुरुं
मुनिराडेवमुवाच सस्मितम् ॥१३॥

पुरुषोत्तम जी का यह उत्तर सुनकर जब अन्य सब पण्डित चले गये-तब अभिवादन करने के अनन्तर श्रीचन्द्र जी ने गुरु जी से कहा ॥ १३ ॥

भगवन् ! किमिदं भवद्विधै-
र्विबुधैरेवमुदीर्यते भयम् ।
किमिहाद्य भयस्य कारणं
न विजानाम्यहमागतो वनात् ॥१४॥

भगवन् ! आप जैसे विद्वान् किसके भय से इस प्रकार की बात कर रहे हैं इस भय का कारण क्या है ? मैं नहीं जानता हूं क्योंकि मैं अभी वन से यहा पर सीधा आरहा हूँ ॥ १४ ॥

स्वगतं यदि तत्र विद्यते
भवतां तर्हि ममाग्रतोपि तत् ।
विवृतं क्रियतां यथोचितं
प्रविधास्ये तदहं निजोचितम् ॥१५॥

आपके विचार में यदि यह बात छिपाने योग्य न हो तो कृपया आप मुझे भी सुना दीजिये जिससे मैं भी इसके लिये कुछ उचित प्रबन्ध करूं ॥ १५ ॥

एतादृगस्य वचनं विनिपीय सर्वे
पार्श्वस्थिताः समवदन्नधुना त्रिपाठी
कश्चिद्विवादविजयी किल सोमनाथो
वाराणसेय इह तिष्ठति वादभिक्षुः ॥१६॥

इस प्रकार श्रीचन्द्र जी की बात सुन कर गुरु जी ने तो कुछ नहीं कहा परन्तु वहां पर उपस्थित अन्य सज्जनों ने कहा कि आजकल यहाँ पर एक काशी के बड़े विद्वान् शास्त्रार्थ के लिये ठहरे हुए हैं ॥ १६ ॥

अत्रागतेन किल तेन मदोद्धतेन
काश्मीरपण्डितगणेषु निवेशताऽस्ते ।
भीतिर्यया सकलमेव कुलं बुधानां
वैकल्यमापितमिति प्रथितं नगर्याम् ॥१७॥

यहां आकर उन्होंने बड़े गर्व के साथ शास्त्रार्थ की घोषणा निकाल कर यहां के पण्डितों में भय उपस्थित कर दिया है जिससे सब नगर में हलचल मची हुई है ॥१७

विद्यालये किल भविष्यति राजकीये
शास्त्रार्थ इत्यपि विनिश्चितमेव सर्वैः ।
माध्यस्थ्यमत्र स करिष्यति यं वृणीयुः,
सर्वे परस्परविनिश्चयतः प्रसिद्धाः ॥१८॥

यहां के पण्डितों ने राजकीय विद्यालय में उसके साथ शास्त्रार्थ करना निश्चित किया है । जिसमें समस्त पण्डितों द्वारा चुने हुए कोई विद्वान् मध्यस्थ बनेंगे ॥१८॥

प्रामाण्यमागमगतं निगमागतं वा
सर्वं महर्षिमुनिकल्पितमङ्गजातम् ।
स्वीकार्यमित्यपि विनिश्चितकल्पमेव
तेनाधुना निगदितं विजिगीषुणाद्य ॥१९॥

प्रमाण रूप से इस शास्त्रार्थ में उसने वेद, वेदाङ्ग शास्त्र तथा ऋषि मुनि प्रणीत अन्य अनेक ग्रन्थ स्वीकृत किये हैं, जो राजपुस्तकालय में इस समय उपस्थित हैं ॥१९॥

अत्रत्यपण्डितगणाः किल तेन सार्द्धं
वादाय ते गुरुवरं रभसादचिन्वत् ।
मानोन्नता गुरुवरा अपि निश्चयेन
त्वय्यर्पिताखिलभरा इति निर्विवादम् ॥२०॥

यहाँ के विद्वानों ने आपके गुरुवर श्रीपुरुषोत्तम जी को इस शास्त्रार्थ के लिये नियुक्त किया है और महा-मान्य गुरुवर ने यह समस्त भार आपके ऊपर निर्भर कर दिया है ॥ २० ॥

एतन्निशम्य वचनं सहपाठियूनां
मन्दस्मितेन मदयन्मुनिमण्डलानि ।
श्रीचन्द्रमौलिरिदमाह गुरुं प्रणम्य
नेदं विचारसहमस्ति नवीनकार्यम् ॥२१॥

सहपाठियों के मुख से निकली हुई यह बात सुन कर श्रीचन्द्र जी कुछ देर मुस्कराकर प्रणाम पूर्वक अपने गुरु जी से कहने लगे कि यह छोटा सा कार्य इतना महत्व देने योग्य नहीं है ॥ २१ ॥

साधारणेत्र विषये यदिदं महत्वं
विन्यस्तमस्ति तदिदं विफलं मते मे ।
भाति प्रपञ्चमपहाय ततोत्र कश्चि-
त्संयोज्यतां निजकृपाविषयो भवेद्यः ॥२२॥

शास्त्रार्थ रूपी साधारण विषय को लेकर यह जो इतना उसके लिये महत्त्व दिया जा रहा है वह मेरे मन में सर्वथा व्यर्थ है। इसलिये समस्त आडम्बर हटा कर कोई अपना कृपा पात्र शिष्य इसके लिये नियुक्त कर दीजिये ॥ २२ ॥

मत्वं तमुद्धतमिहागतमप्रमेये-
स्तर्कैर्वयं भवदनुग्रहतः प्रमह्य ।

वादे विजित्य भवतः पदयोर्जयश्री-
मालां प्रदातुमभयाः पुरतः स्थिताः स्मः ॥२३॥

आप की कृपा से हम सब आपके शिष्य उस आये हुए उद्दण्ड पण्डित को विवाद में जीतकर विजय श्री को आपके चरणों में लाकर उपस्थित करेंगे ॥ २३ ॥

एतन्निपीय निजशिष्यवचो गुरुस्तं
श्रीचन्द्रमेव विनियोज्य विवादकृत्ये ।
मध्यस्थमत्र विषये नियतं चकार
सद्यो दिवाकरगुरुं गुरुमेव साक्षात् ॥२४॥

इस प्रकार उत्साह भरी श्रीचन्द्र जी की बात सुन कर पण्डित पुरुषोत्तम जी ने श्रीचन्द्र जी को ही शास्त्रार्थ के लिये प्रस्तुत किया और मध्यस्थ पद के लिये बृहस्पति तुल्य पण्डित दिवाकर जी को चुना ॥ २४ ॥

आयोजनं सकलमेतदिह प्रकृत्य
वादाय सज्जमतयः किल सर्व एव ।
तस्थुः प्रतीक्षणपरा नगरैकदेशे
यत्रायमद्य भविता विबुधप्रवादः ॥२५॥

शास्त्रार्थ का इतना आयोजन एकत्र करके नगर के सब पण्डित सन्नद्ध होकर वहाँ पहुंच गये जहां पर आज का शास्त्रार्थ होना निश्चित था ॥ २५ ॥

सज्ञानिह प्रतिभटानवलोक्य सद्यः
काश्मीरपण्डितदलेन समं त्रिपाठी ।
अभ्याययौ झरिति तत्र समस्त गोष्ठी
विद्यालये पुरतएव समागताऽभूत् ॥२६॥

अपने प्रतिवाद के लिये तुले हुए काश्मीर के समस्त पण्डितों को देखकर सोमनाथ त्रिपाठी भी वहां पहुंच गए जहां सब पण्डित पहिले ही से पहुंच चुके थे ॥२६॥

अभ्यागतान्बुधगणानवलोक्य तत्र
सर्वे विशिष्टमतयो नियताः पुरस्तात् ।

सत्कारपूर्वकमुपस्थितपण्डितौघा-
नुच्चासनेषु नियतेष्वनयन्यथावत् ॥२७॥

दोनों दल के विद्वानों को यथा समय आया हुआ देख कर उस समय के प्रबन्धकों ने आदर पूर्वक उनको यथोचित स्थानों में बिठाने का प्रयत्न किया ॥२७॥

अत्यादरेण विनिवेश्य सभैकभागे
विद्वद्वरानिह परत्र च छात्रसङ्घान् ।
मध्यासने कृतपदः पुरुषोत्तमोपि
तत्रेदमाह समयोचितमादरेण ॥२८॥

बड़े आदर के साथ सभा में एक ओर विद्वानों को और दूसरी ओर छात्रों को बिठाकर मध्य भाग में बने हुए उच्च मञ्च पर चढ़कर पण्डित पुरुषोत्तम जी इस प्रकार कहने लगे ॥ २८ ॥

भद्राः ! कृताञ्जलिरयं भवतां पुरस्ता-
देतन्निवेदयति मूर्धनि सर्वमेतत् ।
संगृह्यतां विधिवशादुपनीतमस्ति
यद्यद्यथाविधि फलादिकमादरार्हम् ॥२९॥

महानुभावो ! मैं आप लोगों के समक्ष बद्धाञ्जलि होकर यह निवेदन करता हूँ कि आप लोगों के सत्कारार्थ यहां की जनता ने जो कुछ पत्र पुष्प यहां पर उपस्थित किया है उसको पहिले आप ग्रहण कीजिये ॥ २९ ॥

एतज्जलं चरणयोरवनेजनाय
मालेयमुत्तमसुमा हरिचन्दनन्तत् ।
नानाविधोचितफलप्रकर- समस्तं
पूजार्थमेव भवतामिदमस्ति सज्जम् ॥३०॥

लीजिये यह चरण क्षालन के लिये जल उपस्थित है यह माला और यह चन्दन है साथ ही यह अनेक प्रकार का फलोच्चय आपके अर्पण है यह सब आपके लिये ही एकत्र किया गया है ॥ ३० ॥

एवं निवेदनपरे पुरुषोत्तमे सा
विद्यालये कृतपदा विदुषां समज्या ।
अत्यादरेण तदुपायनवस्तुजातं
वव्रे यदत्र विबुधैः कृतमागतानाम् ॥३१॥

इस प्रकार पुरुषोत्तम जी के निवेदन करने पर विद्यालय में आई हुई समस्त विद्वन्मण्डली बड़े आदर के साथ भेंट में उपस्थित हुए पदार्थों का ग्रहण करने लगी ॥ ३१ ॥

अङ्गीकृते बुधजनैः सदुपायनेऽस्मि-
न्नेकान्तमुन्नतमनाः पुरुषोत्तमः सः ।
कालोचितानि मधुराधरनिर्गतानि
सद्यो निवेदयितुमाह वचांसि भूयः ॥३२॥

विद्वानों के द्वारा उपायन के अङ्गीकृत करने के अनन्तर प्रसन्न चित्त पण्डित पुरुषोत्तम जी ने कुछ समयोचित मधुर वचन कहने के लिये उपक्रम किया ॥ ३२ ॥

अद्याहमस्मि कृतकृत्यतमः प्रकामं
भावत्कपादजलमार्जनतः पवित्रः ।
सर्वोऽप्ययं नगरवासिजनोऽपि धन्यं-
मन्यं समस्तमिह मे कुलमद्य दैवात् ॥३३॥

आपने कहा आज मैं आपके चरणोदक के मार्जन से कृत-कृत्य हो गया हूं और यह सारा नगर तथा नगरवासी नर नारी गण एवं साथ ही हमारा कुल पवित्र हो गया ॥ ३३ ॥

धन्यं दिनं नगरमेतदतीवधन्यं
धन्या सभा तदधिपो बहुधन्यवादः ।
धन्यस्तथाहमपि यद्भवतां गुरुस्ता-
दीदृग्विधं सकलमद्य विलोकयामि ॥ ३४ ॥

आज का दिन धन्य है आपके पधारने से यह श्रीनगर धन्य होगया है आप

सत्कारपूर्वकमुपस्थितपण्डितौघा-
नुच्चासनेषु नियतेष्वनयन्यथावत् ॥२७॥

दोनों दल के विद्वानों को यथा समय आया हुआ देख कर उस समय के प्रबन्धकों ने आदर पूर्वक उनको यथोचित स्थानों में बिठाने का प्रयत्न किया ॥२७॥

अत्यादरेण विनिवेश्य सभैकभागे
विद्वद्वरानिह परत्र च छात्रसङ्घान् ।
मध्यासने कृतपदः पुरुषोत्तमोपि
तत्रेदमाह समयोचितमादरेण ॥२८॥

बड़े आदर के साथ सभा में एक ओर विद्वानों को और दूसरी ओर छात्रों को बिठाकर मध्य भाग में बने हुए उच्च मञ्च पर चढ़कर पण्डित पुरुषोत्तम जी इस प्रकार कहने लगे ॥ २८ ॥

भद्राः ! कृताञ्जलिरयं भवतां पुरस्ता-
देतन्निवेदयति मूर्धनि सर्वमेतत् ।
संगृह्यतां विधिवशादुपनीतमस्ति
यद्यद्यथाविधि फलादिकमादरार्हम् ॥२९॥

महानुभावो ! मैं आप लोगों के समक्ष बद्धाञ्जलि होकर यह निवेदन करता हूँ कि आप लोगों के सत्कारार्थ यहां की जनता ने जो कुछ पत्र पुष्प यहां पर उपस्थित किया है उसको पहिले आप ग्रहण कीजिये ॥ २९ ॥

एतज्जलं चरणयोरवनेजनाय
मालेयमुत्तमसुमा हरिचन्दनन्तत् ।
नानाविधोचितफलप्रकरः समस्तं
पूजार्थमेव भवतामिदमस्ति सज्जम् ॥३०॥

लीजिये यह चरण क्षालन के लिये जल उपस्थित है यह माला और यह चन्दन है साथ ही यह अनेक प्रकार का फलोच्चय आपके अर्पण है यह सब आपके लिये ही एकत्र किया गया है ॥ ३० ॥

एवं निवेदनपरे पुरुषोत्तमे सा
विद्यालये कृतपदा विदुषां समज्या ।
अत्यादरेण तदुपायनवस्तुजातं
यत्रे यदत्र विबुधैः कृतमागतानाम् ॥३१॥

इस प्रकार पुरुषोत्तम जी के निवेदन करने पर विद्यालय में आई हुई समस्त विद्वन्मण्डली बड़े आदर के साथ भेट में उपस्थित हुए पदार्थों का ग्रहण करने लगी ॥ ३१ ॥

अङ्गीकृते बुधजनैः सदुपायनेस्मि-
न्नेकान्तमुन्नतमनाः पुरुषोत्तमः सः ।
कालोचितानि मधुराधरनिर्गतानि
सद्यो निवेदयितुमाह वचांसि भूयः ॥३२॥

विद्वानों के द्वारा उपायन के अङ्गीकृत करने के अनन्तर प्रसन्न चित्त पण्डित पुरुषोत्तम जी ने कुछ समयोचित मधुर वचन कहने के लिये उपक्रम किया ॥ ३२ ॥

अद्याहमस्मि कृतकृत्यतमः प्रकामं
भावत्कपादजलमार्जनतः पवित्रः ।
सर्वोप्ययं नगरवासिजनोपि धन्यं-
मन्यं समस्तमिह मे कुलमद्य दैवात् ॥३३॥

आपने कहा आज मैं आपके चरणोदक के मार्जन से कृत-कृत्य हो गया हूं और यह सारा नगर तथा नगरवासी नर नारी गण एव साथ ही हमारा कुल पवित्र हो गया ॥ ३३ ॥

धन्यं दिनं नगरमेतदतीवधन्यं
धन्या सभा तदधिपो बहुधन्यवादः ।
धन्यस्तथाहमपि यद्भवतां गुरस्ता-
दीदृग्विधं सकलमद्य विलोकयामि ॥ ३४ ॥

आज का दिन धन्य है आपके पधारने से यह श्रीनगर धन्य होगया है आज

की यह सभा और सभा के यह प्रधान धन्य हैं साथ ही इस समस्त आयोजन के देखने से मैं भी अपने को धन्य मानता हूं ॥ ३४ ॥

धन्या जना निजनिजोचितकार्यदक्षा
मध्यस्थतामुपगतो मनुजोतिधन्यः ।
धन्यानुभावपि सपक्षविपक्ष भूतौ
किं किं न धन्यमतिधन्यतमं समस्तम् ॥३५॥

अपने २ कार्य में लगे हुए सब प्रबन्धक धन्य हैं मध्यस्थ होकर विवाद का निर्णय करने वाले पण्डित दिवाकर जी धन्य हैं वादी और प्रतिवादी बनकर उपस्थित हुए दोनों पक्ष धन्य हैं मैं कहां तक कहूं आज सब कुछ धन्यवाद के ही योग्य है ॥ ३५ ॥

नापूजि यैर्जनकपादयुगं यथाव-
न्नाभाजि यैर्गुरुगृहे गुरुपादपद्मम् ।
नासेवि यैर्बुधजनः स्वगृहेषु तेद्य
नैवात्र दृष्टिपथमभ्युपयान्ति लोकाः ॥३६॥

आज इस मण्डल में ऐसा मनुष्य कोई दृष्टि गत नहीं होता है जिसने अपने घर पर अपने पिता माता और गुरु का विधिपूर्वक चरण वन्दन करके उनसे वरदान प्राप्त न किया हो अर्थात् सभी मनुष्य विनीत वेश और सौजन्य पूर्ण हैं ॥ ३६ ॥

पक्षद्वयेपि विलसन्ति मनोज्ञकायाः
कायाब्जरूपपरितर्जितकामदेवाः ।
देवाधिदेवपरिपूजितचारुपादाः
पादारविन्दनुतिमत्र करोमि केषाम् ॥३७॥

दोनों पक्षों में काम की सुन्दरता को नीचे करने वाले सुन्दर शरीर श्री शंकर की उपासना करने वाले सज्जन गण पधारे हुए हैं मैं सर्व प्रथम किसकी प्रसशा करूं यह समझ में नहीं आता है ॥ ३७ ॥

मान्या महोदयभुवो महित प्रभावा
नानादिगन्तविशदीकृतवीर्यसाराः ।

यस्मिन्विवादमहनीयमहे समेताः
सोयं दिशत्वविरतं शिवमागतेभ्यः ॥३८॥

जिस शास्त्रार्थ रूपी महोत्सव में आप जैसे महा-मान्य महोदय महा प्रभाव अनेक देशों में दर्शित विपुल पराक्रम महा पुरुष पधारे हुए हैं यह महोत्सव आगत जनों के लिये कल्याण प्रद हो ॥ ३८ ॥

एवं निवेद्य विरते पुरुषोत्तमेऽत्र
केचित्समागतबुधाः कथनं तदीयम् ।
दिव्यं शशंसुरपरे प्रशशंसुरुच्चै-
रन्ये नवागतबुधा मुमुहुर्निसर्गात् ॥३९॥

इस प्रकार मधुर स्वागत के समाप्त होने पर उपस्थित विद्वानों ने पुरुषोत्तम जी की बहुत प्रसंशा की जो कि—"परस्परं भावयन्तः" वाली नीति का केवल समर्थन मात्र थी ॥ ३९ ॥

इत्थं परस्परकथोपगमे निवृत्ते
मध्यस्थतामुपगतो विनयेन सर्वान् ।
मर्त्यं दिवाकरइवात्र दिवाकरोयं
प्राह प्रसन्नमनसा परिपद्युपेतान् ॥४०॥

दोनों पक्षों के स्वागताचार के अनन्तर सूर्यप्रभ पण्डित दिवाकर जी ने जो कि सभा में मध्यस्थ चुने हुए थे, बड़ी नम्रता के साथ उभय पक्ष के विद्वानों से कहा ॥४०॥

पर्याप्तएव समयोऽभवदद्य तस्मा-
त्प्रस्तूयतां समयसम्मतमेव सर्वैः ।
आधीयतां क्रमवशान्निजपूर्वपक्षः
पश्चात्तदुत्तरपरो भवतु स्वपक्षः ॥४१॥

माननीय विद्वद्गण ! समय पर्याप्त होगया है इस लिये कार्यारम्भ होना चाहिये नियमानुसार पहिले पण्डित गोपनाथ त्रिपाठी अपना पूर्व पक्ष उपस्थित करेंगे जिस का हमारी ओर से उत्तर दिया जायगा ॥ ४१ ॥

वाक्यं दिवाकरगुरोरिदमानिपीय
वाराणसेयविबुधः किल सोमनाथः ।
सम्मर्दयन्मुखजलोमचयं करेण
गर्वोद्धतः स्वमतमेवमुदाजहार ॥४२॥

दिवाकर जी का यह आरम्भिक वक्तव्य सुनकर पण्डित सोमनाथ त्रिपाठी ने अपनी मूंछें मरोड़ते हुए अपना पूर्व पक्ष इस प्रकार उपस्थित किया ॥ ४२ ॥

[पूर्व पक्ष]

भगवन्नसदेतदुच्यते
जगदालम्बनमस्य किम्पुनः ।
सदिदं यदि नाशकल्पना
कथमस्य प्रथिता जगत्त्रये ॥४३॥

यह जो प्रतीयमान जगत् है, उसको आप यदि असत् मानते हैं तो वह किसके अवलम्ब से ठहरा हुआ है (?) यदि आपके मत में यह सत् है तो महाप्रलय में इसका नाश क्यों होता है (?) इन दोनों विरुद्ध बातों का आप समन्वय लगाइये ॥ ४३ ॥

असतः सत उद्गमः कथं
श्रुतिवाक्ये गदितो मनीषिभिः ।
न कदापि सतोप्यसत्कथा
समुदेति श्रुतिवाक्यदर्शनात् ॥४४॥

असत् से सत् का उद्भव श्रुतियों में किस प्रकार निणात है (?) और सत् का असद्भाव श्रुतियों ने किस प्रकार माना है (?) ॥४४॥

सदसत्परमस्ति यत्स्वयं
सदिदं ब्रह्म कथं तदा भवेत् ।
असति च्चरणात्मकेपुन-
र्जगतीदं कथमाविशद्वद ॥४५॥

मुनिरेष तदुत्तरक्रमं
प्रथयामास रसेन सस्मितः ॥४६॥

अपने गुरुवर से इस प्रकार का सर्वतोभद्र आदेश सुनकर श्रीचन्द्र जी ने पूर्व पक्ष का जो उत्तर दिया, वह इस प्रकार है:— ॥४९॥

[उत्तर पक्ष]

बुधवर्य ! भवद्वचस्तति-
र्न विचारक्षमतां विगाहते ।
निगमेषु यतः प्रलभ्यते
सदसद्वस्तुविवेचनक्रमः ॥५०॥

विद्वन् ! आपने सभा में जो पूर्व पक्ष उपस्थित किया है, वह मेरी अनुमति में विचार-क्षम नहीं है। क्योंकि वेदों में सदसद्वस्तुओं का विवेचन क्रम विस्पष्ट वर्णित है ॥५०॥

असदित्यभिधीयते बुधै-
र्जगदव्यक्ततयोपलक्षितम् ।
निगमागमवाक्यदर्शना-
त्सदिति व्यक्ततया व्यवस्थितम् ॥५१॥

विद्वान् अव्यक्त भाव से अवस्थित जगत् को असत् और व्यक्त भाव से अवस्थित जगत् को सत् कहते हैं। आपका पूर्व पक्ष व्यक्ताव्यक्त भाव में समाप्त होता है, जगत् से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। इस लिये भाव पर पहिले विचार कीजिये ॥५१॥

उभयात्मकमस्ति यन्मनः
श्रुतिवाक्ये ततएव तद्विधा ।
उभयात्मतया व्यवस्थिता
भगवानस्ति न मन्नचाप्यसत् ॥५२॥

जगत् मन के द्वारा कल्पित है, मन को श्रुति वाक्यों में उभयात्मक कहा है। इसी कारण जगत् भी उभयात्मक प्रतीत होता है, भगवान् सदसद्विलक्षण है। इसीलिये सर्वसाक्षी है, उनका जगत् से कोई सम्बन्ध नहीं है ॥५२॥

असतो मनसः समुद्भवं
जगदव्यक्ततयावतिष्ठते ।
मनसः सत उद्भवं तथा
भवति व्यक्तमिति व्यवस्थितिः ॥५३॥

असद्भावापन्न मन से उत्पन्न जगत् असत् और सद्भावापन्न मन से उत्पन्न जगत् सत् कहा जाता है, जगत् के सदसद्विषय में यही व्यवस्थिति पर्याप्त है ॥५३॥

सदसत्परमेकमव्ययं
भगवन्तं समवेत्य सर्वदा ।
प्रकृतिर्गुणवत्यधीश्वरे
प्रतिबिम्बत्वमुपैति निर्गुणे ॥५४॥

ब्रह्म सर्वदा सदसद्विलक्षण इस लिये है कि उसकी कल्पना सदसद्भावापन्न मन से नहीं होती है, अर्थात् वह मनःकल्पित नहीं है। उस ब्रह्म में गुणवती प्रकृति प्रतिबिम्ब भाव से प्रतिबिम्बित है, वस्तुतः नहीं ॥५४॥

विमलः स्फटिकोपलो यथा
निजसान्निध्यगतस्य वस्तुनः ।
प्रतिबिम्बवशेन भूतले
प्रतिभाति भ्रमतोऽन्यतद्विधः ॥५५॥

निर्मल स्फटिकोपल में जिस प्रकार समीप में विद्यमान रक्त पीतादि गुण सम्बद्ध द्रव्य का प्रतिबिम्ब भ्रम से प्रतीत होता है उसी प्रकार ब्रह्म में जगत् का प्रतिबिम्ब भी केवल भ्रम मात्र है ॥५५॥

इदमेव महन्निदर्शनं
सगुणायाः प्रकृतेः परात्परे ।
भगवत्यमले व्यवस्थितं
जगदीशे जगदेकसाक्षिणि ॥५६॥

इसी निदर्शन से परात्पर ब्रह्म में जो जगत् का सम्बन्ध दृष्टिगत होता है, उसकी व्यवस्था लगानी चाहिये यह उत्तर वेदान्त के मतसे आपके लिये उपस्थित है ।५६।

अथवा जगदेतदव्ययं
जलधारावदिह प्रतिष्ठितम् ।
प्रकृतेर्गुणपारवश्यतो
बहुधा भाति नभो यथाघनैः ॥५७॥

यदि आप सांख्य का मत लेकर चलते हैं तो यह जगत् जल धारा के समान सर्वदा किसी न किसी रूप में अवश्य रहता है और प्रकृति की गुणपरवशता से मेघाच्छन्न आकाश की तरह विविध रूप से प्रतीत होता है ॥ ५७ ॥

न लयः प्रकृतेः कदाप्यहो
भवति व्यक्तमुपेत्यदृश्यताम् ।
तमिमं कथयन्ति सूरयो
लयभावं प्रगतं न वस्तुतः ॥५८॥

प्रकृति का अत्यन्ताभाव किसी समय में नहीं होता है केवल उसका कार्य कारण में लीन होने के कारण अदृश्य हो जाता है इसीको कोई विद्वान् प्रलय मानते हैं, वस्तुतः जगत् का अत्यन्ताभाव कदापि नहीं होता है, उसके अत्यन्ताभाव होने पर ईश्वर का ईशन नहीं रहता है ॥ ५८ ॥

सत एव सतः समुद्भवो
भवति व्यक्ततयात्र नाऽसतः ।
नहि कोपि विलोकयत्यहो
बत शृङ्गं नरमूर्ध्नि निःसृतम् ॥५९॥

सद्भावापन्न ब्रह्म से सद्भावापन्न जगत् का आविर्भाव सत्कार्य वाद में परिणत होता है, असत्कार्य वाद में उसका अभ्युपगम नहीं है इसीलिये मनुष्य के शिर पर आजतक किसी ने भी उगता हुआ शृङ्ग नहीं देखा है ॥ ५९ ॥

प्रकृतौ निवसन्ति ये गुणाः
प्रकृतेः कार्यपथेपि ते तथा ।
न विरुद्धगुणोदयः श्रुतो
भुवि कुत्रापि चराचरक्रमे ॥६०॥

जो गुण प्रकृति में रहते हैं वे ही प्रकृति जन्य कार्य में पाये जाते हैं प्रकृति विरुद्ध कार्य कारण भाव चराचर जगत् में कभी भी देखने में नहीं आता है॥६०॥

प्रलये सदसद्विलक्षणो
भगवानेव वितिष्ठतेऽचलः।
न तदा सदिदं नचाप्यस-
ज्जगदाभाति विलीनमीश्वरे ॥६१॥

प्रलय काल में सदसद्विलक्षण एक भगवान् शङ्कर ही अपने रूप में अवस्थित रहते हैं सदसद्भावापन्न यह जगत् उन्हींके अन्दर छिप जाता है। जगद्रूप कार्य का ईश्वर रूप कारण में छिप जाना ही यहां पर प्रलय शब्द से अभिमत है अत्यन्ताभाव नहीं ॥६१॥

सकलोपि विवर्तसम्भवो
यत आविर्भवति स्वयेच्छया।
भज तं शिवमेकमद्वयं
सदसद्भावमपास्य वस्तुजम् ॥६२॥

जिस भगवान् की इच्छा से यह समस्त विवर्तवाद अव्यक्त भाव से व्यक्त भाव में परिणत होता है उस अद्वितीय शङ्कर की आप उपासना कीजिये वस्तुगत सदसद्भाव की उपासना आपके योग्य नहीं है॥ ६२ ॥

इदमत्र मया यथार्थतो
विवृतं सर्वमतोपि यत्परम्।
भवतां हृदये व्यवस्थितं
तदपार्थं वत पिष्टपेषवत् ॥६३॥

आपके समस्त पूर्व पक्षों का शास्त्रानुगत यथार्थ उत्तर इन शब्दों में उपस्थित किया गया है इसके अनन्तर जो आपका और कथन होगा वह केवल पिष्टपेषण मात्र होगा॥ ६३ ॥

इदमस्य मुनेः समुत्तरं
निगमान्तर्गतभावगर्भितम्।

विनिपीय बुधव्रजो जयं
जयघोषैरवदत्पुरोगतः ॥६४॥

इस प्रकार श्रीचन्द्र जी का वेदानुगत उत्तर सुनकर उपस्थित समस्त विद्वन्मण्डली ने जयघोष के साथ आपका जय स्वीकार किया ॥ ६४ ॥

प्रतिवादिनमेनमद्भुतं
स विलोक्य प्रभया समुन्नतम् ।
विजयी विबुधः पराजयं
बहुमेने निजमद्य लज्जितः ॥६५॥

आप जैसे उद्भट प्रतिभा सम्पन्न प्रतिवादी को देखकर वादी पण्डित सोमनाथ त्रिपाठी भी मन में लज्जित होकर अपना पराजय अनुभव करने लगे ॥ ६५ ॥

गुरुरस्य मुनेः पुरः स्थितो
नवहर्षाश्रुविलोलवीक्षणः ।
यमवाप तदाऽतिसम्मदं
न स शक्यो गदितुं पदक्रमैः ॥६६॥

हर्षाश्रु विलोल नेत्र आपके गुरु को आज जो अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त हो रहा था उसका वर्णन करना शब्द शक्ति से बाहिर है ॥ ६६ ॥

सकलोपि बुधव्रजो मुनिं
नरभावं प्रगतं सदाशिवम् ।
हृदये समसंस्त निर्वृतो
विजयश्चास्य जगाद सर्वतः ॥७६॥

सभा में समुपस्थित सभ्य मानव समाज ने श्रीचन्द्र जी का अद्भुत प्रभाव देखकर आपको मनुष्य भावापन्न सदा शिव मानकर सर्वत्र आपका विजय उद्घोषित कर दिया ॥ ६७ ॥

क्व मुनिर्भुवनाब्दलक्षितः
क्व पुनर्भावगभीरमुत्तरम् ।

इदमेव मुहुर्मुहुर्वद-
न्कमलाकान्तबुधो ययौ मुदम् ॥६८॥

चौदह वर्ष की अवस्था वाले कहां श्री चन्द्रमौलि ! और कहां फिर इसी विचार धारा में प्रवृत्त उनको उत्तर देने की शक्ति ! इन परस्पर विरुद्ध दोनों बातों को बार २ दुहराते हुए पण्डित कमलाकान्त जी आनन्द में मग्न हो गए ॥६८॥

अवसानमुपेयुषि क्रमा-
त्समयेपि स्थगितान्यतत्कथः ।
परिपद्भवनाद्विनिर्ययौ
जयघोषैः सहितो जनव्रजः ॥६९॥

शास्त्रार्थ का नियत समय समाप्त होने पर शहर के अन्य गण्य मान्य सज्जन भी अन्य सब कार्यों को अगले दिन के लिये स्थगित कर सभा भवन से जय घोष करते हुए अपने २ घरों को गए ॥ ६९ ॥

मुनिरप्यनुशासनं गुरोरधिगत्य प्रभयाऽनुमङ्गतः ।
वनमाविशदाश्रमोचितं वनरम्यं वनजायतेक्षणः ॥७०॥

इधर अपने गुरुदेव की आज्ञा लेकर भगवान् श्रीचन्द्र भी विशिष्ट प्रभामण्डल से प्रभावित होकर अपने आश्रम के उचित गहर वन में विश्रामोचित पर्णकुटी के अन्दर प्रविष्ट हुए ॥ ७० ॥

एवं निवेद्य विजयोचितभावगर्भ
शास्त्रार्थनिर्णयपरं विविधान्यवृत्तम् ।
वृत्तं तदुत्तरकथामृतदत्तचित्तः
सर्ग समापयदिमं कविरप्रमत्तः ॥७१॥

शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में इतना सपक्ष विपक्ष सम्बन्धी वृत्तान्त निवेदन करके अग्रिम प्रसङ्ग में दत्त चित्त कवि ने भी यह सर्ग यहीं पर समाप्त कर दिया ॥७१॥

इतिश्री सनाढ्यवंशोद्भव कविवर श्रीमद्खिलानन्दशर्मप्रणीते
सचित्रे जगद्गुरुश्रीचन्द्रदिग्विजये महाकाव्ये
श्रीचन्द्रमौलिविजयो नाम-सप्तम सर्ग

अष्टमः सर्गः

अथानुरोधाद्विदुषः सोमनाथस्य धीमतः ।
निश्चितोभूद् द्वितीयेन्हि शास्त्रार्थो हर्षवर्धनः ॥१॥

शास्त्रार्थ के दूसरे दिन पण्डित सोमनाथ जी के अनुरोध से दूसरे शास्त्रार्थ का आयोजन भी बड़ी तय्यारी के साथ हुआ ॥ १ ॥

प्रातरेवातिहर्षेण विद्वज्जनपुरःसरः ।
त्रिपाठी नियतस्थानमाजगाम जयेच्छया ॥२॥

प्रातःकाल होते ही सोमनाथ त्रिपाठी अपने पक्ष के समस्त पण्डितों को लेकर जहां पूर्व शास्त्रार्थ हुआ उसी स्थान पर पहुंचे ॥ २ ॥

गुरोरनुज्ञया तत्र समायातो वनोदरात् ।
श्रीचन्द्रमौलिः स्वगुरोर्ननाम पदपङ्कजम् ॥३॥
अन्यानपि सभास्थानमागतान्विबुधोत्तमान् ।
अभिवाद्य यथान्यायमाससाद भुवस्तले ॥४॥

गुरु जी की आज्ञा पाकर श्रीचन्द्र जी भी अपनी वनगत पर्णकुटी से आकर सब से पूर्व अपने गुरुदेव के चरण छूकर यथाक्रम अन्य उपस्थित विद्वानों को भी शास्त्र मर्यादानुसार प्रणाम कर पृथ्वी पर बैठ गए ॥ ३-४ ॥

समागतमिमं वीक्ष्य श्रीचन्द्रं पुरतः स्थितम् ।
सोमनाथो विश्वनाथं सस्मार हृदयस्थितम् ॥५॥

सभा में श्रीचन्द्र जी को आया हुआ देखकर पण्डित सोमनाथ त्रिपाठी ने हृदय स्थित विश्वनाथ जी का स्मरण किया जिसका रहस्य आगे जाकर खुलेगा ॥ ५ ॥

[कुलकम्]

भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं जटामण्डलशोभितम् ।
रुद्राक्षवलयाबद्धजगद्द्योतितकन्धरम् ॥६॥

व्याघ्रचर्मस्थितं दिव्यप्रभाशोभितदिङ्मुखम् ।
समिद्धाग्निविनिक्षिप्तनानाहव्यसमुच्चयम् ॥७॥

तपोवनसमासीनमक्षमालालसत्करम् ।
मेखलाबद्धकौपीनं पीनवक्षोविशोभितम् ॥८॥

ब्रह्मचर्यव्रतधरं विषयेषु पराङ्मुखम् ।
प्रगल्भवचसं धीरं गम्भीरवचनक्रमम् ॥९॥

तृणीकृतजगत्सारं धीरोद्धतगतिक्रमम् ।
कुमारमपि गम्भीरं वीरं रसमिव स्थितम् ॥१०॥

स्मरण के समय भगवान् शङ्कर का स्वरूप विभूति भूषित जटामण्डल शोभित, रुद्राक्ष माला वेष्टित कण्ठ, व्याघ्रचर्म पर आसीन, दिव्यप्रभ, समिद्धाग्नि हुत हव्य, तपोवन स्थित, अक्ष माला लसत्कर, मेखलाबद्ध कौपीन, उन्नत वक्षःस्थल, ब्रह्मचर्य व्रतधर, विषयों से उदासीन, प्रगल्भ वचन, धीर वीर, गम्भीर भावापन्न, तृणी कृत जगत्सार, धीरोद्धत गति क्रम, कुमारावस्था में भी गम्भीर, मूर्तिमान् वीर रस जैसे सन्नद्ध रूप में परिणत था ॥ ६-१० ॥

विजयाशंसया तस्य प्रणत्य पदपङ्कजम् ।
प्रत्यागम्य ददर्शाग्रे तमेव हृदयेशयम् ॥११॥

शास्त्रार्थ में विजय की कामना से इस प्रकार हृद्गत शङ्कर जी को प्रणाम कर जैसे ही पण्डित सोमनाथ जी ने अपने नेत्र खोले वैसे ही उनको प्रत्यक्ष में भी श्रीचन्द्र जी के रूप में शङ्कर का दर्शन हुआ ॥ ११ ॥

उभयत्र समानेन रूपेण समवस्थितम् ।
विलोक्य विश्वनाथं तं विस्मयं समुपागमत् ॥१२॥

भीतर और बाहर दोनों स्थलों में भगवान् का एकसा रूप देखकर सोमनाथ त्रिपाठी के मन में बड़ा आश्चर्य सा होगया ॥ १२ ॥

किमयं पुरतो मेऽद्य विश्वनाथः समागतः ।
श्रीचन्द्रमौलिः किमयं हृदये समधिष्ठितः ॥१३॥

आपने अपने मन में सोचा क्या मेरे समक्ष में सचमुच श्री विश्वनाथ जी इस रूप में आये हैं ? अथवा श्रीचन्द्र का ही मेरे मन में बार २ ध्यान आता है ? कुछ समझ में नहीं आता है ॥ १३ ॥

न रूपे नच लावण्ये न ममाधौ न संयमे ।
भेदः प्रतीयतेऽन्योन्यसदृशाकृतिवेषयो. ॥१४॥

इन दोनों के रूप में लावण्य में समाधि में तथा सयम में कोई किसी प्रकार का अन्तर प्रतीत नहीं होता है दोनों की आकृति आपस में बहुत अंशों में मिलती जुलती सी मालूम होती है ॥ १४ ॥

किमयं मोहसम्पातः किमयं मम सम्भ्रमः ।
मायाविलसितं किंवा जगदम्बासमुद्भवम् ॥१५॥

क्या मुझे मोह ने आकर घेरा है ? या मुझे भ्रम हो गया है ? या जगदम्बा सरस्वती जी ने यह कोई माया मेरे समक्ष में उपस्थित की है ? ॥ १५ ॥

इति दोलायमानं तं सोमनाथमवस्थितम् ।
स्मितेन सूचयामास परं न ज्ञातवान्स तम् ॥१६॥

इस प्रकार चञ्चल चित्त सोमनाथ को देखकर श्रीचन्द्र जी ने अपने मन्दस्मित से सोमनाथ को अपना साकेतिक परिचय दिया परन्तु मोह के कारण पण्डित सोमनाथ जी उस सङ्केत को समझ न सके ॥ १६ ॥

सामान्यमनुजभ्रान्त्या तमालोक्य पुरोगतम् ।
किङ्कर्तव्यविमूढोयमवतस्थे कृताञ्जलिः ॥१७॥

सामान्य मनुष्य के वेश में श्रीचन्द्र जी को देखकर पण्डित सोमनाथ जी कुछ देर तक किङ्कर्तव्य विमूढ से रह गए ॥ १७ ॥

अत्रान्तरे गतदिनोपक्रमेण यथाक्रमम् ।
सत्कारः समभूदेषां विदुषामतिमञ्जुलः ॥१८॥

इसी अवसर में पूर्व दिन की तरह आज भी आगत विद्वानों का स्वागत करने के लिये विद्यालय के प्रबन्धक उपस्थित हुए ॥ १८ ॥

पाद्यार्घ्याचमनीयादि क्रमेण विधिवत्कृते ।
उपचारे सदाचारः समावृत्तइव स्थितः ॥१९॥

पाद्य अर्घ्य आचमनीय तीन प्रकार के जल लेकर उपस्थित सज्जनों ने सर्व प्रथम सदाचार के साथ २ विद्वानों का उपचार किया ॥ १९ ॥

शिष्टाचारक्रमादन्ते फलोपायनपाणयः ।
जनाः प्रसन्नमनसो देशचारमुपाययुः ॥२०॥

इसके अनन्तर अपने देश के उत्तम उत्तम फल हाथों में लेकर प्रसन्न चित्त प्रबन्धकों ने विद्वानों को भेट किये क्योंकि यह यहां का देशाचार है ॥२०॥

लवङ्गावद्धहारिद्रपूगीफलदलोन्नतम् ।
प्रादाज्जनः समागत्य ताम्बूलं मुखभूषणम् ॥२१॥

फलों के अनन्तर सुन्दर लवङ्गादि सुगन्धित द्रव्यों से पूर्ण ताम्बूल दल शुद्धि के लिये विद्वानों को दिया गया ॥ २१ ॥

एवमागन्तुकाचारविधाववसितिं गते ।
दिवाकरः समासीनानिदमाह कृताञ्जलिः ॥२२॥
मान्याः प्रस्तूयतां वादः पर्याप्तः समयो गतः
प्रतीक्षन्ते जनाः सर्वे शास्त्रार्थसरणिद्वयम् ॥२३॥

इस प्रकार स्वागत सत्कार के अनन्तर पण्डित दिवाकर जी ने सभा में उपस्थित होकर आए हुए विद्वानों से कहा भद्रपुरुषो ! अब शास्त्रार्थ का आरम्भ होना चाहिये समय बहुत बीत गया है नगर के समस्त गण्यमान्य नर नारी गण वादि प्रतिवादि रूप में दोनों की उक्ति प्रत्युक्ति सुनने की अभिलाषा कर रहे हैं ॥ २२-२३ ॥

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य दिवाकरगुरोस्तदा ।
वादी सिंहासनमगात्सोमनाथो यथोचितम् ॥२४॥

पण्डित दिवाकर जी की इस प्रकार की सूचना मिलने पर वादी पण्डित सोमनाथ जी नियोचित सिंहासन पर आसीन हो गए ॥ २४ ॥

वादिसिंहासनारूढं तमालोक्य ततःपरम् ।
श्रीचन्द्रमौलिरगमत्प्रतिवादिभटस्थलम् ॥२५॥

वादी के सिंहासन पर पण्डित सोमनाथ जी के पहुंचने पर प्रतिवादि भट के स्थान पर श्रीचन्द्र जी जाकर उपस्थित हुए ॥ २५ ॥

भटप्रतिभटद्वन्द्वमवलोक्य बुधव्रजाः ।
चित्रन्यस्ता इव तदा भेजिरे मध्यमां दशाम् ॥२६॥

भट और प्रतिभट के रूप में दोनों ओर दोनों की तैयारी देखकर बाकी सब पण्डित चित्रलिखित जैसी दशा को पहुंच गए ॥ २६ ॥

अथ प्रसन्नवदनो दिवाकरगुरुः स्वयम् ।
निजप्रदत्तविषये विवादं समयोजयत् ॥२७॥

इतने ही में पण्डित दिवाकर जी ने प्रसन्न होकर कहा कि आज का शास्त्रार्थ दोनों पक्षों को हमारे दिये हुये विषय पर करना होगा ॥ २७ ॥

ईश्वरोस्ति नवेत्यत्र विषये पुरतः स्थिते ।
नास्तीति पक्षमभजत्सोमनाथो मदोद्धतः ॥२८॥

ईश्वर है वा नहीं इस विषय को लेकर आज विचार होगा ऐसी जब सभा में घन्टा घोष के साथ घोषणा उपस्थित हुई तब वादी सोमनाथ ने नहीं का पक्ष लेकर बोलना स्वीकार किया ॥ २८ ॥

अथ प्रवृत्ते विधिवद्विवादे मध्यताङ्गतः ।
समस्तोपि बुधव्रातो ललम्बे गलगण्डवत् ॥२९॥

इसके अनन्तर विधि पूर्वक विचार का आरम्भ होने के समय अन्य सब विद्वान् गलगण्ड की सी दशा में पहुंच गए ॥ २९ ॥

बौद्धं मतमुपाश्रित्य धारावाहिकतां गतः ।
सोमनाथो विश्वनाथं विस्मृत्य पुनरब्रवीत् ॥३०॥

पण्डित सोमनाथ जी ने इस समय भी विश्वनाथ को भूलकर बौद्धमत का आश्रय लेते हुए अपने पक्ष का स्थापन फिर इस प्रकार किया ॥ ३० ॥

[पूर्व पक्षः]

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥३१॥

आपने कहा प्रकृति के अन्दर विद्यमान सात्विक आदि गुणों के द्वारा उत्पन्न कर्मों को अहंकार विमूढ पुरुष अपना किया हुआ मानते हैं । यह गीता में भगवान् का [३ । २७ ।] वचन है ॥ ३१ ॥

तत्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इतिमत्वा न सज्जते ॥३२॥

तत्ववेत्ता पुरुष तो गुण कर्म के विषय में गुण अपने सदृश गुण वाले द्रव्यों से मिलते हैं ऐसा जानकर उनमें आसक्त नहीं होते हैं ऐसा गीता में [३ ।२८।] भगवान् कह चुके हैं ॥ ३२ ॥

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥३३॥

ससार में ज्ञानवान् पुरुष भी अपनी प्रकृति के अनुकूल ही चेष्टा करते हैं । इसलिये यह बात सिद्ध होती है कि संसार प्रकृति के प्रवाह की ओर स्वभावतः जारहा है उसके रोकने का प्रयत्न सर्वथा निष्फल है यह भी गीता में भगवान् का ही [३ । ३३] कथन है ॥ ३३ ॥

इति गीतोक्तवचनैर्न कर्ता जगदीश्वरः ।
विकारः प्रकृतेः सर्वमुद्भावयति तद्व्रतः ॥३४॥

भगवद्गीतोक्त इन वचनों से यह बात अनायास सिद्ध होती है कि जगदीश्वर जगत् का कर्ता नहीं है केवल प्रकृति के विकार से ही यह सब कुछ बन जाता है ॥ ३४ ॥

दधिगोमयसंयोगो वृश्चिकोद्भमकारणम् ।
लभ्यते जगति प्राज्ञैः किमत्रेश्वरकर्तृकम् ॥३५॥

ससार में वैज्ञानिक पुरुष दधि और गोमय के संयोग को वृश्चिकोद्गम का कारण मानते हैं इसमें ईश्वर-कर्तृक क्या कर्म है ? ॥ ३५ ॥

[उत्तर पक्ष.]

भगवन्भगवद्गीताविषये भवतेरितम् ।
अतोमयापि तत्पद्यैः किञ्चिदत्रेदमुच्यते ॥४२॥

आपने कहा, इस सभा में वादी ने भगवद्गीता के पद्यों से अपने पूर्व पक्ष का स्थापन किया इसलिये हमको भी भगवद्गीता के पद्यों से ही उत्तर पक्ष के रूप में कुछ कहना पड़ता है ॥ ४२ ॥

अनीश्वरमिदं सर्वं ये वदन्ति महीतले ।
आसुरीं योनिमापन्नास्ते नरा भगवन्मते ॥४३॥

जो पुरुष इस जगत् को अनीश्वर मानते हैं वे भगवद्गीता के मत में आसुरभावापन्न कहे गए हैं ॥ ४३ ॥

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
भगवानिदमप्याह जगद्विपरिवर्तनम् ॥४४॥

भगवान् कहते हैं कि प्रकृति मेरी अध्यक्षता में रहकर चराचर जगत् का सर्जन करती है यह उसका निर्माण कार्य स्वतन्त्र नहीं है ॥ ४४ ॥

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमित्यपि ।
भगवानेव तत्राह गीतायामर्जुनं प्रति ॥४५॥

समस्त भूतों का बीज स्वरूप मैं हूं यह भी भगवान् का वचन है यह भी कृष्णार्जुन सम्वाद में आपने देखा ही होगा ? ॥ ४५ ॥

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामीति यद्वचः ।
तत्कथं तदधिष्ठानमन्तरा सफलीभवेत् ॥४६॥

मैं अपनी प्रकृति का अवष्टम्भन करके समस्त भुवनों का सर्जन करता हूं यह भगवद्गीता वाक्य क्या आपने नहीं देखा है ? ॥ ४६ ॥

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥४७॥

भिन्न २ आकार वाली जितनी मूर्तियां उत्पन्न होती हैं उन सबका बीज भूत मूल कारण मैं ही हूं यह भगवद्वाक्य क्या आपकी दृष्टि में नहीं आया ? ॥४७॥

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥४८॥

महत्तत्वोपलक्षित यावन्मात्र प्रकृति है उसको योनि मानकर मैं उसमें गर्भ रूप से अवस्थित हूं इसी कारण उससे समस्त भूत आविर्भूत होते हैं ॥ ४८ ॥

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥४९॥

सूर्य चन्द्रमा और अग्नि इन तीनों में प्रविष्ट होकर जो तेज समस्त जगत् को प्रकाशित करता है वह तेज मेरा ही है इस भगवद्वाक्य को आपने क्यों नहीं देखा ? ॥ ४९ ॥

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥५०॥

समस्त भूतों में एक रूप से अवस्थित एवं विनाशवान् पदार्थों में अविनाशी रूप से रहने वाले मुझको तत्व-दृष्टि से जो देखता है वही मुझको भी देखता है [दृशिरत्र ज्ञानार्थकः] ॥ ५० ॥

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥५१॥

॥ अनादि और निर्गुण होने से यह अव्यय परमात्मा अनेक शरीरों में रहने पर भी अपने लिये कुछ नहीं करता है इसी लिये लिप्त भी नहीं होता है ॥ ५१ ॥

यस्मात्क्षरमतीतोहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥५२॥

भगवान् क्षर और अक्षर इनका अतिक्रमण कर चुके हैं इसी कारण लोक और वेद में उनको पुरुषोत्तम माना है ॥ ५२ ॥

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥५३॥

योग माया से आवृत रहने के कारण वह सबके नजर में नहीं आते हैं इसीलिये मूढ़लोग उसको अज और अव्यय होने पर भी नहीं पहिचानते हैं ॥ ५३ ॥

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥५४॥

बुद्धि हीन पुरुष मेरे अव्यय और सर्वोच्च भाव को न समझ कर कहीं पर तो अव्यक्तभाव में अवस्थित मुझको व्यक्त मानते हैं और कहीं पर व्यक्त रूप में अवस्थित मुझको अव्यक्त मानते हैं ॥ ५४ ॥

अजोपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥५५॥

मैं अज और अव्ययात्मा तथा भूतों का ईश्वर होते हुए भी अपनी इच्छा कल्पित माया से प्रकट होता हूँ यह सब भगवान् का ही कथन है ॥ ५५॥

नतु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षु: पश्य मे योगमैश्वरम् ॥५६॥

भगवान् अर्जुन से कहते हैं कि तुम मुझको इस अपनी चर्म दृष्टि से नहीं देख सकते हो इसलिये हम अपनी कृपा से तुमको दिव्य-ज्ञान रूप नेत्र देते हैं उससे तुम मेरा ऐश्वर योग देखो ॥ ५६ ॥

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥५७॥

ईश्वर समस्त भूतों के हृदयाकाश में अथवा गर्भ में निवास करता है उसीको प्रेरणा से मायाचक्र पर चढे हुए सब भूत यन्त्रारूढ पुरुष की तरह चलते फिरते हैं । [ईश्वरः शर्व ईशानः] इस अभिधान से यहा पर ईश्वर पद प्रसङ्गोचित महादेव का बोधक है ॥ ५७ ॥

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन सर्वदा ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ।५८।

मनसा वाचा कर्मणा सर्व कालों में उस अद्वैत शङ्कर की रक्षा में रहो उसी की कृपा से परम शान्ति और शाश्वतपद प्राप्त होगा ॥ ५८ ॥

इति गीतोक्तवचनैर्भवत्प्रश्नपरम्परा ।
प्रायः समाप्तप्रायेव यथोचितमुत्तरैः ॥५६॥

इन प्रसङ्गोचित गीता के बारह पद्यों से आपकी समस्त प्रश्न परम्परा का समुचित उत्तर दिया गया है जो भगवान् के श्री मुख से स्वय निकला है ॥५९॥

गीतावचनसान्निध्यवशेन भवताऽधुना ।
यद्गादि न तत्प्राज्ञैरुररीक्रियते जनैः ॥६०॥

इसलिये आपने जो भगवद्गीता के तीन पद्यों का अवलम्ब लेकर अपने पक्ष का स्थापन किया है, वह प्राज्ञजनोचित नहीं है ॥ ६० ॥

परापरविभेदेन सर्वस्याः प्रकृतेः प्रभुः ।
भगवानेव न विना तं किमप्यत्र जायते ॥६१॥

अब गीतोक्त पद्यों का विवरण देखिये । परापर भेद से व्यवस्थित प्रकृति के अध्यक्ष एक मात्र भगवान हैं उनकी बिना इच्छा के प्रकृति में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता है ॥ ६१ ॥

अजोपि भगवानीशः स्वकीयां प्रकृतिं गतः ।
अव्यक्तो व्यक्तनामेति व्यक्तश्चाव्यक्ततां स्वतः ॥६२॥

भगवान् अज होने पर भी अपनी प्रकृति के अध्यक्ष हैं वे उसको अधिष्ठान बनाकर कभी व्यक्त से अव्यक्त और कहीं अव्यक्त से व्यक्त बन जाते हैं ॥ ६२ ॥

न विना पुरुषं किञ्चित्प्रकृतिः कर्तुमीहते ।
विना पुरुषसंयोगं यथा स्त्री सुतसम्भवम् ॥६३॥

जिस प्रकार स्त्री विना पुरुष के सयोग के अपत्य उत्पन्न नहीं कर सकती है उसी प्रकार प्रकृति भी विना ईश्वर के सम्बन्ध के अकेली कुछ नहीं कर सकती है ॥ ६३ ॥

अतएव समासेन समुक्तं भगवत्कृतौ ।
प्रकृतिः परमं क्षेत्रं क्षेत्रज्ञः पुरुषोत्तमः ॥६४॥

इसीलिये भगवद्गीता में सक्षेप से प्रकृति का क्षेत्र और ईश्वर को क्षेत्रज्ञ कहा गया है जिसका वर्णन गीता के पूरे एक अध्याय में है ॥ ६४ ॥

प्रकृतौ यत्समासक्तं तेजो भाति न तन्निजम् ।
पुरुषादेव तत्तस्यां समाविष्टमभूत्पुरा ॥६५॥

प्रकृति में व्यापक रूप से जो तेज झलकता है वह उसका अपना नहीं है पुरुष से ही वह तेज उसमें प्रविष्ट हुआ है ॥६५॥

अव्ययः परमात्मायं शरीरस्थोपि निर्गुणः।
स्वीयां गुणमयीं भुंक्ते प्रकृतिं केवलान्वयात् ॥६६॥

यह अव्यय परमात्मा केवलान्वयसे पृथिव्यादि रूप से अवस्थित प्रकृति में प्रविष्ट होकर भी निर्गुण और उसका भोक्ता अर्थात् पालक रहता है। [भुजिरत्र पालनार्थः] ॥ ६६ ॥

[युग्मम्]

यदिगादि महाभाग ! भवता पूर्वमद्भुतम्।
दधिगोमयसंयोगाद्वृश्चिकस्य प्रवर्तनम् ॥६७॥
तत्रापि तादृशी शक्तिरीश्वरेण निवेशिता।
वृश्चिकं या जनयति न सर्पं नैव कच्छपम् ॥६८॥

आपने अपने पूर्व पक्ष में दधिगोमय योग से वृश्चिकोद्भव का जो निदर्शन उपस्थित किया है उसमें भी ईश्वर नियन्त्रित शक्ति का विचित्र नियन्त्रण है जिससे अन्य जीवों का उद्भव उससे नहीं होता है ॥ ६७-६८ ॥

एवमेव जगद्धात्रा कापिशक्तिर्नियन्त्रिता।
अयस्कान्तेपि या लोहमाकर्षति न पित्तलम् ॥६९॥

इसी प्रकार जगदीश्वर ने अयस्कान्त मस्तर में भी कोई अपनी शक्ति नियन्त्रित की है जो लोह के अतिरिक्त काष्ठ लोष्ठादि का आकर्षण नहीं कर सकती है ॥ ६९ ॥

स्वभावसिद्धो यः प्रोक्तो गमनागमनक्रमः।
जडवस्तुषु नैवास्ति तस्यास्तित्वमपि क्वचित् ॥७०॥
चिदंशसङ्गमात्तस्यां प्रकृतौ गमनक्रमः।
प्रतीयते चिदंशोपि स ब्रह्मण्यवतिष्ठते ॥७१॥

आपने जो अपने कथन में यह कहा कि प्रकृति में गमनागमन क्रम स्वभाव सिद्ध है (?) यह भी जड़ प्रकृति में सम्भव नहीं है, क्योंकि उसमें जब चिदंश

आपका उत्तर पक्ष सुनकर स्तब्धचेष्ट पण्डित सोमनाथ भी आपको प्रत्यक्ष रूप में दूसरा विश्वनाथ समझकर सभा में निस्तेज हो गया ॥ ८३ ॥

समस्तशास्त्रविषयैः सम्मतं युक्तिसङ्गतम् ।
बालोयमुत्तरमदादिति सर्वेऽवदन्बुधाः ॥८४॥

बालमात्रापन्न इस दिव्य विग्रह ने युक्ति प्रमाण सम्बद्ध जो उत्तर पक्ष सभा मे उपस्थित किया है वह सर्वथा दुरूह और दुस्तर्क्य है यह चर्चा समस्त विद्वानों में कर्णाकर्णि प्रवृत्त हुई है ॥ ८४ ॥

[युग्मम्]

प्रौढपाण्डित्यविषयः क्ववादी कृतदिग्जयः ।
चतुर्दशाब्ददेशीयः क्वचायमकृतश्रमः ॥८५॥
तथापि यद्यदवदत्प्रश्नानामुत्तरं क्रमात् ।
श्रीचन्द्रमौलिस्तत्सर्वमपूर्वं न श्रुतं क्वचित् ॥८६॥

एक ओर वेद शास्त्र सम्पन्न दिग्विजयी कहा सोमनाथ ? और दूसरी ओर चौदहवर्ष की अवस्था वाला कहां यह बालक ? इतने पर भी जो इसने क्रमबद्ध सब प्रश्नों का सभा में उत्तर दिया वह आज तक कहीं सुनने में नही आया, इस प्रकार का आश्चर्य सब विद्वान् सभा मे करने लगे ॥ ८५-८६ ॥

पौर्वापर्यक्रमवशाद्गीतापद्यार्थसङ्गतिः ।
कथमेकत्र विषये संगृहीतेति विस्मयः ॥८७॥

गीता का पूर्वापर प्रसङ्ग देख कर किस प्रकार उसके पद्यों की एक वाक्यता इस शास्त्रार्थ में श्रीचन्द्र जी ने कर के दिखा दी यह आश्चर्य सभा स्थित सब विद्वानों को हुआ ॥ ८७ ॥

दर्शनेषु न यद्दृष्टं श्रुतावपि न यच्छ्रुतम् ।
तत्सर्वमेव बालेन सद्यएव निवेदितम् ॥८८॥

जिस बात को हमने न दर्शनों में देखा और न श्रुतियों में सुना वह अद्भुत बात आज के शास्त्रार्थ में इस बालक श्रीचन्द्र ने तुरन्त सभा में प्रस्तुत करदी ।८८।

महतः पूर्वपक्षस्य दुरूहस्य यदुत्तरम् ।
समदादयमेकाकी न तच्छक्यं शतैरपि ॥८९॥

अनेक शास्त्रों से सम्बन्ध रखने वाले दुरूह पूर्व पक्ष का जो उत्तर अकेले श्रीचन्द्र ने दिया वह सैकड़ों विद्वान् मिल कर के भी नहीं दे सकते थे ॥ ८९ ॥

सरसा सरला सारासारतत्त्वविमर्शिनी ।
वागस्य हृदयं वेगादाकर्षति मनस्विनाम् ॥९०॥

देखने में सरल सुनने में सरस समझने में अतिगम्भीर ये श्रीचन्द्र की वाणी मनस्वी महापुरुषों का मन भी एकबार अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है ॥ ९० ॥

अपूर्वः कोपि विद्यायाः कोपोयं मूर्तिमानिव ।
समायातोऽत्र विषये यो न दृष्टो न च श्रुतः ॥९१॥

विद्या का यह कोई अपूर्व कोष मूर्तिमान् होकर श्रीचन्द्र के रूप में इस देश में आया है जो आज से पूर्व कभी न देखा और न सुना ॥ ९१ ॥

सर्वथा कश्चिदमरः प्रतिभाति भुवं गतः ।
सरस्वतीमिहद्रष्टुमायातो निजदेवताम् ॥९२॥

निःसन्देह यह श्रीचन्द्र कोई देव है जो इस रूप में यहां पर श्रीमती मूर्तिमती सरस्वतीदेवी का दर्शन करने के लिये देवलोक से आया है ॥ ९२ ॥

अथवा भगवानेव शिवः साक्षादिहागतः ।
रक्षार्थमस्यदेशस्य मानवं वपुराश्रितः ॥९३॥

अथवा इस देश की रक्षा करने के लिये मानव देह धारण कर इस रूप में साक्षात् शिव ही कैलाश से यहाँ पर पधारे हुए हैं ॥ ९३ ॥

एवंविधा बुधगिरः समन्तादुपसङ्गताः ।
स निपीय गुरोः पार्श्वे विनयावनतोऽभवत् ॥९४॥

चारों ओर से इस प्रकार विद्वानों के मुख से निकली हुई बातें सुनते हुए भगवान् श्रीचन्द्र जी अपने गुरुदेव के पास आकर नम्रता पूर्वक बैठ गए ॥ ९४ ॥

गुरुस्तं विबुधव्रातमध्यगं निजपाणिना ।
परामृशन्निजगिरा धन्योसीति मुदाब्रवीत् ॥९५॥

गुरु जी ने समस्त विद्वज्जनों के बीच में बैठे हुए श्रीचन्द्र को अपने कर कमल से छूते हुए बार २ धन्य हो २ इस प्रकार कह कर इनका अभिनन्दन किया ॥९५॥

इनको खोजने के लिये जो इनके बहुत से साथी घरों से निकल कर वन की ओर आने लगे थे उन्होंने इनको वन में बैठा हुआ देखकर जब इनसे बार २ घर जाने को कहा तब पण्डित सोमनाथ जी ने उनके प्रति एक दिव्य सन्देश सुनाया जिसका उल्लेख नीचे किया जाता है ॥ १०७-१०८ ॥

[दिव्य सन्देश]

श्रूयतां मनुजैः सर्वैरिदमस्मदुदाहृतम् ।
यदद्यावधि न क्वापि मयोक्तं हृदयस्थितम् ॥१०९॥

आपने कहा कि सज्जनो ! आप लोग ध्यान पूर्वक एक मेरे सन्देश को सुनें यह दिव्य सन्देश मैंने आज तक आपसे नहीं सुनाया प्रसङ्ग वश आज सुनाता हूँ ॥ १०९ ॥

दिग्जये कृतसन्धोहं वाराणस्यां महेश्वरम् ।
यदाऽप्राक्षं तदा स्वप्ने स मामाह निजोचितम् ॥११०॥

दिग्विजय को अपने मन में दृढ़ प्रतिज्ञा करके मैंने काशी में भगवान् श्री शङ्कर से आज्ञा प्राप्त करने के लिये जब प्रार्थना की तब उन्होंने मुझे स्वप्न में यह आदेश दिया ॥ ११० ॥

गच्छ त्वं मन्निदेशेन विजयी भव सर्वतः ।
परं काश्मीरविषयं न गच्छेर्मन्निदेशतः ॥१११॥

जाओ ! मेरे आदेश से सर्वत्र विजय प्राप्त करो परन्तु मेरे कथन से काश्मीर मण्डल में जाकर शास्त्रार्थ मत करना ॥ १११ ॥

मूर्ता भगवती तत्र शारदा मदनुज्ञया ।
मन्दिरे तिष्ठति सदा सर्ववाङ्मयदेवता ॥११२॥

क्योंकि ? वहां पर मेरी आज्ञा से मूर्त्ति रूप से देवी भगवती शारदा सर्वदा मन्दिर में रहती हैं जो कि समस्त वाङ्मय की अधिष्ठातृ देवता हैं ॥ ११२ ॥

सा मदीयरहस्यानि सर्वाणि जगदम्बिका ।
वेत्ति तच्चरणौ दृष्ट्वा न कुर्या बालचापलम् ॥११३॥

वह जगदम्बिका मेरे समस्त रहस्यों को पूर्ण रूप से जानती है उनके श्री चरणों में पहुंचकर बाल जनोचित चापल मत करना ॥ ११३ ॥

तत्र यद्यवमन्तासि शारदां हृदयेश्वरीम् ।
तदा बालस्वरूपेण भविष्यामि तवाग्रतः ॥११४॥

यदि वहां जाकर तुम पाण्डित्य के गर्व में आकर मेरी हृदयेश्वरी शारदा का अपमान करोगे तो बालरूप में आकर मैं तुम्हारे समस्त गर्व का विध्वंश करूंगा ।११४

यस्मात्पराभवं प्राप्य विलज्जेस्त्वं सभोदरे ।
तमेव मां विजानीया नीलकण्ठं महेश्वरम् ॥११५॥
एवमादिश्य मां शम्भुर्ध्यानस्तिमितलोचनः ।
तत्रैवान्तर्दधे स्वप्ने यत्राहमवसं पुरा ॥११६॥

शास्त्रार्थ में जिस बालक के समक्ष में जाकर तुम सभा में लज्जित हो जाओगे उसी बालक को तुम साक्षात् शङ्कर समझना इतना मेरे से स्वप्न में कहकर भगवान् शङ्कर वहीं पर अन्तर्हित हो गए जहां पर कि मैं रहता था ॥११५-११६॥

सर्वमेतदिहप्राप्तं मया शम्भोर्निदेशतः ।
पराभवस्य करणं विस्मृतं तद्विभोर्वचः ॥११७॥

मैं उस स्वप्न सन्दिष्ट वृत्तान्त को भूलकर यहांपर शास्त्रार्थ के लिये आया था जिसका यह घोरतर परिणाम मेरे समक्ष में आकर उपस्थित हुआ ॥ ११७ ॥

अतोऽहं बालरूपस्य शम्भोरस्य पदाम्बुजम् ।
अभिवाद्यैव गन्तास्मि स्थानादस्मादिदं व्रतम् ।११८।

इसलिये अब मैं यहां से बाल रूप शङ्कर का दर्शन करके ही यहां से उठूंगा अन्यथा नहीं यह मैंने आज हृदय में दृढ़ प्रतिज्ञा की है ॥ ११८ ॥

एवमादिश्य तान्सर्वानागतान्निजमानवान् ।
त्रिपाठी ध्यानसम्मग्नो बभूव वटमूलगः ॥११९॥

इस प्रकार आगत सज्जनों के प्रति अपना सन्देश कहकर पण्डित सोमनाथ जी वट मूल में बैठकर समाधिस्थ हुए ॥ ११९ ॥

[वलापकम्]

जाते सूर्यास्तसमये समन्तात्तमसावृत्तम् ।
तदासीद्विपिनं सर्वं कालायसमिव स्थितम् ॥१२०॥

नीरवं मृदुवातेन लुलितं गगनोन्मुखैः ।
वृक्षैः समन्तादाकीर्णं मर्मरध्वनिमञ्जुलम् ॥१२१॥
कदाचित्कन्दरालीनसिंहगर्जनभीषणम् ।
कदाचिद्वनमातङ्गचीत्कृतैरनुनादितम् ॥१२२॥
शरच्चन्द्रच्छटापातजातद्रुमतलप्रभम् ।
तिलतण्डुलतान्नोतं वनदेव्या वनाङ्गणम् ॥१२३॥

इतने ही में सूर्यास्त का समय हुआ वन में काला अन्धकार छा गया वन सर्वथा नीरव हो गया हलकी हवा से वृक्ष हिलने लगे आकाश चुम्बी ऊंचे वृक्षों से गिरे हुए सूखे पत्तों का शब्द प्रतीत होने लगा उस वन में किसी ओर से गुहा में छिपे सिंहों का भयङ्कर गर्जन सुनाई देने लगा किसी ओर से बनैले हाथियों की चिंघाड़ सुनने में आरही थी चन्द्रमा के सुन्दर किरण घने वृक्षों की पत्र माला भेद कर पृथ्वी पर आने लगे जिनको देखकर ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो वन देवी ने नृत्य करने के लिये वन का सुन्दर प्राङ्गण देखकर उसमें रङ्ग बिरङ्गा फर्श बिछा दिया हो ॥ १२०-१२३ ॥

[विशेषकम्]

विलोक्य चित्रितं तादृग्वनमस्यान्तरे गतः ।
श्रीचन्द्रमौलिर्भगवान्निर्जगाम गुहामुखात् ॥१२४॥
प्रत्यागमनमार्गस्थवटच्छायाकृतासनम् ।
हृदये कृतविश्वेशभावनं सदुपायनम् ॥१२५॥
विलोक्य भगवानत्र सोमनाथमनाथवत् ।
निमीलिताक्षमस्याग्रे तदाऽतिष्ठत्कृपावशात् ॥१२६॥

ऐसा सुहावना वन देखकर श्रीचन्द्रमौलि जी इसके अन्दर से निकल कर अपनी गुहा के परिसर में शहर की ओर लौटने वाले मार्ग में अवस्थित वट के मूल में पद्मासन लगाकर बैठे हुए हृदय में श्री विश्वनाथ जी का स्मरण कर हाथों में पुष्प लिये हुए पण्डित सोमनाथ जी के समक्ष में आकर अपनी कृपा के कारण उपस्थित हुए ॥ १२४-१२६ ॥

हृदयेन्तर्हितं बाह्यदेशे तत्र व्यवस्थितम् ।
विलोक्य दण्डवद्भूमौ प्रणिपत्येदमब्रवीत् ॥१२७॥

आपके समक्ष में आते ही हृदय से गायब होते हुए विश्वनाथ को देखने के लिये सोमनाथ जी ने जैसे ही आंखें खोलीं तैसे ही समक्ष में अवस्थित आपको देखकर आपके लिये साष्टाङ्ग प्रणाम कर सोमनाथ जी ने कहा ॥ १२७ ॥

मदागः क्षम्यतां देव ! मानवोचितचापलम् ।
यदिदं समभूदत्र सर्वं तन्नानुचिन्त्यताम् ॥१२८॥

भगवन् ! आप कृपया मेरे अपराधों को क्षमा करें और स्वाभाविक भूल के कारण मेरे से जो कुछ अनुचित व्यवहार हुआ हो उसको अपने हृदय में स्थान न दें ॥ १२८ ॥

[युग्मम्]

वदन्तमेवं भगवान्सोमनाथं कृताञ्जलिम् ।
जगाद यत्त्वयाकिंचिदपराद्धं ममाग्रतः ॥१२९॥
न तन्मया हृदिकृतं व्यावहारिकसत्तया ।
भवत्येवंविधं लोके प्रायशो बालचापलम् ॥१३०॥

इस प्रकार अपने किये अपराधों की क्षमा मांगते हुए सोमनाथ को देखकर भगवान् श्रीचन्द्रमौलि जी ने कहा कि जो भी तुमने मेरे समक्ष में आकर अपराध किया वह सब मैंने भुला दिया उसके दुहराने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि व्यवहार में कोई न कोई भूल मनुष्यों से हो हो जाया करती है ॥ १२९-१३० ॥

मन्दस्मितेन बहुशो मया त्वं बत सूचितः ।
नास्मरः पूर्ववृत्तान्तं तदा स्वप्ने यदीरितम् ॥१३१॥

शास्त्रार्थ के आरम्भ में अपने मन्दस्मित के द्वारा मैंने तुमको स्वप्न में कही हुई बात का स्मरण दिलाया परन्तु उस पर तुमने कुछ ध्यान नहीं दिया ।१३१।

अतएव पराभूतिं प्राप्तवानसि वस्तुतः ।
प्रियोसि मम भक्तोसि जहि मोहमुपागतम् ॥१३२॥

इसी कारण काश्मीर में आकर तुम्हारा पराजय हुआ वास्तव में तुम मेरे प्यारे भक्त हो अब इस मोह को छोड़कर मेरे आदेश का पालन करो ॥ १३२ ॥

भक्त्या पदाम्बुजं देव्याः प्रणम्य विविधस्तवैः ।
सन्तोष्य तां प्रसादेन गच्छ वाराणसीं प्रियाम् ॥१३३

परम भक्ति के साथ वागीश्वरी के मन्दिर में जाकर तुम शारदा को प्रण करो फिर पूर्ण विधि से अर्चन करने के बाद स्तवन करो फिर उनकी भी आ लेकर काशी जाओ !! ॥ १३३ ॥

[युग्मम्]

एवं मृदुपदैर्भावमादिशन्तं महेश्वरम् ।
जगाद मनसा तुष्टः सोमनाथो विदाम्वरः ॥१३४॥
यदि प्रीतोसि भगवन्मय्यनुग्रहवानसि ।
तर्हि दर्शय तद्रूपं हृदये मम यद्गतम् ॥१३५॥

इस प्रकार आदेश देते हुए भगवान् श्रीचन्द्र जी को अपने समक्ष में देखक पण्डित सोमनाथ ने कहा कि यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो अनुग्रह करके मु उस रूप में दर्शन दीजिये जो मेरे हृदय में विद्यमान है ॥ १३४-१३५ ॥

[युग्मम्]

निशम्य भक्तहृदयादुत्थितं तादृशं वचः ।
दर्शयामास तद्रूपं यदस्य हृदये स्थितम् ॥१३६॥
पञ्चाननं त्रिनयनं धृतगङ्गं सताण्डवम् ।
तुपारधवलं भस्मभूपणं गतदूपणम् ॥१३७॥

इस भक्त की प्रेमी प्रार्थना सुनकर श्रीचन्द्र जी ने पञ्चानन, त्रिलोचन, धृतगङ्ग तुपार धवल, भस्म भूपण अपना रूप ताण्डव नृत्य के साथ दिखा दिया जो नि सोमनाथ के हृदय में इस समय विद्यमान था ॥ १३६-१३७ ॥

विलोक्य भगवद्रूपमीदृशं स विदाम्वरः ।
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ जगाद समयोचितम् ॥१३८॥
नाहं गमिष्याम्यधुना विहाय भगवत्पदम् ।
वाराणसीं भवत्सेवामहमिच्छामि वस्तुतः ॥१३९॥

भगवान श्रीचन्द्र जी का ऐसा शङ्कर से अभिन्न रूप देखकर सोमनाथ ने

दण्डवत् प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहने लगा कि मैं आपके चरणों की सेवा करना चाहता हूं, आपको छोड़कर काशी जाने की मेरी सर्वथा इच्छा नहीं है ॥१३८-१३९॥

आवेदयति भावं स्वमेवं तत्र महोदये ।
श्रीचन्द्रमौलिस्तमिदं प्राह तत्र वनोदरे ॥१४०॥
गच्छेदानीमितः शीघ्रं बहुकर्तव्यमस्ति मे ।
न रोचते विलम्बो मे समयेत्र समागते ॥१४१॥

पण्डित सोमनाथ जी की ऐसी हार्दिक इच्छा सुनकर श्रीचन्द्र जी ने उनसे कहा कि मेरी आज्ञा से इस समय तुम काशी जाओ ॥ हमको बहुत काम करना बाकी है उसमें विलम्ब लगाना हमको अभीष्ट नहीं है क्योंकि यही उसके करने का समय है ॥ १४०-१४१ ॥

दिशामि यदहं प्रीत्या तदेव भवताऽधुना ।
कर्तव्यमत्र न स्थेयं क्षणमात्रमपि त्वया ॥१४२॥

इस समय जो आपको हम आज्ञा देते हैं आप उसी का पालन करें यहां पर अधिक काल तक ठहरने का हठ न करे ॥ १४२ ॥

विगते समये पश्चात्तीर्थयात्राप्रसङ्गतः ।
यदाहमागमिष्यामि पुरीं वाराणसीं प्रियाम् ॥१४३॥
तदा गतश्रममहं भवन्तं निजसन्निधौ ।
स्थापयिष्यामि विधिवद्दत्तदीक्षं यथायथम् ॥१४४॥
तावत्त्वमपि तत्रत्यं कौटुम्बिकभरं लयम् ।
नयेति निगदन्नेव स तत्रान्तरधीयत ॥१४५॥

कुछ काल बीत जाने पर जब हम तीर्थ-यात्रा के प्रसङ्ग से काशी आवेंगे उस समय आपको उदासीन धर्म की दीक्षा देकर अपने पास रहने की अनुमति देंगे उस समय तक आप भी समयोचित कुटुम्ब भार से हलके हो जाओगे इतना कह कर श्रीचन्द्र जी अन्तर्हित हो गए ॥ १४३-१४५ ॥

अदृश्यतां गते तत्र सहसैव वनोदरे ।
श्रीचन्द्रमौलौ नितरां विलक्षः समभूद्बुधः ॥१४६॥

करौ विमर्दयन्दन्तैर्दन्तानपि विचूर्णयन् ।
सोमनाथस्तदा तत्र गतप्राण इवाभवत् ॥१४७॥

श्रीचन्द्र जी के अकस्मात् अन्तर्हित होने पर पण्डित सोमनाथ उस वन में बेहोश हो गये और कुछ देर के बाद होश आने पर हाथ मलते हुए और दांत पीसते हुए कुछ समय तक मृतक जैसे पड़े रहे ॥ १४६-१४७ ॥

मुहूर्त्तमात्रं निःसंज्ञे तदा तस्मिन्नवस्थिते ।
आकाशवाणी समभूत्तत्कर्णमुपसङ्गता ॥१४८॥

एक मुहूर्त्त तक निश्चेष्ट रहने पर जब कुछ २ सोमनाथ जी को होश हुआ उस समय एक आकाशवाणी आपके श्रवण गोचर हुई ॥ १४८ ॥

माऽत्रतिष्ठ वने घोरे देवीं पश्य पुरःस्थिताम् ।
सरस्वतीं जगद्वन्द्यां कृपया समुपागताम् ॥१४९॥

उसके शब्द इस प्रकार के थे ! इस घोर वन में अधिक काल तक मत रहो समक्ष में उपस्थित हुई जगद्वन्द्य सरस्वती का दर्शन करो ॥ १४९ ॥

श्रीचन्द्रमौलेः कृपया समायातां वने स ताम् ।
विलोक्य विस्मयाविष्टस्तुष्टाव मधुरैः पदैः ॥१५०॥

इस आकाशवाणी को सुनकर पण्डित सोमनाथ जी ने श्रीचन्द्र जी की कृपा से उपस्थित हुई शारदा को देखकर मधुर पदों में उसकी स्तुति आरम्भ की।१५०।

[युग्मम्]

चराचरजगद्वन्द्ये कविमानसवासिनि ।
परापरजगत्सर्गस्थितिप्रलयसाक्षिणि ॥१५१॥
समस्तमपि ते गात्रं वाङ्मयेन प्रकल्पितम् ।
विलोक्यते जगद्धात्रि शरणागतवत्सले ॥१५२॥

आपने कहा, हे भगवति ! आप चराचर जगत् के द्वारा वन्दनीय हैं कवियों के हृदय में आपका सर्वदा निवास है, परापर भेद से विद्यमान दो प्रकार के जगत् का जो उद्भव स्थिति और प्रलय काल है उसकी एक मात्र आपही साक्षिणी हैं, हे जगद्धात्रि ! हे शरणागत वत्सले !! आपका समस्त शरीर मुझको समस्त वाङ्मय के द्वारा बना हुआ प्रतीत होता है ॥ १५१-१५२ ॥

[वागीश्वरी वर्णनम्]

गन्धर्वविद्या ते कण्ठस्त्रयी तव वलित्रयी ।
अथर्वाङ्गिरसो वेदो रोमराजिः शुभास्ति ते ॥१५३॥

आपका कण्ठ गन्धर्व विद्या से बना हुआ है और आपकी त्रिवली वेदत्रयीसे बनी हुई है तथा आपकी रोमपंक्ति अथर्वाङ्गिरस वेद से निर्मित है ॥ १५३ ॥

गद्यपद्यविभेदेन काव्यं ते नयनद्वयम् ।
शिक्षात्मकं ते चरितं कल्पः सर्वाङ्गमण्डनम् ॥१५४॥
नवधा भिद्यमानो यो रसः सर्वत्र विस्तृतः ।
सएव ते महामाये शरीरमतिसुन्दरम् ॥१५५॥
निरुक्तमेव लावण्यं तव गात्रे प्रतिष्ठितम् ।
भुजद्वयं वर्णमात्रावृत्तभेदेन संस्थितम् ॥१५६॥
कूर्परो यतिरूपस्ते वृत्तमात्रे व्यवस्थित. ।
नानाछन्दांसि ते मात. करशाखा व्यवस्थिताः ।१५७।

गद्य पद्य के भेद से दो प्रकार का काव्य ही आपका नयन युगल है शिक्षात्मक आपका समस्त चरित्र है और कल्प ग्रन्थ ही आपका सर्वाङ्ग मण्डन है सर्वत्र विस्तृत नवधा विद्यमान शृङ्गारादि रस समुचय ही आपका सुन्दर विग्रह है निरुक्त आपका लावण्य है और मात्रा वर्ण भेद से द्विविध छन्दः शास्त्र ही आपका भुज युगल है और उसमें भी जो मध्य २ में यति (अर्थात् रुकने का जो नियम) है वही आपके अङ्ग का कूर्पर भाग है नाना वृत्तों का जो भेद है वही आपकी कर शाखाएं है ।१५४-१५७।

परस्परगुणाबद्धसमासव्याससमञ्जुला ।
व्याकृतिस्ते महादेवि रशना मध्यमास्थिता ॥१५८॥
नक्षत्रविद्या ते हारः पक्षौ पूर्वापरौद्वयोः ।
विवादविषये मातस्तवोष्ठौ रसवर्षिणौ ॥१५९॥

परस्पर गुणों से आबद्ध समास और व्यास से मञ्जुल जो व्याकरण है वही शब्द परम्परा मस्तक आपकी रशना (तगड़ी) है । नक्षत्र विद्या आपका मुक्ता हार है तथा विवाद में पूर्वोत्तर रूप से विद्यमान दो पक्ष ही आपके ओष्ठ बनकर चमक रहे हैं ॥ १५८-१५९ ॥

पूर्वोत्तरविभेदेन कर्मब्रह्मपरायणे ।
मीमांसे बहुमीमांसे तवोरुयुगलं महत् ॥१६०॥
कणभक्षमते ये ये पदार्थाः षोडशस्थिताः ।
त एव ते सुवदने द्विभूय रदतां गताः ॥१६१॥

कर्म एवं ब्रह्म का प्रतिपादन करने वाली पूर्वापर भेद से व्यवस्थित दो मीमांसा शास्त्र ही आपके विग्रह में ऊरु युगल बने हुए हैं। कणादमुनि के मत में जो सोलह पदार्थ उपलब्ध होते हैं वे ही द्विगुणित होकर आपकी दन्त पंक्ति की शोभा बढ़ा रहे हैं ॥ १६०-१६१ ॥

मत्स्यादिलक्षणयुतं पुराणं ते पदद्वयम् ।
श्रुतेरर्थानुगं धर्मशास्त्रमेव शिरस्तव ॥१६२॥
भ्रुवोर्युगं प्रणवजं विसर्गः कुण्डलद्वयम् ।
सोमसिद्धान्तमापन्नं मुखं ते मातरम्बिके ॥१६३॥

मत्स्य आदि अनेक शुभ लक्षणयुक्त जो अठारह पुराण हैं वे ही आपके शरीर में दो चरण हैं। वेदों के पीछे चलने वाले स्मृति ग्रन्थ आपके शिरःस्थानीय हैं। दो भागों में विभक्त प्रणव ही आपके विग्रह में भ्रू युगल हैं और दो विसर्ग ही आपके शरीर में कुण्डल स्थानीय हैं और सोम सिद्धान्त वाद आपका मुख मण्डल बन गया है ॥ १६२-१६३ ॥

शून्यात्मवादतामाप्तमुदरं ते महेश्वरि ।
विज्ञानमन्तरङ्गं यत्तदेव कुचयोर्युगम् ॥१६४॥
समस्तवस्तुसम्बिष्टस्तवायं बहुसुन्दरः ।
सदाकारो जगन्मातः सर्वत्र समवस्थितः ॥१६५॥

आपके शरीर में शून्यवाद उदर स्थानीय प्रतीत होता है और अन्तरङ्ग विज्ञान भाग ही आपके विग्रह में कुच युगल है इस प्रकार समस्त जगत् में व्याप्त यह आपका आकार सद्रूप बनकर सर्वत्र दृष्टि गोचर हो रहा है ॥ १६४-१६५ ॥

तदिदं बहुरूपेण विस्तृतं भुवनस्थिरम् ।
प्रणमामि जगन्मान्ये वपुस्तव मनोहरम् ॥१६६॥

प्रसीद मय्यवनते प्रसन्नाननपङ्कजे ।
अनन्यपरतन्त्रस्ते प्रसादः कथ्यते बुधैः ॥१६७॥

हे जगन्मान्ये ! अनेक भाषा भेद से भिन्न २ भाव बोधक इस आपके विश्व-व्यापक सुन्दर विग्रह को मैं बार २ प्रणाम करता हू मेरे ऊपर आप प्रसन्न हूजिये आपका प्रसाद सर्वदा अनन्य परतन्त्र कहा जाता है ॥ १६६-१६७ ॥

एवं प्रणम्य विधिवद्भारतीं परितोषयन् ।
ब्राह्मे मुहूर्ते स ततः प्रतस्थे नगरीं निजाम् ॥१६८॥

इस प्रकार भारती का स्तवन करके पण्डित सोमनाथ जी ब्राह्म मुहूर्त में उठ कर उस वन से काशी के लिये प्रस्थित हुए ॥ १६८ ॥

मयाप्येतद्विविच्यात्र यथाविधि यथामति ।
श्रीचन्द्रमौलेश्चरितं प्रसङ्गोयं समाप्यते ॥१६९॥

हम भी यहा पर यथा बुद्धि बलोदय इस शास्त्रार्थ के प्रसङ्ग को समाप्त कर श्रीचन्द्रमौलि का इतना चरित्र मुनिमण्डल की भेंट करते हैं ॥ १६९ ॥

शास्त्रार्थप्रक्रियाऽऽबद्धः सर्गोयं वादिभिर्जनैः ।
सर्वदा हृदये धार्य. समाधानपरायणै. ॥१७०॥

शास्त्रार्थ की प्रक्रिया बतलाने वाला यह सर्ग वादी और प्रतिवादी दोनों प्रकार के विद्वानों को सर्वदा अपने हृदय में स्मरण रखना चाहिये ॥ १७० ॥

ये चन्द्रमौलेर्विजयं विवादे जना. पठिष्यन्ति समादरेण ।
ते चन्द्रमौले· कृपया सदैव जयं समेष्यन्ति निरस्तशङ्का. ।१७१।

जो महानुभाव इस विचार प्रसङ्ग में सर्वदा अपने हृदय में भगवान् श्रीचन्द्र-मौलि का विजय आदर के साथ पढ़ेंगे वे श्रीचन्द्रमौलि की कृपा से सर्वत्र विजयी होंगे यही हमारा सर्ग के अन्त में मङ्गलाशासन है ॥ १७१ ॥

इतिश्री सनाढ्यवंशोद्भव कविवर श्रीमदखिलानन्दशर्मप्रणीते
सतिलके जगद्गुरुश्रीचन्द्रदिग्विजये महाकाव्ये
सोमनाथपराजयो नामाष्टम सर्ग

नवमः सर्गः

श्रीमानतःपरमुदारतया मनस्वी
वेदान्तवेद्यपरमात्मविचारनिष्ठः।
लोकोपकारमनसा निगमोदितश्री-
रारविश्चकार निगमेषु नवीनभाष्यम् ॥१॥

शास्त्रार्थ में विजय प्राप्ति के अनन्तर आत्म विचार निरत मनस्वी भगवान् श्रीचन्द्र जी ने संसार के उपकारार्थ वैदिक साहित्य पर चन्द्र भाष्य लिखने का आरम्भ किया ॥ १ ॥

नालोकितं जगति यैः परमादरेण
श्रीचन्द्रभाष्यमतिमञ्जुलभावगर्भम्।
मन्ये प्रसह्य विधिना परिवञ्चितास्ते
वामेन वाममतयो गतिपारवश्यात् ॥२॥

जिन महानुभावों ने वेदों पर आपका लिखा हुआ वेद भाष्य नहीं देखा वे सज्जन विधाता ने हठ पूर्वक आत्मिक उन्नति के मार्ग से वञ्चित किए, ऐसा जानना चाहिये ॥ २ ॥

अस्मिन्नितान्तरमणीयपदार्थनद्धे
भाष्ये निरस्य विविधानि मतानि देवः।
मन्त्रस्थितैर्बहुपदैः स्वमतं विविञ्चुः
श्रीचन्द्रमौलिरकरोद्भुवनं विलग्नम् ॥३॥

इस सुन्दर चन्द्र भाष्य में आधुनिक मतों का निराकरण करके, श्रीचन्द्र जी ने मुनि जनोचित सिद्धान्त का जो प्रतिपादन किया है उससे संसार में एक अद्भुत चमत्कार उपस्थित हुआ ॥ ३ ॥

ध्यानस्थितः स भगवानमृतांशुमौलिः
श्रीचन्द्रमौलिगदितं निगमस्य भावम्।

पश्यन्ननुत्तमपदैः प्रथमाम्बभूव
सद्यः समागतमहर्षिगणेषु तुष्टः ॥४॥

आपके लिखे हुए चन्द्र भाष्य को ध्यानावस्थित भगवान् शङ्कर ने उत्तम समझकर उसका समर्थन सप्तर्षि मण्डल के अन्दर जाकर किया ऐसा प्रतीत होता है ॥ ४ ॥

भावाभिराममनसा जगदम्बिकायाः
पादाभिवन्दनपरो यमिनामधीशः ।
यानुत्तमानधिजगे तदनुग्रहेण
भावान्कथन्तदपरः किलतान्समेयात् ॥५॥

अपने मनमें भगवती जगदम्बिका के चरणों का स्मरण करके जिन उत्तम भावों का आपने प्राप्त किया उनको सामान्य पुरुष किसप्रकार प्राप्त कर सकता है ॥ ५ ॥

वागीश्वरी भगवती हृदये निविष्टा
श्रीचन्द्रमौलिमिषत स्वयमेव वेदम् ।
गूढार्थमञ्जुलपदं विवरीतुकामा
सान्निध्यमाप पदवाक्यभिदाभिरस्य ॥६॥

आपके हृदय में बैठकर भगवती शारदा ने वेदों का उत्तम भाष्य लिखने के लिये स्वयं प्रयत्न किया ऐसा इसकी अनुपम शैली देखने से अवगत होता है॥६॥

देवानयं मुनिवरः शिरसा समन्ता-
न्नानम्य तं गणपतिं सशिवं सविष्णुम् ।
सूक्तक्रमेण पुरतः परमेष्ठिदृष्टं
ऋग्वेदमेव निजभाष्यपथे चकार ॥७॥

आपने भाष्य लिखने के समय समस्त देव गणों को हृदय से प्रणाम कर सूक्त क्रम से सर्व प्रथम ब्रह्मदेव दृष्ट ऋग्वेद को ही अपने हाथ में लिया ॥ ७ ॥

मूर्त्यष्टकं भगवतो निगमप्रदिष्टं
शम्भोरयं मुनिवरो विवरीतुकामः ।

वैश्वानरीयगुणवर्णनमात्रनिष्ठा-
न्मन्त्राननुक्रमवशेन पुरो ददर्श ॥८॥

वेद में भगवान् शङ्कर को अष्टमूर्ति कहा है पृथ्वी आदि पांच तत्व तथा यजमानादि अन्य तीन इन आठों को शङ्कर का रूप समझ कर आपने सर्व प्रथम आग्नेय सूक्तों पर भाष्य लिखना आरम्भ किया ॥ ८ ॥

आग्नेयसूक्तगणमग्निगुणोपपन्नं
व्याख्याय पूर्वमयमत्र ऋचां समूहे ।
सूक्तक्रमात्तदनु वारुणमन्त्रपूगं
तत्राचिनोद्भगवतो वपुषि द्वितीयम् ॥९॥

अग्नि गुण वर्णन परक ऋग्वेद गत समस्त आग्नेय सूक्तों पर भाष्य लिखकर आपने शङ्कर के द्वितीय जल तत्व का गुण वर्णन करने के लिये सूक्त क्रम से वारुण सूक्तों पर भाष्य लिखा ॥ ९ ॥

तं विस्तरेण शिवभावगतेन तस्मि-
न्वेदे विविच्य मुनिराडयमादरेण ।
सावित्रमन्त्रचयमप्यपरं परस्ता-
दभ्याजगाम मनसा निगमस्थितेन ॥१०॥

वारुण सूक्तों का भाष्य समाप्त कर उसके अनन्तर आपने ऋग्वेद गत सौर सूक्तों पर भाष्य लिखा जिनमें सौर मण्डल का विवरण विद्यमान है ॥१०॥

व्याख्याय सौरमथ मन्त्रचयं मनस्वी
वायव्यसूक्तगतमन्त्रशतानि तत्र ।
तादृग्विधैरनुभवैर्विभवैश्च तैस्तै-
रात्मस्थितैरनुपदं विशदीचकार ॥११॥

सौर सूक्तों का भाष्य लिखने के अनन्तर आपने ऋग्वेद गत अनेक वायव्य सूक्तों का सग्रह करके उन पर भाष्य लिखा जिनमें वायु तत्व का वैज्ञानिक विवरण है ॥ ११ ॥

वायव्यसूक्तविवृतेः परतः क्रमेण
श्रीचन्द्रएष भगवान्निगमागमज्ञः।
मन्त्रेषु पार्थिवगुणोपगतेषु भाष्यं
चक्रे विधिक्रमवशेन पुरोगतेन ॥१२॥

वायव्य सूक्तों पर विवरण लिखने के अनन्तर आपने पार्थिव तत्व के वर्णन करने वाले मन्त्रों का वर्गीकरण किया, जिसमें पृथिवी तत्व का विशद वर्णन है ॥१२॥

एवं क्रमेण विवृतात्मतनोः शिवस्य
मूर्त्यष्टकानुगतया विवृतिं विधाय।
ऋग्वेदमण्डलगतानि समाप्य हर्षा-
त्सूक्तानुवाकगहनानि तुतोष धीरः ॥१३॥

आग्नेय, वारुण, सौर, वायव्य, पार्थिव सूक्तों का भाष्य लिखकर आपने इनके अतिरिक्त आकाश, चन्द्र, जीव वर्णन परक सूक्तों का विवरण करते हुये अष्टमूर्त्ति शङ्कर का वाङ्मय समर्थन किया ॥१३॥

ऋग्वेदमित्थमवगाह्य यथाक्रमेण
देवस्तुतौ व्यवसितं यजुषां विभागम्।
यज्ञोपयुक्तकरणैर्विवरीतुमस्मि-
न्भाष्यं व्यधत्त मुनिदर्शितसत्पथेन ॥१४॥

ऋग्वेद का इस प्रकार अवगाहन करके आपने देव-स्तुति में प्रयुक्त यजुर्वेद का यज्ञ समर्थनपरक चन्द्रभाष्य लिखा, जिसमें सनातन मार्ग का पूरा-२ अनुगमन है ॥१४॥

यज्ञो यजुर्भिरिति यन्निजगाद यास्क-
स्तत्सत्यमेव यदयं तदनुक्रमेण।
मन्त्रानुपस्थितफलान्निजकल्पनाभि-
रायोजिताभिरकरोद्यजनं समृद्धम् ॥१५॥

"यज्ञोयजुर्भि" इस मन्त्र का अनुसन्धान करके यास्कानुमोदित यज्ञप्रकरण

का अलग २ विवरण लिखते हुये आपने प्रत्यक्ष में फल देने वाले यज्ञपरक मन्त्रों को सत्य सिद्ध कर दिया ॥१५॥

स्तुत्यर्थका मुनिवरैः किल ये यथाव-
द्दृग्वेदमण्डलपथे मनवो विभक्ताः।
तानर्थवादविधिभेदवशेन सर्वा-
नाध्वर्यवे सफलतामयमानिनाय ॥१६॥

ऋग्वेद में केवल द्रव्यों का गुण वर्णन मात्र है उन द्रव्यों का उपयोग यज्ञ में होता है। बिना यज्ञों के ऋग्वेद की सफलता नहीं होती, इसलिये ऋग्वेद को सफल बनाने के लिये ही आपने यजुर्वेद का भाष्य लिखा ॥१६॥

नानाविधाध्वरवितानविवेचनाभि-
र्नानाभिदाभिरुपयुक्तसमर्थनाभिः।
हौत्रादिकर्मविनियुक्तमनुप्रसङ्गा-
दाध्वर्यवं क्रममपूरयदेष दैवम् ॥१७॥

कामनाओं के अनेक विध होने के कारण वाजपेय, राजसूय, अश्वमेध आदि अनेक यज्ञ किये जाते हैं उनमें होत्र आदि अनेक विभाग होते हैं जिनका निरूपण श्रौत सूत्रों में विद्यमान है उनको अलग २ दिखाने के लिये आपने इस वेद में अद्भुत भाष्य लिखा ॥१७॥

काण्डत्रयात्मकभिदां निगमेषु पश्य-
न्कर्मात्मकं निगमकाण्डमसौ मनस्वी।
द्वाभ्यां निरूप्य निगमक्रमतो द्वितीयं
काण्डं तृतीयनिगमेन दिदेश दिव्यम् ॥१८॥

वेद त्रिकाण्ड हैं, उसमें ऋग्वेद और यजुर्वेद कर्म प्रधान हैं इसलिये कर्म परक दो वेदों का भाष्य लिखकर आपने उपासना परक साम वेद का भाष्य लोक में उपस्थित किया ॥१८॥

सामेति यं मुनिवराः प्रवदन्ति वेदं
व्यासादयः स्वरभिदाभिरनन्तभेदम्।

तस्मिन्नयं मुनिवरो मुनिमार्गजुष्टं
भाष्यं समारभत यत्प्रथितं जगत्याम् ॥१९॥

प्राचीन व्यासादि मुनियों ने जिसको साम के नाम से व्यवहृत किया, उस वेद का मुख्य भाग आरण्यक है, जिसमें धैवत निषाद आदि स्वरों का आरोह तथा अवरोह निर्दिष्ट है उसका पूरा २ विवेचन आपने इस साम वेद के भाष्य में किया ॥१९॥

अत्रापि षड्जऋषभादिविभेदभिन्नं
मन्त्रक्रमं ततमभिन्नतया प्रतीतम् ।
श्रीचन्द्र एव भगवान्भरतोक्तमार्ग-
माश्रित्य तत्क्रमवशेन पृथक् चकार ॥२०॥

साम वेद में प्रायः समस्त स्वरों का वर्गीकरण मिलता है, परन्तु उसमें स्वरानुक्रम से मन्त्रानुक्रम नहीं है आपने इस अपने भाष्य मे स्वरानुक्रम से मन्त्रानुक्रम अलग अलग करके भरतमुनि प्रतिपादित पद्धति को जनता म उपस्थित किया ।२०।

विश्वावसुप्रभृतिभिर्गतिभेदविज्ञै-
र्गान्धर्ववेदपथमाश्रितवद्भिरादौ ।
यः सामगानविषयो दिवि रक्षितोऽभू-
त्तं योगतः समवलोक्य भुवं निनाय ॥२१॥

विश्वावसु तुम्बुर आदि देव गायकों ने सृष्टि के आरम्भ में जिस गान्धर्व वेदको अनेक गतियों के साथ देवलोक में सुरक्षित रूप में रक्खा था, आपने उसको सामवेद के साथ इस भूमि पर उतारकर जनता का बड़ा उपकार किया ॥२१॥

नादानुनादनदनैर्दिविपत्पुरोगै-
र्नन्दीश्वरादिगणमध्यगतैर्महद्भिः ।
तौर्यत्रिकेण विधिनानुमतः स वेदः
श्रीचन्द्रमेनमधिगत्य बभूव सार्थः ॥२२॥

तत, आनद्ध, सुषिर, घन, यह चार नाम शब्द की गति विधि को देखकर कल्पित किये गये हैं नाद, अनुनाद नदन, इन तीन नन्दि प्रोक्त भेदों से उनका

समन्वय करके देव गायकों ने ग्राम कल्पित किये, जो षड्ज ग्राम, मध्यम ग्राम, और गान्धार ग्राम नाम से प्रसिद्ध है, इनको पूर्णरूप से देवगण ही निकाल सकते हैं, मनुष्य नहीं, इन सबके एकीकरण से जो तौर्यत्रिक होता है उसका अनुगमन करना अति कठिन है, नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने इन बातों का चित्रण किया है, जिसकी झलक आपके चन्द्रभाष्य में चमकती है ॥२२॥

वीणानिनादरसिको भुवनप्रसिद्ध-
श्रीनारदो मुनिवरो महतीमुपेत्य ।
यं सामवेदगदितैर्विविधैरुपाय-
रादिष्टवान्क्रममसौ भुवि तं वितेने ॥२३॥

देवर्षि नारद महती नामक अपनी वीणा को हाथ में लेकर जिन स्वरों का अनुनाद करते थे उनका नारद पद्धति के अनुसार जनता में उपस्थित करके आपने भूलोक में स्वर्लोक का दृश्य उपस्थित किया है ॥२३॥

१० व्याख्याय सामविधिमेवमसौ मुनीन्द्र
काण्डं द्वितीयमपि वेदविधौ समाप्य ।
विज्ञानकाण्डविषयं विवरीतुकाम-
स्तुर्यं विवेश निगमं भगवन्निदेशात् ॥२४॥

इस अद्भुत क्रम से सामवेद द्वारा वेद का दूसरा उपासना काण्ड विस्तृत करके आपने अथर्व वेद का भाष्य लिखना आरम्भ किया जिसमें सामान्य रूप में ज्ञान तथा विशेष रूप में विज्ञान वर्णित है ॥२४॥

अस्मिन्विचित्रतरमाङ्गिरसे विभागे
भावं विलोक्य भुवनत्रयसंविभक्तम् ।
मन्त्रक्रमं प्रकरणक्रमयोजनेन
भिन्नक्रमं प्रतिनिधाय चकार भाष्यम् ॥२५॥

वेद में इस चतुर्थ वेद का नाम अथर्वाङ्गिरो वेद है, इसमें कुछ मन्त्र अथर्व दृष्ट और कुछ मन्त्र अङ्गिरोदृष्ट हैं । अङ्गिरोदृष्ट मन्त्र भाग केवल स्त्रियों के उपयोग में आने योग्य हैं, अथर्व दृष्ट मन्त्र भाग में अन्य अनेक व्यावहारिक विषय हैं, जो आपने अपने भाष्य में विस्तृत रूप से निबाए हैं ॥२५॥

सूक्तानि भिन्नविषयाणि विलोक्य तत्र
वेदे लघूनि पुरतः परतो महान्ति ।
सूत्रानुमोदितसमस्तमनुप्रसङ्गा-
देकत्र सम्यगयमर्थवशाच्चकार ॥२६॥

इस चतुर्थ वेद में प्रायः सूत्र-विषय आपस में मिले हुए हैं, आपने उनको विषय क्रम से अलग २ करके मन्त्रों का जो विभाजन किया है वह कौशिक सूत्र के अनुसार है ॥२६॥

वर्णव्यवस्थितिपराणि पुरस्तदग्रे
गोदेववन्धुविषयाणि तदन्तभागे ।
सूक्तानि सम्यगनुगृह्य यथाक्रमेण
भाष्यप्रसङ्गमयमात्मपरः प्रपेदे ॥२७॥

सर्व प्रथम आपने इस वेद में वर्ण क्रम से क्रमशः ब्राह्मण सूक्त, क्षत्रिय सूक्त, और वैश्य सूक्तों पर भाष्य लिखा, उसके अनन्तर गो सूक्त, व्रात्यदना सूक्त, पर विवेचन करते हुये अन्त में देव विषयक सूक्तों का यथाक्रम विवरण लिखा है ॥२७॥

ये येऽभिचारविषया मनुभिः प्रदिष्टा-
स्ते तेऽमुना मुनिवरेणपृथग्विभक्ताः ।
प्रत्यचमस्य निगमस्य महत्त्वमत्र
सन्तेनिरे जयपराजयभावगर्भाः ॥२८॥

इस वेदमें जो मन्त्र अभिचार परक हैं उनको एकत्र कर आपने जयपराजय भाव को लक्ष्य में रखकर अलौकिक प्रयोगों का जो अनुक्रम उपस्थित किया है वह ध्यान से देखने योग्य है ॥२८॥

सेनानिवेशविषयं पृथगप्रमेय-
विद्यो विधाय विधिना तदनुव्रजेन ।
प्राचीनयुद्धकरणप्रचयं जनेषु
विज्ञानविक्रमवलं प्रथयाम्बभूव ॥२९॥

समन्वय करके देव गायकों ने ग्राम कल्पित किये, जो षड्ज ग्राम, मध्यम ग्राम, और गान्धार ग्राम नाम से प्रसिद्ध हैं, इनको पूर्णरूप से देवगण ही निकाल सकते हैं, मनुष्य नहीं, इन सबके एकीकरण से जो तौर्यत्रिक होता है उसका अनुगमन करना अति कठिन है, नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने इन बातों का चित्रण किया है, जिसकी झलक आपके चन्द्रभाष्य में चमकती है ॥२२॥

वीणानिनादरसिको भुवनप्रसिद्धः
श्रीनारदो मुनिवरो महतीमुपेत्य ।
यं सामवेदगदितैर्विविधैरुपाय-
रादिष्टवान्क्रममसौ भुवि तं वितेने ॥२३॥

देवर्षि नारद महती नामक अपनी वीणा को हाथ में लेकर जिन स्वरों का अनुनाद करते थे उनको नारद पद्धति के अनुसार जनता में उपस्थित करके आपने भूलोक में स्वर्लोक का दृश्य उपस्थित किया है ॥२३॥

व्याख्याय सामविधिमेवमसौ मुनीन्द्रः
काण्डं द्वितीयमपि वेदविधौ समाप्य ।
विज्ञानकाण्डविषयं विवरीतुकाम-
स्तुर्यं विवेश निगमं भगवन्निदेशात् ॥२४॥

इस अद्भुत क्रम से सामवेद द्वारा वेद का दूसरा उपासना काण्ड विस्तृत करके आपने अथर्व वेद का भाष्य लिखना आरम्भ किया जिसमें सामान्य रूप में ज्ञान तथा विशेष रूप में विज्ञान वर्णित है ॥२४॥

अस्मिन्विचित्रतरमाङ्गिरसे विभागे
भावं विलोक्य भुवनत्रयमंविभक्तम् ।
मन्त्रक्रमं प्रकरणक्रमयोजनेन
भिन्नक्रमं प्रतिविधाय चकार भाष्यम् ॥२५॥

वेद में इस चतुर्थ वेद का नाम अथर्वाङ्गिरो वेद है, इसमें कुछ मन्त्र अथर्व दृष्ट और कुछ मन्त्र अङ्गिरोदृष्ट हैं । अङ्गिरोदृष्ट मन्त्र भाग केवल स्त्रियों के उपयोग में आने योग्य हैं, अथर्व दृष्ट मन्त्र भाग में अन्य अनेक व्यावहारिक विषय हैं, जो आपने अपने भाष्य में विस्तृत रूप से दिखाए हैं ॥२५॥

सूक्तानि भिन्नविषयाणि विलोक्य तत्र
वेदे लघूनि पुरतः परतो महान्ति ।
सूत्रानुमोदितमशेषमनुप्रसङ्गा-
देकत्र सम्यगयमर्थवशाच्चकार ॥२६॥

इस चतुर्थ वेद में प्रायः सब विषय आपस में मिले हुए हैं, आपने उनको विषय क्रम से अलग २ करके मन्त्रों को जो विभाजन किया है वह कौशिक सूत्र के अनुसार है ॥२६॥

वर्णव्यवस्थितिपराणि पुरस्तदग्रे
गोदेवबन्धुविषयाणि तदन्तभागे ।
सूक्तानि सम्यगनुगृह्य यथाक्रमेण
भाष्यप्रसङ्गमयमात्मपरः प्रपेदे ॥२७॥

सर्व प्रथम आपने इस वेद में वर्ण क्रम से क्रमशः ब्राह्मण सूक्त, क्षत्रिय सूक्त, और वैश्य सूक्तों पर भाष्य लिखा, उसके अनन्तर गो सूक्त, शतौदना सूक्त, पर विवेचन करते हुये अन्त में देव विषयक सूक्तों का यथाक्रम विवरण लिखा है ॥२७॥

ये येऽभिचारविषया मनुभिः प्रदिष्टा-
स्ते तेऽमुना मुनिवरेण पृथग्विभक्ताः ।
प्रत्यक्षमस्य निगमस्य महत्त्वमत्र
सन्तेनिरे जयपराजयभावगर्भाः ॥२८॥

इस वेदमें जो मन्त्र अभिचार परक हैं उनका एकत्र कर आपने जयपराजय भाव को लक्ष्य में रखकर अलौकिक प्रयोगों का जो अनुक्रम उपस्थित किया है वह ध्यान से देखने योग्य है ॥२८॥

सेनानिवेशविषयं पृथगप्रमेय-
विद्यो विधाय विधिना तदनुव्रजेन ।
प्राचीनयुद्धकरणप्रचयं जनेषु
विज्ञानविक्रमबलं प्रथयाम्बभूव ॥२९॥

समन्वय करके देव गायकों ने ग्राम कल्पित किये, जो षड्ज ग्राम, मध्यम ग्राम, और गान्धार ग्राम नाम से प्रसिद्ध हैं, इनको पूर्णरूप से देवगण ही निकाल सकते हैं, मनुष्य नहीं, इन सबके एकीकरण से जो तौर्यत्रिक होता है उसका अनुगमन करना अति कठिन है, नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने इन बातों का चित्रण किया है, जिसकी झलक आपके चन्द्रभाष्य में चमकती है ॥२२॥

वीणानिनादरसिको भुवनप्रसिद्धः
श्रीनारदो मुनिवरो महतीमुपेत्य ।
यं सामवेदगदितैर्विविधैरुपाय-
रादिष्टवान्क्रमसौ भुवि तं वितेने ॥२३॥

देवर्षि नारद महती नामक अपनी वीणा को हाथ में लेकर जिन स्वरों का अनुनाद करते थे उनको नारद पद्धति के अनुसार जनता में उपस्थित करके आपने भूलोक में स्वर्लोक का दृश्य उपस्थित किया है ॥२३॥

व्याख्याय सामविधिमेवमसौ मुनीन्द्रः
काण्डं द्वितीयमपि वेदविधौ समाप्य ।
विज्ञानकाण्डविषयं विवरीतुकाम-
स्तुर्यं विवेश निगमं भगवन्निदेशात् ॥२४॥

इस अद्भुत क्रम से सामवेद द्वारा वेद का दूसरा उपासना काण्ड विस्तृत करके आपने अथर्व वेद का भाष्य लिखना आरम्भ किया जिसमें सामान्य रूप में ज्ञान तथा विशेष रूप में विज्ञान वर्णित है ॥२४॥

अस्मिन्विचित्रतरमाङ्गिरसे विभागे
भावं विलोक्य भुवनत्रयमंविभक्तम् ।
मन्त्रक्रमं प्रकरणक्रमयोजनेन
भिन्नक्रमं प्रतिविधाय चकार भाष्यम् ॥२५॥

वेद में इस चतुर्थ वेद का नाम अथर्वाङ्गिरो वेद है, इसमें कुछ मन्त्र अथर्व दृष्ट और कुछ मन्त्र अङ्गिरोदृष्ट हैं। अङ्गिरोदृष्ट मन्त्र भाग केवल त्रियों के उपयोग में आने योग्य हैं, अथर्व दृष्ट मन्त्र भाग में अन्य अनेक व्यावहारिक विषय हैं, जो आपने अपने भाष्य में विस्तृत रूप से दिखाए हैं ॥२५॥

सूक्तानि भिन्नविषयाणि विलोक्य तत्र
वेदे लघूनि पुरतः परतो महान्ति ।
सूत्रानुमोदितसमस्तमनुप्रसङ्गा-
देकत्र सम्यगयमर्थवशाच्चकार ॥२६॥

इस चतुर्थ वेद में प्रायः सब विषय आपस में मिले-हुए हैं, आपने उनको विषय क्रम से अलग २ करके मन्त्रों को जो विभाजन किया है वह काशिक सूत्र के अनुसार है ॥२६॥

वर्णव्यवस्थितिपराणि पुरस्तदग्रे
गोदेववन्धुविषयाणि तदन्तभागे ।
सूक्तानि सम्यगनुगृह्य यथाक्रमेण
भाष्यप्रसङ्गमयमात्मपरः प्रपेदे ॥२७॥

सर्व प्रथम आपने इस वेद में वर्ण क्रम से क्रमशः ब्राह्मण सूक्त, क्षत्रिय सूक्त, और वैश्य सूक्तों पर भाष्य लिखा, उसके अनन्तर गो सूक्त, शतौदना सूक्त, पर विवेचन करते हुये अन्त में देव विषयक सूक्तों का यथाक्रम विवरण लिखा है ॥२७॥

ये येऽभिचारविषया मनुभिः प्रदिष्टा-
स्ते तेऽमुना मुनिवरेणपृथग्विभक्ताः ।
प्रत्यक्षमस्य निगमस्य महत्त्वमत्र
सन्तेनिरे जयपराजयभावगर्भाः ॥२८॥

इस वेदमें जो मन्त्र अभिचार परक हैं उनको एकत्र कर आपने जयपराजय भाव को लक्ष्य में रखकर अलौकिक प्रयोगों का जो अनुक्रम उपस्थित किया है वह ध्यान से देखने योग्य है ॥२८॥

सेनानिवेशविषयं पृथगप्रमेय-
विद्यो विधाय विधिना तदनुव्रजेन ।
प्राचीनयुद्धकरणप्रचयं जनेषु
विज्ञानविक्रमवलं प्रथयाम्बभूव ॥२९॥

अथर्व वेद में युद्ध का प्रसङ्ग अधिक मिलता है उसके साथ सेना का सङ्गठन करना भी वेद बतलाता है। उसमें आपने जो धनुर्वेद का पुरातन चित्र खींचा है उससे भारती युद्ध कौशल का पूरा-पूरा परिचय मिल जाता है ॥२९॥

आग्नेयपाशुपतवारुणवासवीय-
पार्जन्यवैष्णवसुपर्णमहोरगानि ।
नानाविधास्त्रकरणानि मनुप्रदिष्टा-
न्याविश्चकार निगमेत्र मुनिर्महेच्छः ॥३०॥

आपने इस चन्द्र भाष्य में आग्नेयास्त्र पाशुपतास्त्र, वारुणास्त्र, ऐन्द्रास्त्र, पर्जन्यास्त्र, वैष्णवास्त्र, गारुडास्त्र, नागास्त्र, आदि अनेक दिव्य अस्त्रों का प्रयोग लिखकर आथर्वण मन्त्रों का जो महत्व जनता में उपस्थित किया है वह अन्य भाष्यों में नहीं मिलता है ॥३०॥

कृत्याप्रयोगविषयं विविधप्रयोगै-
रस्मिन्विविच्य निगमे परलोकवृत्तम् ।
श्रीचन्द्रएषभगवानखिलार्थदृश्वा
विश्वाभिरामचरितो विशदीचकार ॥३१॥

अथर्व वेद में बहुत से सूक्त ऐसे भी हैं, जिनमें कृत्या का विस्तृत विवरण है, कृत्या का सम्बन्ध मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, स्थापन आदि के साथ रहता है, इसके अतिरिक्त उसमें कई सहस्र मन्त्र केवल परलोक रहस्य प्रतिपातक भी हैं, जिनसे मृतक श्राद्ध सिद्ध होता है, उन सब मन्त्रों को अलग २ करके आपने जो उन पर सुन्दर विवेचन लिखा है वह विद्वानों के लिये मननीय है ॥३१॥

सम्मोहनानि विविधानि मदोद्धताना-
मुच्चाटनानि सवशीकरणानि तत्र ।
वेदे महाहवविमर्दमसौविलोक्य
हस्तेगतां परमसिद्धिमयं समापत् ॥३२॥

इस वेद में मदोद्धत मनुष्यों का सम्मोहन, शत्रुओं का वशीकरण, तथा अन्य अनेक युद्ध विषयों का वर्गीकरण देखकर आपने जो यवनराज्य उच्छिन्न करने का अनुभव प्राप्त किया वह अनिर्वचनीय है ॥३२॥

आथर्वणैः परसमुत्कदनप्रयोगै-
योगैरपि द्विपदगम्यसमृद्धलोकैः ।
श्रीचन्द्रएष यवनोत्कदनैकबुद्धिः
सर्वं द्विषद्बलमनुन्नतमेव मेने ॥३३॥

इस वेद में आपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के अनेक उपाय तथा सामान्य मनुष्यों पर प्रभाव जमाने वाले अनेक योगविद्या के चमत्कार देखकर, यवन साम्राज्य नष्ट करने का जो आयोजन हृदय में सोचा था उसका परिचय अगाड़ी जाकर मिलेगा ॥३३॥

नानाविधौषधसमुद्धरणे नियुक्ता-
न्मन्त्रानवेद्य निगमे परतस्तदर्थान् ।
लोकोपकारमनसा सदुपायसाध्यं
सर्वं क्रमेण मुनिरेष बभार योगम् ॥३४॥

इस वेद में अनेक अलौकिक रासायनिक प्रयोग भी विद्यमान है, जिनसे जनता का बड़ा उपकार होता है आपने उन सबको मन्त्रों द्वारा एकत्र कर उनका प्रयोग करना भी मन्त्रों से ही निकाल लिया ॥३४॥

अत्यादरेण चरमाश्रममन्त्रभागं
भूयो विविच्य मुनिमार्गनिबोधकानि ।
तत्वानि तत्र निगमे बहुधाऽवलोक्य
सिद्धान्तमन्तिममिमं विषयेऽत्र मेने ॥३५॥

अपने जीवन के अन्त भाग में मनुष्य को किस प्रकार अपना समय, वन में मुनि वृत्ति से व्यतीत करना चाहिये (?) इस विषय में मुनि मार्ग निबोधक-अनेक मन्त्र देखकर आपने अपना ही सिद्धान्त सर्वोत्तम माना है ॥३५॥

वैधात्रवंशविभवैः सनकादिसिद्धै-
रस्मिन्भवे यदुदितं मतमादरेण ।
तन्निर्विकल्पमिति वेदविलोकनेन
लोकोत्तरो मुनिरयं मनसाऽन्वमंस्त ॥३६॥

आनन्त्यमस्य निगमस्य विवेकबुध्या
वित्वा विदामधिपतिर्मुनिरेष तस्य।
साङ्गत्यमध्यवसितुं परतो ददर्श
सूत्राणि मन्त्रविनियोगपराणि हर्षात् ॥४०॥

"अनन्ता वै वेदाः" इस प्रमाण से वेदों का अन्त नहीं है ऐसा समझ कर आपने इस विषय में अधिक न लिखकर उसकी सङ्गति लगाने वाले अन्य वैदिक ग्रन्थों पर भाष्य लिखना आरम्भ किया ॥४०॥

कात्यायनेन मुनिना यजुषां समृध्यै
यत्सूत्रमत्र भुवने गदितं तदेतत्।
कर्माभिवृद्धिकरणं हृदये विचार्य
तस्मिन्नयं मुनिवरो विवृतिं चकार ॥४१॥

मुनिवर कात्यायन प्रणीत श्रौतसूत्र यजुर्वेद की सङ्गति लगाने में सर्वोत्तम साधन है। इसके बिना यज्ञ परम्परा का परिचय प्राप्त नहीं होता है, ऐसा समझ कर आपने इस पर भाष्य लिखा॥ ४१ ॥

सूत्रे व्यवस्थितिमिताः किल ये विभागा
गृह्यादिनामभिरुपस्थितवेदभागाः।
तानेष सर्वनिगमोचितभावगर्भा-
नुद्भावयन्निजमतेन ततान वेदम् ॥४२॥

सूत्रों के विवरण प्रसङ्ग में धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र, श्रौतसूत्र इन तीनों प्रकार के सूत्रों का ग्रहण अनिवार्य ठहरता है। कात्यायन, आपस्तम्ब, पारस्कर, आश्वलायन, आदि मुनियों ने यथाक्रम तीनों सूत्रों का प्रणयन किया है, इनके सहयोग के बिना मन्त्रों का विनियोग तथा उद्देश्य नहीं जाना जा सकता है। इस कारण इन तीनों प्रकार के सूत्रों पर आपने भाष्य लिखते हुये वेद पुरुष को विस्तृत किया॥ ४२ ॥

गोत्रानुवृत्तिपरमत्र यदुक्तमाप-
स्तम्बेन वेदमुनिना बहुभेदभिन्नम्।

सन-सनक-सनन्दन-सनातन-सनत्कुमार आदि सात विधाता के मानस पुत्रों ने जिस उदासीन मार्ग का वैदिक मन्त्रों से निरूपण किया है वही मार्ग निर्विकल्प है यही आपने अपना अन्तिम निर्णय निश्चित किया ॥३६॥

एवं समस्तनिगमागमपारदर्शी
मन्त्रेषु भाष्यमधिकृत्यतदर्धभागे ।
गद्यात्मके शतपथादिपदोपलक्ष्ये
भाष्यं व्यधत्त मुनिमण्डलहृत्प्रतिष्ठम् ॥३७॥

इस प्रकार वेदमर्मज्ञ मनस्वी भगवान् श्री चन्द्र जी ने मंत्र भाग पर अपना भाष्य लिखकर वेद के उत्तरार्द्ध स्वरूप शतपथादि ग्रन्थों पर भी मुनिमत सम्मत भाष्य लिखना आरम्भ किया ॥३७॥

ध्यानप्रकल्पितमनोरमभावगर्भ
व्याख्यानमन्त्रनिगदे कथमादिसर्गे ।
पूर्वैर्महर्षिभिरुदाहृतमित्ययं द्रा-
गस्याभवद्धृदि महामहिमो विचारः ॥३८॥

आदि सृष्टि में जब कोई भी साधन विद्यमान नहीं था उस समय किस प्रकार वेदों के तत्वों का अन्वेषण हुआ यह प्रश्न वेदों की गम्भीरता देखकर आपके हृदय में अनायास ही उठा ॥३८॥

अन्योन्यभागपरतामवलम्ब्य लोके
वेदं व्यवस्थितमवेत्य विचारबुध्या ।
नानोपवेदगदितार्थमयं मनस्वी
वेदानुरूपमिव तेषु विवेद तुष्टः ॥३९॥

गद्य पद्य विभेद से आदि सर्ग में एक ही वेद अवस्थित था उसमें मुनियों ने भाग कल्पना करके दो विभाग बनाये जो आज मन्त्र ब्राह्मण रूप में अवस्थित हैं उसी में उपवेद तथा अङ्ग उपाङ्ग भी कल्पित हुए जो आज अलग २ दीखते हैं इन सबको समझकर अन्त में फिर एक ही वेद रह जाता है यही इस विषय में आपका मत है ॥३९॥

आनन्त्यमस्य निगमस्य विवेकबुद्ध्या
विज्ञा विदामधिपतिर्मुनिरेष तस्य ।
साङ्गत्यमध्यवसितुं परतो ददर्श
सूत्राणि मन्त्रविनियोगपराणि हर्षात् ॥४०॥

"अनन्ता वै वेदाः" इस प्रमाण से वेदों का अन्त नहीं है ऐसा समझ कर आपने इस विषय में अधिक न लिखकर उसकी सङ्गति लगाने वाले अन्य वैदिक ग्रन्थों पर भाष्य लिखना आरम्भ किया ॥४०॥

कात्यायनेन मुनिना यजुषां समृध्यै
यत्सूत्रमत्र भुवने गदितं तदेतत् ।
कर्माभिवृद्धिकरणं हृदये विचार्य
तस्मिन्नथ मुनिवरो विवृतिं चकार ॥४१॥

मुनिवर कात्यायन प्रणीत श्रौतसूत्र यजुर्वेद की सङ्गति लगाने में सर्वोत्तम साधन है । इसके बिना यज्ञ परम्परा का परिचय प्राप्त नहीं होता है, ऐसा समझ कर आपने इस पर भाष्य लिखा ॥ ४१ ॥

सूत्रे व्यवस्थितिमिताः किल ये विभागा
गृह्यादिनामभिरुपस्थितवेदभागाः ।
तानेष सर्वनिगमोचितभावगर्भा-
नुद्भावयन्निजमतेन ततान वेदम् ॥४२॥

सूत्रों के विवरण प्रसङ्ग में धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र, श्रौतसूत्र इन तीनों प्रकार के सूत्रों का ग्रहण अनिवार्य ठहरता है । कात्यायन, आपस्तम्ब, पारस्कर, आश्वलायन आदि मुनियों ने यथाक्रम तीनों सूत्रों का प्रणयन किया है, इनके सहयोग के बिना मन्त्रों का विनियोग तथा उद्देश्य नहीं जाना जा सकता है । इस कारण इन तीनों प्रकार के सूत्रों पर आपने भाष्य लिखते हुये वेद पुरुष को विस्तृत किया ॥ ४२ ॥

गोत्रानुवृत्तिपरमत्र यदुक्तमाप-
स्तम्बेन वेदमुनिना बहुभेदभिन्नम् ।

तन्निर्विकल्पमतिरेष जगत्समृद्धये
सूत्रं निजोचितपथेन ततान तुष्टः ॥४३॥

गोत्र प्रवर विवेचन प्रसङ्ग में आपस्तम्ब ने अनेक भेद मानकर जो विवाहादि वैदिक कार्यों में विधि निषेध रूप से अपना मतामत अभिव्यक्त किया है, आपने इसको जगत् के कल्याण के लिये पर्याप्त समझकर उस पर अधिक विवेचन नहीं किया ॥ ४३ ॥

पारस्करप्रभृतिभिर्निगमागमज्ञै-
रन्यैर्महर्षिभिरुदारविचारनिष्ठैः ।
यद्दर्शितं निगमवर्त्म तदेव सोऽयं
त्रोकत्रयाभ्युदयकारणमन्वमंस्त ॥४४॥

निगम और आगम इन दोनों में प्रवीण पारस्कर आदि आचार्यों ने जो वैदिक मार्ग जनता के समक्ष उपस्थित किया है, वही संसार के अभ्युदय का असाधारण कारण है। ऐसा समझ कर आपने उस पर भी अधिक विवेचन नहीं किया ॥ ४४ ॥

वन्द्याश्वलायनकृतां निगमप्रतिष्ठा-
मेतत्कृतेषु मुनिरेष रसाद्विलोक्य ।
ग्रन्थेषु धर्मपरिखावदुपस्थितेषु
धर्मं जगत्त्रयसमुत्थितयेऽनुमेने ॥४५॥

आश्वलायन प्रणीत श्रौत, गृह्य, धर्म-सूत्रों को धर्म-रक्षक परिखारूप देखकर आपने सनातनधर्म का जो अलौकिक अभ्युदय अपने हृदय में प्रतिष्ठित किया था, वही आजकल हिन्दू-जनता में प्राण-स्वरूप माना जाता है ॥ ४५ ॥

पूर्वं परापरविदो ऋषयो यथाव-
द्धर्मं यमागमगतं पुपुषुः प्रसन्नाः ।
सोयं सनातनपदेन जनैः प्रदिष्टो
धर्मो बिभर्ति भुवनं मुनिरेवमाह ॥४६॥

"धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा" ऐसा समझ कर जिन हमारे पूर्वज ऋषियों ने धर्म-रक्षा में अपने प्राण तक देने के लिये आना-कानी नहीं की, वही सनातन-धर्म आज समस्त विश्व को धारण कर रहा है। यह बात भगवान् श्रीचन्द्र अपने प्रिय शिष्यों के प्रति अन्तिम सर्ग में कहेंगे ॥ ४६ ॥

धर्मव्यवस्थितिपराणि विविच्य सूत्रा-
एयेवं यथायथमयं तदुपान्तगेषु ।
ग्रन्थेषु योगमनसोपनिषत्पदेषु
दिव्यामनुत्तमपदामतनोत्स्ववृत्तिम् ॥४७॥

धर्म व्यवस्थापक सूत्रों पर अपना विवरण लिखकर आपने ईशादि उपनिषदों पर भी उत्तम भाष्य लिखा, जिसका उद्धरण हमने कई स्थानों पर विद्वानों के मुख से सुना ॥ ४७ ॥

चन्द्राभिधामुपनिषद्विवृतिं विधाय
श्रीचन्द्रएष मुनिमएडलमएडनश्रीः ।
छन्दोगवेदमुनिदर्शितदिव्यमार्गे
निष्ठां दधौ निगमदर्शितरम्यमार्गः ॥४८॥

समस्त उपनिषदों पर चन्द्र-भाष्य लिखकर आपने जो प्राचीन वैदिक मुनि प्रदर्शित मोक्ष मार्ग का महत्व दिखाया है, वह व्यवहारों में प्रवृत्त मनुष्यों के लिये समझना कठिन है ॥ ४८ ॥

धर्मार्थकामपरतां भुवने निविष्टां
प्रत्यत्तमेष मुनिराडवलोक्य मुक्तौ ।
चेतो निवेशयितुमादरतो जनानां
वृत्तिं बबन्ध मुनिदर्शितयोगमार्गे ॥४९॥

संसार में प्रायः मनुष्यों की प्रवृत्ति धर्म, अर्थ, काम इन तीन विषयों में ही अधिकतर रहती है, मोक्ष-मार्ग में बहुत कम मनुष्य जाते हैं। इसलिये मोक्ष-मार्ग को सरल करने के लिये आपका यह समस्त प्रयत्न भगवदिच्छा से प्रारम्भ में हुआ ॥ ४९ ॥

तन्निर्विकल्पमतिरेष जगत्समृद्ध्यै
सूत्रं निजोचितपथेन ततान तुष्टः ॥४३॥

गोत्र प्रवर विवेचन प्रसङ्ग में आपस्तम्ब ने अनेक भेद मानकर जो विवाहादि वैदिक कार्यों में विधि निषेध रूप से अपना मतामत अभिव्यक्त किया है, आपने उसको जगत् के कल्याण के लिये पर्याप्त समझकर उस पर अधिक विवेचन नहीं किया ॥ ४३ ॥

पारस्करप्रभृतिभिर्निगमागमज्ञै-
रन्यैर्महर्षिभिरुदारविचारनिष्ठैः ।
यद्दर्शितं निगमवर्त्म तदेव सोऽयं
लोकत्रयाभ्युदयकारणमन्वमंस्त ॥४४॥

निगम और आगम इन दोनों में प्रवीण पारस्कर आदि आचार्यो ने जो वैदिक मार्ग जनता के समक्ष उपस्थित किया है, वही संसार के अभ्युदय का असाधारण कारण है। ऐसा समझ कर आपने उस पर भी अधिक विवेचन नहीं किया ॥ ४४ ॥

वन्द्याश्वलायनकृतां निगमप्रतिष्ठा-
मेतत्कृतेषु मुनिरेष रसाद्विलोक्य ।
ग्रन्थेषु धर्मपरिखावदुपस्थितेषु
धर्मं जगत्त्रयसमुत्थितयेऽनुमेने ॥४५॥

अश्वलायन प्रणीत श्रौत, गृह्य, धर्म-सूत्रों को धर्म-रक्षक परिखारूप देखकर आपने सनातनधर्म का जो अलौकिक अभ्युदय अपने हृदय में प्रतिष्ठित किया था, वही आजकल हिन्दू जनता में प्राण स्वरूप माना जाता है ॥ ४५ ॥

पूर्वं परापरविदो ऋषयो यथाव-
द्धर्मं यमागमगतं पुपुषुः प्रसन्नाः ।
सोऽयं सनातनपदेन जनैः प्रदिष्टो
धर्मो त्रिभुवनं मुनिरेवमाह ॥४६॥

"धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा" ऐसा समझ कर जिन हमारे पूर्वज ऋषियों ने धर्म-रक्षा में अपने प्राण तक देने के लिये आना-कानी नहीं की, वही सनातन-धर्म आज समस्त विश्व को धारण कर रहा है। यह बात भगवान् श्रीचन्द्र अपने प्रिय शिष्यों के प्रति अन्तिम सर्ग में कहेंगे ॥ ४६ ॥

धर्मव्यवस्थितिपराणि विविच्य सूत्रा-
एयेवं यथायथमयं तदुपान्तगेषु ।
ग्रन्थेषु योगमनसोपनिषत्पदेषु
दिव्यामनुत्तमपदामतनोत्स्ववृत्तिम् ॥४७॥

धर्म व्यवस्थापक सूत्रों पर अपना विवरण लिखकर आपने ईशादि उपनिषदों पर भी उत्तम भाष्य लिखा, जिसका उद्धरण हमने कई स्थानों पर विद्वानों के मुख से सुना ॥ ४७ ॥

चन्द्राभिधामुपनिषद्विवृतिं विधाय
श्रीचन्द्रएष मुनिमण्डलमण्डनश्रीः ।
छन्दोगवेदमुनिदर्शितदिव्यमार्गे
निष्ठां दधौ निगमदर्शितरम्यमार्गः ॥४८॥

समस्त उपनिषदों पर चन्द्र-भाष्य लिखकर आपने जो प्राचीन वैदिक मुनि प्रदर्शित मोक्ष मार्ग का महत्व दिखाया है, वह व्यवहारों में प्रवृत्त मनुष्यों के लिये समझना कठिन है ॥ ४८ ॥

धर्मार्थकामपरतां भुवने निविष्टां
प्रत्यक्तमेष मुनिराडवलोक्य मुक्तौ ।
चेतो निवेशयितुमादरतो जनानां
वृत्तिं बबन्ध मुनिदर्शितयोगमार्गे ॥४९॥

संसार में प्रायः मनुष्यों की प्रवृत्ति धर्म, अर्थ, काम इन तीन विषयों में ही अधिकतर रहती है, मोक्ष-मार्ग में बहुत कम मनुष्य जाते हैं। इसलिये मोक्ष-मार्ग को सरल करने के लिये आपका यह समस्त प्रयत्न भगवदिच्छा से भारत में हुआ ॥ ४९ ॥

प्राप्य तामुपनिषद्विवृतिं समाप्तिं
योगीश्वरैरधिकृतानि जगद्धिताय।
न्यायादिदर्शनपदेन भुवि स्थितानि
मोदेन सद्विवरणैरयमन्वयुंक्त ॥५०॥

भाष्य निर्माण प्रसङ्ग में उपनिषदों के अनन्तर आपने न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, सांख्य इन चार दर्शनों पर विवेचन करना प्रारम्भ किया ॥ ५० ॥

योगानुरक्तमनसा मुनिरेष सद्यः
पातञ्जले मुनिजनोचितसूत्रभागे।
योगव्यवस्थितिपरां विवृतिं विधाय
मार्गं मुनिप्रणिहितं रभसात्पुपोष ॥५१॥

पूर्वोक्त चार दर्शनों के विवेचन होने पर आपने पातञ्जल योग-दर्शन पर अपना भाष्य लिखा, जिसमें पदे २ मुनि मत का मण्डन मिलता है ॥ ५१ ॥

वेदान्तदर्शनविनिर्मितमानसेन
व्यासेन यन्निगदितं करुणामयेन।
सर्वं तदेष मुनिराडधिगत्य तत्वं
सत्यं पुपोष भुवि तत्वमसीति भावम् ॥५२॥

योग दर्शन पर विवरण लिखने के अनन्तर आपने व्यास प्रणीत वेदान्त सूत्र पर भाष्य लिखा, जिसमें "तत्वमसि" आदि महावाक्यों का पदे २ समर्थन मिल रहा है ॥ ५२ ॥

ब्रह्माहमस्मि यदिदं किल तत्प्रसूतं
ब्रह्मैव तत्सकलमित्यधिगत्य सद्यः।
प्रज्ञानरूपमचलं भुवनप्रतिष्ठ-
मानन्दमाप भगवानयमात्मनिष्ठः ॥५३॥

मैं ब्रह्म हूं और ब्रह्म से उद्भूत यह सारा प्रपञ्च भी ब्रह्म ही है, ऐसा समझ कर इस अवसर में आपने जो ब्रह्मानन्द प्राप्त किया, उसका प्रभाव आपके भविष्य जीवन पर बहुत पड़ा ॥ ५३ ॥

श्रीचन्द्रनिर्मितसमस्तनिबन्धनाना-
मस्मिन्निवेद्य करणं भरणं बुधानाम् ।
मोदेन वेदमुनिपद्धतिमप्रमेया-
मस्मिन्न्यधत्त नवकाव्यकलासुधांशुः ॥५४॥

भगवान् श्रीचन्द्र जी के द्वारा निर्मित समस्त भाष्यों का परिचय देते हुये हमने इस सर्ग में जो अपना हृद्गत-भाव अभिव्यक्त किया है, वह मुनि-मण्डल के लिये सर्वदा स्मरण रखने योग्य है ॥ ५४ ॥

भावाभिराममनसा तदिदं यथाव-
द्ये चन्द्रभाष्यममलं भुवि तत्वदृष्ट्या ।
द्रक्ष्यन्ति ते निगमतत्वविदः प्रपन्ना-
मात्यन्तिकीं मुदमनन्तफलां महेच्छाः ॥५५॥

तात्त्विक दृष्टि से जो महानुभाव संसार में चन्द्रभाष्य का अवगाहन करेंगे, वे अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव करते हुये अपने जीवन को सफल करेंगे॥५५॥

काश्मीरदेशमहिता जगदम्बिकापि
यद्भाष्यमुत्तमतमं परिवीक्ष्य सद्यः ।
तुष्टा बभूव तदिदं भुवि केन भाष्यं
भाष्यान्तरेण तुलनामुपयातु विज्ञाः ! ॥५६॥

काश्मीर देशस्थित भगवती शारदा भी जिस भाष्य को देखकर अनिर्वचनीय आनन्द को प्राप्त हुई, वह चन्द्रभाष्य अन्य किस भाष्य से उपमित हो सकता है॥५६॥

सर्वं तदीश्वरकृपावशतोऽवलोक्य
नानादिगन्तरगतेन मया विनोदात् ।
विश्वोपकारमनसा विषये तदीये
किञ्चिन्निवेदितमिदं जगतां हिताय ॥५७॥

जगदीश्वर की असीम कृपा से समस्त भारत में कई बार भ्रमण करने का अवसर मिलने पर हमने यह चन्द्रभाष्य स्वयं कई स्थानों में देखा है, जिसका

यहां पर प्रसङ्गवश इतना उल्लेख किया गया है। अवसर मिलने पर उसका प्रकाशन समयान्तर में हो सकेगा॥ ५७॥

धृत्तं तदेतदधुना सकलं यथात्र-
च्छ्रीचन्द्रमौलिविषयेऽत्रसितिं प्रणीय।
सर्गान्तरस्थितधिया भगवन्निदेशा-
त्सर्गः समाप्यत अयं नवमोऽनवद्यः ॥५८॥

ग्रन्थ सम्पादन का प्रसङ्ग इस सर्ग में जितना हमने उपस्थित किया है, उतना पर्याप्त समझ कर अब क्रम उसका समाप्त करते हुये भगवदाज्ञा से अगले सर्गों का उपक्रम करने के लिये इस नवम सर्ग को यहीं समाप्त करते हैं-॥५८॥

इतिश्री सनाढ्यवंशोद्भव कविवर श्रीमदखिलानन्दशर्मप्रणीते
सतिलके जगद्गुरुश्रीचन्द्रदिग्विजये महाकाव्ये
चन्द्रभाष्यसम्पादन नाम नवम सर्गः



श्री १००९ स्वामी (श्री साधुबेला तीर्थ संस्थापक) पूज्यपाद बनखण्डीजी सिद्धेश्वर उदासीन
श्री १०८ स्वामी हरिनारायणदासजी उदासीन
श्री साधुबेला तीर्थ, सक्खर (सिन्धु).



SHRI 1009 SWAMI BANKHANDIJI MAHARAJ UDASIN
SHRI 108 SWAMI HARNARAINDASJI UDASIN
SRI SADHBELLA TIRATH SUKKUR (SIND)

दशमः सर्गः

अथ धीरोदात्तगुणः
श्रीचन्द्रोऽयं विधाय वेदानाम् ।
भाष्यं भारतभूमेः
प्रदक्षिणार्थं निजं मनश्चक्रे ॥१॥

वेद-भाष्य सम्पादन के अनन्तर धीरोदात्त गुण भगवान् श्रीचन्द्र जी ने भारत की परिक्रमा करने का अपने मन में सङ्कल्प किया ॥ १ ॥

तीर्थानां पर्यटनं
पूर्वजदेवर्षिपुण्यभूनमनम् ।
भारतदशानिरीक्षण-
मुद्दिश्यायं तथामनश्चक्रे ॥२॥

तीर्थों का पर्यटन प्राचीन मुनि-स्थानों का निरीक्षण और भारत की वर्त्तमान परिस्थिति का अनुभव इन तीन उद्देश्यों को लक्ष्य में रख कर यह सङ्कल्प किया गया ॥ २ ॥

प्रास्थानिकं पुरस्ता-
त्कर्तुं सर्वे यथोचितं तस्य ।
स्वस्त्ययनं त्रिदिवेशा-
स्तेनुः संकल्पसिद्धयो हर्षम् ॥३॥

साङ्कल्पिक सिद्धि वाले देवगणों ने आपकी यह इच्छा देखकर प्रस्थान के समय में करने योग्य स्वस्त्ययन करते हुये हर्ष प्रकट किया ॥ ३ ॥

देवाङ्गना दिविस्थाः
सिद्धाः सर्वे विमानसञ्चाराः ।
गन्धर्वाअपि दिव्यैः
पुष्पैश्चक्रुः समन्ततो वर्षम् ॥४॥

स्वर्ग में रहने वाली देवाङ्गनाओं ने तथा आकाश-चारी सिद्धों और विमान गामी गन्धर्वों ने आपके प्रस्थान के समय नन्दन वन के पुष्पों की सब ओर से वर्षा की ॥ ४ ॥

माङ्गलिकीमस्य पुरः
कर्त्तुं सिद्धिं पवित्रभावस्य ।
शाकुनिकैरपिसर्वै-
रस्याकस्मादकारि माङ्गल्यम् ॥५॥

भूलोक में होने वाले शकुनों ने भी आपका प्रास्थानिक मङ्गल करने के लिये आपके प्रस्थान के समय कार्य-सिद्धि सूचक समस्त मङ्गल एकत्र करने का पूरा २ आयोजन किया ॥ ५ ॥

दूर्वाङ्कुरदधिचन्दन-
हस्ता वध्व· प्रसन्नभावेन ।
पुरतोऽस्य दिव्यमूर्ते·
प्रस्थानेऽस्मिन्नुपस्थिताः सद्य· ॥६॥

आपके प्रस्थान के समय प्रसन्न चित्त नववधु-जनों ने हाथों में दूर्वाङ्कुर, दधि, चन्दन, अक्षत और पुष्प-मालायें लेकर समक्ष में आना आरम्भ किया ॥ ६ ॥

नूपुरमधुरध्वनिभि-
र्मार्गं काश्चित्समन्ततो व्याप्य ।
क्रोडीकृतघटघटिता
मङ्गलमस्य प्रदर्शयाञ्चक्रुः ॥७॥

नूपुरों की मधुर-ध्वनि से मार्ग को रमणीय बनाती हुई कुलाङ्गनायें गोद में भरा हुआ घड़ा लेकर आपके समक्ष में उपस्थित हुई ॥ ७ ॥

काश्चित्परिचितपुण्याः
पण्यैर्माल्यैः पदे पदे सिद्धिम् ।
कांक्षन्तोऽस्य पुरस्ता-
न्मार्गं माङ्गल्यदर्शना· मापु· ॥८॥

आपके कार्य की सफलता चाहने वाली कुछ स्त्रियां हाथों में पण्यमाल्य लेकर जाने के समय आपका दर्शन प्राप्त करने के लिये मार्ग में उपस्थित हुईं ॥ ८ ॥

आशीर्वचोभिरन्या
वृद्धाः सिद्धार्थमुष्टिभिर्मार्गम् ।
जय-जीवेति वदन्त्यः
सत्यो दूरादवाकिरन्नस्य ॥६॥

जाने के समय कुछ वृद्ध मातायें जय, जीव आदि शब्दों द्वारा आशीर्वाद देती हुई नीराजन के मिष से गौर सर्षप उतार २ कर आपके ऊपर बरसाने लगीं ॥ ९ ॥

लाजाञ्जलिप्रवर्ष-
रन्याः कन्याः कुमारिकाश्चैनम् ।
वातायनप्रविष्टाः
पार्श्वे यान्तं समाकिरन्देवम् ॥१०॥

छोटी २ कन्या और अविवाहित कुमारियां झरोखों से आपको देखकर पास से गुजरते हुयें आपके ऊपर अञ्जलियों में भर २ कर खीलें बरसाने लगीं ॥१०॥

हैयङ्गवीनपिण्डैः
सहोपयातानयं मुनिर्गोपान् ।
दर्शंदर्शमनन्ता-
नन्दाम्भोधौ ममज्ज वात्सल्यात् ॥११॥

हाथों में ताजा नवनीत लेकर मार्ग के सहारे खड़े हुये आभीर जाति के शूद्र गणों को देखकर आपके मन में जो आनन्द हुआ, उसका वर्णन किन शब्दों से किया जा सकता है ॥ ११ ॥

माङ्गल्यमन्त्रपाठ-
प्रसक्तबालद्विजातिसन्दर्शैः ।
सर्वोप्यमङ्गलानां
व्रजो विनाशं ययावसन्तुष्टः ॥१२॥

—अथर्व-वेदीय स्वस्ति-वाचन तथा शान्ति पाठ के मन्त्रों का उच्चारण करते हुये ब्राह्मण कुमारों को समक्ष में देखकर अमङ्गलों का समस्त वृन्द नाराज होकर चला गया ॥ १२ ॥

दुष्टग्रहोपशान्त्यै
प्रयुक्तशान्तिप्रपञ्चसम्भाराः ।
आथर्वणप्रयोगाः
सर्वेऽप्यस्मै तदाशिषं वव्रुः ॥१३॥

—दुष्ट ग्रहों के उपशमन के लिये अनेक प्रकार की शान्ति करने वाले मृत्त आथर्वण प्रयोग प्रस्थान-काल में स्वयं उपस्थित होकर आपके लिये आशीर्वाद देने लगे ॥ १३ ॥

गम्भीरमेघघोष-
प्रवृत्तवाद्ये नवाम्बुभिः पूर्णे ।
सिद्धार्थएष सिद्धः
सहान्यसिद्धैरतिष्ठदव्यग्रः ॥१४॥

गम्भीर-मेघध्वनि निनादित, नवजल धारा वर्षण मञ्जुल, उत्तम समय को पाकर आपका समस्त सहयोगी परिकर चलने के लिये सन्नद्ध होगया ॥ १४ ॥

निर्बाधमेवमाप्य
प्रशान्तबाधं प्रसन्नदिग्व्रातम् ।
मौहूर्तिकानुमोदं
समेत्य तस्मादयं ययौ हृष्टः ॥१५॥

समस्त बाधा रहित प्रसन्न, दिशाओं का बार २ अवलोकन करके ज्योतिर्विदों के बताये हुये शुभ मुहूर्त में आपने काश्मीर से गमन आरम्भ किया ॥ १५ ॥

प्रागेष तं प्रपेदे
महेन्द्रगुप्तं नगेन्द्रमौदीच्यम् ।
यस्मिन्महेन्द्रसूनो-
र्यशांसि सर्वैर्मुदेन गीयन्ते ॥ १६

काश्मीर से चलकर सर्व प्रथम आपने उत्तर भाग में अवस्थित इन्द्र रक्षित इन्द्रकील पर्वत पर जाकर विश्राम किया, जहा पर अर्जुन की महिमा का सब ओर वर्णन हो रहा था ॥ १६ ॥

द्वैपायनोपदेशात्
कुबेरदूतोपदिष्टसन्मार्गम् ।
यं प्राप्य दिव्यशैलं
तपांसि तेपे पुरार्जुनः प्रौढः ॥ १७ ॥

मुनिवर व्यासदेव के आदेश से समक्ष में उपस्थित गुह्यक जिस भूधर का मार्ग देखकर पूर्व समय में अर्जुन को तपश्चर्या करने के लिये लाया था, यह वही प्रशस्त भूधर है ॥ १७ ॥

यस्यैकदेशमाप्य
स्थितं तमोजालमंशुभिर्दीप्तैः ।
शक्नोति नैव हर्तुं
महस्रभानुः कथैव काऽन्येषाम् ॥ १८ ॥

जिस भूधर के एक देश में छिपे हुए अन्धकार को सहस्र किरण भगवान् सूर्य भी अपने प्रखर प्रकाश से हटाने के लिये समर्थ नहीं हो सकता है ॥ १८ ॥

गजचर्मणावनद्धं–
कटौ सुधांशुप्रशस्तमूर्धानम् ।
अनुयाति यो महेशं
हिमांशुकूटैरधस्तमः पुञ्जैः ॥ १९ ॥

कटि प्रदेश में गज चर्म लपेटे हुये तथा शिरोभाग में चन्द्रकला को धारण किये हुये भगवान् शङ्कर को भी जो पर्वत अपने अधोभाग में अन्धकार को तथा अपने शिर पर चन्द्र मण्डल को रखता हुआ बराबरी में रखने का इरादा रखता है ॥ १९ ॥

यस्योन्नतेषु सानु–
ष्ववस्थितासु प्रशस्तसरसीषु ।

कुमुदानि शम्भुशीर्ष-
स्थितो हिमांशुर्विबोधयत्यल्पः ॥ २० ॥

जिसके गगन चुम्बी शिखरों पर विकसित कुमुद मण्डल को महादेव के शिर पर रहने वाला चन्द्रमा भी ऊपर की ओर जाने वाले किरणों से विकसित करता है ॥ २० ॥

यस्मिन्निकुञ्जमाला
ज्वलच्छिखाग्रास्तथा महौषधयः ।
धीरा लसत्समीरा
न नन्दनस्याहरन्ति किं शोभाम् ॥२१॥

जिस भूधर के ऊपर विद्यमान सुन्दर २ लता मण्डप तथा रात्रि में चमकने वाले ओषधि वर्ग और धीरे २ बहने वाले मन्द सुगन्ध शीतल पवन-नन्दन वन की शोभा को भी लज्जित करते हैं ॥ २१ ॥

यस्योपरि स्थितानां
महामुनीनां धनाधिपो नित्यम् ।
सन्दर्शनाय वेगा-
द्विमानमार्गेण याति गहनाग्रम् ॥२२॥

जिसके ऊपर रहने वाले मुनियों को देखने के लिये विमान पर बैठ कर आता हुआ कुबेर आकाश गामी सिद्धों के दृष्टि मार्ग में प्रति-दिन भ्रम उत्पन्न करता है ॥ २२ ॥

यस्मिन्महामहिम्नः
सितांशुगौरो हरस्य संवाहः ।
वप्राभिघातमञ्जु-
शशाङ्कशङ्कां तनोति सिद्धानाम् ॥२३॥

जिसके एक देश में चन्द्र धवल शङ्कर का नन्दीश्वर वप्राभिघात से क्रीडा करता हुआ सिद्धों के मन में प्रति-दिन चन्द्रोदय की शङ्का उत्पन्न करता है ॥२३॥

यो मेघमण्डलानां
निजोच्चकूटेषु धारयन्भारम् ।
मार्गं सहस्रभानो-
र्निरोद्धुमाभाति नूतनो विन्ध्यः ॥२४॥

अपने उन्नत कूटों पर मेघ मण्डल को धारण करता हुआ जो भूधर सूर्य के मार्ग को रोकने के लिये दूसरा विन्ध्य जैसा प्रतीत होता है ॥ २४ ॥

कूटैः सहस्रसंख्यैः
पदैश्च तावद्भिरायतैर्योऽद्रिः ।
नेत्रीकृतार्कसोमो
विभाति धातेव सर्जनाऽऽसक्तः ॥२५॥

एक सहस्र उन्नत कूट और एक सहस्र गण्ड शैल वाला जो भूधर सूर्य और चन्द्रमा को दोनों ओर अपना नेत्र बनाकर नवीन सृष्टि रचने वाला दूसरा विधाता जैसा प्रतीत होता है ॥ २५ ॥

यस्मिन्वनैकगेहा-
जलप्रपातेषु देहमुत्सृज्य ।
स्वर्गस्थिताप्सरोभिः
समं विहर्तुं भवन्ति मन्नद्धाः ॥२६॥

जिसके ऊपर रहने वाले सिद्धगण जल प्रपातों मे अपना शरीर छोड़कर स्वर्ग स्थित देवाङ्गनाओं के साथ विहार करने के लिये हर समय उद्यत रहते है ॥२६॥

यो गौरनीलभाभिः
समं विभक्तं जलं वहन्तीभिः ।
नानानदीभिरारा-
द्विभाति नव्यः प्रयाग उद्भूतः ॥२७॥

गौर तथा नील प्रभा वाले अनेक मणियों की प्रभा से भिन्न २ जल वाली अनेक नदियां उगाता हुआ जो भूधर दूसरा प्रयाग जैसा प्रतीत होता है ॥२७॥

पूर्वापरौ समुद्रौ
निजावसानेन दर्शयन्नन्ते ।
योऽद्रिर्विभाति मातुं
विधेः प्रमह्य प्रतिष्ठितो हस्तः ॥२८॥

दोनों ओर के समुद्रों को अपनी सीमा पर रखता हुआ जो भूधर पृथिवी की नाप तौल करने के लिये विधाता का हाथ जैसा जान पड़ता है ॥ २८ ॥

यो देवसुन्दरीणा-
मकालभूषासमर्थनायैव ।
धत्ते दिनार्द्धभागे
कदापि सिन्दूरसुन्दरं मेघम् ॥२९॥

देवाङ्गनाओं को असमय में अलङ्कृत करने के लिये जो भूधर कभी २ दिन के मध्य भाग में भी सिन्दूरारुण मेघ मण्डल को अपने ऊपर दिखाने लगता है ॥ २९ ॥

भारं भुवो विभर्त्तुं
समर्थमालोक्य यं महासारम् ।
शैलाधिपत्यभावे
नियोजयामास पङ्कजोद्भूतः ॥३०॥

जिस में समस्त पृथिवी भार के धारण करने योग्य बल को देखकर ब्रह्मा ने अपनी ओर से समस्त पर्वतों का राजा मान कर पृथिवी पर बसाया है ॥ ३० ॥

यो मानसीं पितॄणां-
कुलाभिवृद्ध्यै कुलक्रमायाताम् ।
मेनां मुनीशमान्या-
मुवाह कन्यां यशस्विनीमद्रिः ॥३१॥

अपने वंश की वृद्धि के लिये जिसने पितरों के मन से उत्पन्न मुनि जन मान्य मेनका नामक कन्या से अपना परिणय स्वीकार किया ॥ ३१ ॥

यस्यात्मजः समुद्रे
निलीनगात्रः प्रकल्पयाञ्चक्रे ।
वायोः सुतस्य किञ्चि-
न्निवासमिच्छावशेन देवानाम् ॥३२॥

समुद्र में छिपा हुआ मैनाक नामक जिसका पुत्र देवगणों की प्रेरणा से लङ्का को जाते हुये मारुत नन्दन के लिये विश्राम स्थान बना था ॥ ३२ ॥

यो गन्धमादनाख्यं
कुवेरशैलोपकण्ठगं रागात् ।
क्रीडोपयुक्तदेशं
विभर्ति कूटं समस्तसिद्धानाम् ॥३३॥

कैलास की अधित्यका में विद्यमान गन्धमादन पर्वत को जिसने—सिद्धों का क्रीडा-स्थल मानकर अपने एक देश में उसका भी निवास स्वीकार किया है ॥३३॥

नानौषधिप्रकाशै-
र्निशातमिस्रं निवारयन्नुग्रम् ।
यो रात्रिदीपयोगं
गतार्थमेव प्रकल्पयत्यद्रिः ॥३४॥

अनेक विध दिव्यौषधियों के प्रकाश से अन्धकार को हटा कर जिसने रात्रि में दीपक जलाने का कार्य सर्वदा के लिये बन्द कर दिया ॥ ३४ ॥

यस्योन्नतात्प्रसूति
समेत्य कूटादनन्तविस्तारा ।
गङ्गा महर्षिदेशं
विभूषयत्यद्य सेविता सिद्धैः ॥३५॥

जिसके उन्नतम कूट से प्रसृत होकर अनन्त विस्तार वाली मानो स्मरणीया त्रिपथगामिनी भगवती भागीरथी आज भी ब्रह्मर्षि देश को अलंकृत कर रही है ॥३५॥

यत्पादसम्प्रसूता
कलिन्दकन्या जगद्गुरुं कृष्णम् ।
वृन्दावने यथाव-
द्विलोकयामास गोपवेषस्थम् ॥३६॥

जिसके एक गण्ड शैल से उत्पन्न कलिन्दगिरि-नन्दिनी वृन्दावन म विहार करने वाले श्रीकृष्ण को गोपवेश में प्रत्यक्ष में देख चुकी ॥ ३६ ॥

यस्योन्नतप्रदेशे
जनिं समेता विमूर्छितं सद्यः ।
सञ्जीवनी लतैका
चकार सौमित्रिमार्तिभिः शून्यम् ॥३७॥

जिसके एक देश में विद्यमान सञ्जीवनी-लता, युद्ध में मूर्च्छित लक्ष्मण को प्राणदान देकर सर्वदा के लिये कृतकृत्य होगई ॥ ३७ ॥

विद्याधरापदेशै-
र्व्यवस्थितानामनन्तदेवानाम् ।
योऽद्यापि कश्चिदंशं
बिभर्ति गन्धर्वगीतसत्कीर्तिः ॥३८॥

विद्याधरों के रूप में निवास करने वाले देवगणों को अपने एक देश में रख कर जो भूधर आज भी देवालय होने का दावा विना किये नहीं रहता है ॥३८॥

कूर्माचलेति नाम्ना
भुवि प्रतिष्ठं प्रसिद्धसत्खातम् ।
यो मन्दराद्रिमादौ
नियोजयामास मन्थने वार्द्धेः ॥३९॥

जिसने कूर्माचल के नाम से प्रसिद्ध पद्मिखात एक पर्वत को समुद्र-मन्थन के समय अपनी आर से प्रस्तुत करके उसको मन्दराचल के रूप में परिणत कर दिया ॥ ३९ ॥

यस्मादनुप्रसूता
सरित्प्रशस्ता महानदी सरयूः ।
साकेतभूप्रदेशं
विभूषयन्ती समुद्रमभ्येति ॥४०॥

जिसके एक गण्ड शैल से निकली हुई महानदी सरयू आज भी साकेत भूमि को अलंकृत करती हुई समुद्र की ओर जा रही है ॥ ४० ॥

धात्रा पुरादिसृष्टौ
मनुष्यमात्रव्यवस्थितिप्रऽहम् ।
यं वीक्ष्य मानवानां
प्रसूतिरारात्प्रकल्पिता सद्यः ॥४१॥

आदि सृष्टि में ब्रह्माजी-ने जिसमें मानवोचित समस्त आयोजन देखकर इसी पर मनुष्यों का सर्जन आरम्भ किया ॥ ४१ ॥

उत्तानगोप्रसूति-
प्रदत्तगोग्रासकल्पनो योऽद्रिः ।
अद्यापि कामधेनु-
प्रवृत्तसन्तानमादराद्धत्ते ॥४२॥

उत्तान रूप में चरने वाली सौर गौओं-को-प्रतिदिन गो-ग्रास के रूप में तृण देने वाला जो भूधर आज भी कामधेनु वंश का आदर करना मनुष्यों को सिखा रहा है ॥ ४२ ॥

पञ्चापि देववृक्षान्
विभर्ति हर्षेण कल्पवृक्षादीन् ।
यः सर्वदा विनिद्रः
समस्तदेवर्षिमानवैः स्तुत्यः ॥४३॥

देवगण प्रशंसनीय जो भूधर मन्दार आदि पांच देव तरुओं को सर्वदा अपने ऊपर रख कर आज भी अपने को कल्पवृक्ष वाला मानता है ॥ ४३ ॥

चिन्तामणिप्रभावात्
सुवर्णभावं प्रयाति वेगेन ।
यस्मिन्नयोविकारः
समस्तरत्नानुमोदितः सोयम् ॥ ४४ ॥

चिन्तामणि के प्रभाव से जिसमें सुवर्ण बनकर लोहा भी अपने लोहभाव को छोड़ देता है, उस भूधर की तुलना अन्य किस भूधर से की जा सकती है ॥४४॥

सौगन्धिकानि हर्तुं
सुवर्णवर्णानि पङ्कजान्युग्रः ।
भीमो यदेकभृङ्गं
प्रियाप्रसादाय मर्दयामास ॥ ४५ ॥

द्रौपदी को प्रसन्न करने के लिये सुवर्ण वर्ण कमलों की खोज करने के लिए घर से चला हुआ भीमसेन भी जिसके एक भृङ्ग को पाकर सफल मनोरथ हुआ ॥४५॥

यस्यान्तरङ्गभूमौ
विवर्तमानं मनोरमाऽऽभोगम् ।
अच्छोदमस्ति रम्यं
सरः समीचीनपङ्कजाकीर्णम् ॥ ४६ ॥

जिसके मध्य भाग में सुन्दर विस्तार वाला सुवर्ण कमलों से सुशोभित अच्छोद नामक सरोवर सिद्ध साध्य गन्धर्व किन्नर आदि अनेक देवताओं का आज भी क्रीडास्थल बना हुआ है ॥ ४६ ॥

योगप्रदग्धदेहा
सती भवानी पुनः शिवं प्राप्तुम् ।
येनोपदिष्टमार्गा
तपस्यमन्दं निजं मनश्चक्रे ॥ ४७ ॥

योगाग्नि में अपने शरीर को भस्म करके सती पार्वती द्वितीयवार शंकर को प्राप्त करने के लिये जिसकी आज्ञा प्राप्त कर घोर तपश्चर्या में प्रवृत्त हुई ॥ ४७ ॥

यस्याममरप्रसूते-
रुपान्तभागे कुबेरदेवस्य ।
दिव्यालकाभिधाना
विशोभतेद्यापि राजधानी सा ॥ ४८ ॥

देवगणों को जन्म देने वाले जिस भूधर के एक शिखर पर अलका नाम की कुबेर की राजधानी आज भी चमक रही है ॥ ४८ ॥

यन्मध्यभागभूमौ
महोच्चकूटः सुमेरुनामाद्रिः ।
सूर्योदयं विधत्ते
जगत्प्रकाशाय सर्वदा सज्जः ॥ ४९ ॥

जिसके ठीक मध्य भाग में विद्यमान अत्यन्त उन्नत सुमेरु पर्वत जगत को प्रकाश देने के लिये प्रति दिन भगवान् सूर्य का उदय करता है ॥ ४९ ॥

नीलाश्मभूमिभागे
यदीयगर्भे नवांकुरास्वादम् ।
कर्तुं गता रथाश्वा
दिनस्य दैर्घ्यं प्रकल्पयन्तिस्म ॥ ५० ॥

नील मणियों से अलकृत जिस भूधर के शिखर पर हरी हरी घास चरने के लिए रुके हुए सूर्य भगवान् के घोड़े-उत्तरायण में दिन की वृद्धि के कारण बन जाते हैं ॥ ५० ॥

यः सर्वलोकसाक्षी
महोन्नतत्वात्समुद्रमाविश्य ।
पातालमप्यगम्यं
बिभर्ति रम्यैरधोभवत्कूटैः ॥ ५१ ॥

उन्नत होने के कारण समस्त लोक का साक्षी जो भूधर अधोभाग में अपने नीचे शिखरों से पाताल को भी धारण करने की शक्ति रखता है ॥५१ ॥

तस्यास्य दिव्यधाम्नो
हिमालयस्य प्रशान्तभूभागम् ।
सम्प्राप्य हृष्टचित्तो
बभूव सद्यो गतश्रमः शान्तः ॥ ५२ ॥

पूर्वोक्त प्रकार से यहां तक जिस हिमालय पर्वत का वर्णन किया जा चुका है—उस हिमालय के एक सुन्दर प्रदेश को प्राप्तकर—भगवान् श्रीचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए ॥ ५२ ॥

श्रीचन्द्रमौलिमाप्तं
निशम्य सर्वे हिमालयावासाः ।
नानाविधप्रमोदै-
रमन्दमानन्दमादधुर्देशे ॥ ५३ ॥

इस पर्वत प्रदेश में प्राप्त हुए श्रीचन्द्रजी को सुनकर हिमालय में तप करने वाले समस्त मुनिगण अपने मन में अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ ५३ ॥

शैलोप्ययं समन्ता-
त्प्रशस्तभूमिः समागतस्यास्य ।
शीताम्बुभिः सपर्यां
प्रकल्पयामास विद्रुमच्छायः ॥ ५४ ॥

सब ओर से सुन्दर प्रदेशों वाला यह भूधर अपने घर पर आये हुये भगवान् श्रीचन्द्र को देखकर सनातन सदाचार के अनुसार आपको शीतल जल और शीतल वृक्ष-छाया देकर आपके स्वागत में प्रवृत्त हुआ ॥ ५४ ॥

अस्योन्नतप्रदेशे
विरक्तवेशो निकुञ्जगेहेषु ।
श्रीचन्द्रमौलिरेषः
प्रकल्पयामास कर्हिचिद्वासम् ॥ ५५ ॥

इस भूधर के एक उन्नत प्रदेश में—अकृत्रिम निकुञ्ज को देखकर भगवान् श्रीचन्द्र का मन कुछ दिन यहां पर निवास करने के लिये इच्छुक हुआ ॥ ५५ ॥

आधाय तत्र सद्यः
समित्समिद्धं हुताशनं देवः ।
पद्मासनेन योगं
निमीलिताक्षः प्रवर्धयामास ॥ ५६ ॥

आपने यहां पर समित्समिद्ध अग्नि का स्थापन करके पद्मासन में ध्यानावस्थित होकर अपनी योगशक्ति को बढ़ाना आरम्भ किया ॥ ५६ ॥

ध्यानस्थितं प्रशान्तं
निविक्तवेशं विवर्जितद्वेषम् ।
श्रीचन्द्रमौलिमेनं
विलोक्य सर्वे विलक्षितास्तस्थुः ॥ ५७ ॥

ध्यानावस्थित-प्रशान्त-उदासीन वेश विवर्जित द्वेष आपके स्वरूप को देखकर इस प्रान्त में रहने वाले समस्त मुनिजन आश्चर्यान्वित हुए ॥ ५७ ॥

एतावदत्र वृत्तं
निवेदयित्वास्य योगिवर्यस्य ।
सर्गोऽप्ययं-निसर्गा-
दनन्यवृत्तः समाप्यतेऽस्माभिः ॥ ५८ ॥

भगवान् श्रीचन्द्रजी का इतना वृत्तान्त इस सर्ग में लिखकर गणवृत्त में विबद्ध यह सर्ग यहीं पर समाप्त किया जाता है ॥ ५८ ॥

अस्मात्परं-प्रशस्तं यदस्य वृत्तं तदग्रिमे सर्गे ।
सर्वं विलोकनीयं निवेदयित्वेदमास्यतेऽस्माभिः ॥५९॥

इससे आगे का जो अद्भुत वृत्तान्त इस महा काव्य में लिखा गया है उसको देखने के लिये इसके अग्रिम सर्ग देखने चाहिये । इतना ही निवेदन कर अब हम इस सर्ग से अलग होते हैं ॥ ५९ ॥

इतिश्री सनातनधर्मोद्धर कविवर श्रीमद्गिरिजानन्दशर्मविरचिते
मनिजके जगद्गुरुश्रीचन्द्रदिग्विजये महाकाव्ये
हिमाचलप्रस्थानं नाम दशमः सर्गः

एकादशः सर्गः



अथ मुनिजन वन्द्यो योगिवर्यः समेत्य
त्रिदशगणविहारस्थानमेकान्तरम्यम् ।
प्रतिपदमुदिताभियोंगमार्गक्रियाभिः
सकलमपि यथावत्साधयामास कृत्यम् ॥ १ ॥

हिमालय प्राप्ति के अनन्तर भगवान् श्रीचन्द्र एकान्त देश में अपना आसन लगाकर उत्तरोत्तर वृद्धि देने वाले अपने कार्य में प्रवृत्त हुए ॥ १ ॥

भुवि न किमपि साध्यं तादृशं लभ्यते य-
न्मुनिजनविहिताभियोंगमार्गक्रियाभिः ।
प्रतिदिनमुपयाति प्रक्रमान्नैव वृद्धि
सुलभमसुलभंवा सर्वमेवेति सिद्धिम् ॥ २ ॥

संसार में ऐसा कोई भी कार्य नहीं है जो मुनिजनों द्वारा सिद्ध हुई योग क्रियाओं से सिद्ध न हो अर्थात् संसार के सभी कार्य सुलभ हों । अथवा दुर्लभ योगमार्ग से अनायास ही सिद्ध होजाते हैं ॥ २ ॥

कृतविविधविचारा योगिनो योगशक्त्या
निजमनसि निविष्टं कार्यमल्पप्रयत्नैः ।
कृतमिव कलयन्ति प्रायशः सत्यमेत-
त्कृतिषु समवलोक्यं व्यासदेवस्य सूनोः ॥ ३ ॥

योगीजन अपनी योग सिद्धि से मन में सोचे हुए बड़े से बड़े कार्य भी थोड़े से प्रयत्न से कर लेते हैं यह बात व्यास मुनि के पुत्र श्री शुकदेवजी के कर्तव्यों से अनायास ही समझ में आ जाती है ॥ ३ ॥

निजवदनविसृष्टस्पष्टयोगोपदेशै-
रमरपदनिविष्टं तद्वकाग्निप्रदग्धम् ।

नरपतिमिह लोके निर्भयं तन्वतां किं
न किल समुपदिष्टं योगसिद्धेर्महत्त्वम् ॥४॥

तक्षक के डसने से दग्ध हुए परीक्षित को अपने सदुपदेशों से सर्वदा के लिये अमर बनाकर शुकदेवजी ने अपनी योगसिद्धि का महत्त्व क्या जनता में उपस्थित नहीं किया ? ॥ ४ ॥

तृणनिचयनिबद्धे दीप्यमाने कुटीरे
धृतजपबहुसिद्धिर्मानसो धातृसूनुः ।
न किमवददुपायं योगसिध्या दिलीपं
सुतसमुदयमिध्यै कामधेनोः सपर्याम् ॥५॥

तृण से बने हुए कुटीर में रहने वाले वशिष्ठ जी ने अपने पास आए हुए दिलीप के लिये योगदृष्टि से उसका प्राचीन वृत्तान्त देखकर क्या उसको पुत्र प्राप्ति का उपाय स्वरूप नन्दिनी का पूजन नहीं बताया ? ॥ ५ ॥

सकलभरतसेनासत्कृतिव्यस्तभावः ।
शरणनिहितवन्हिः श्रीसमिद्धो मुनीन्द्रः ।
यदकृत विधियोगात्तर्पणं योगसिध्या
तदखिलमपि किन्न श्रीमताऽश्रावि वृत्तम् ॥६॥

अपने आश्रम में अभ्यागत रूप से आए हुए सेना सहित रामानुज भरत का यथोचितसत्कार करने वाले महर्षि भरद्वाज ने जो अपनी योगसिद्धि का परिचय दिया वह क्या आपने नहीं सुना ? ॥ ६ ॥

तिमिशतपरिवारैः सर्वतः सन्निरुद्धं
प्रबलतरतरङ्गाबद्धमुन्निद्रवेलम् ।
सकलमपि समुद्रं यत्पपौ कुम्भजात-
स्तदखिलमपि मन्ये साहसं योगसिद्धेः ॥ ७ ॥

अनेक जल जन्तुओं से व्याप्त उत्तुङ्ग तरङ्गमालालंकृत समुद्र को बात की बात में तीन अञ्जलियों में भर कर पी जाना जिनका एक कौतूहल मात्र था उन कुम्भज अगस्त्य मुनि को क्या आपने अभी तक नहीं जाना ? ॥ ७ ॥

यदिह विविधयत्नैः साध्यते कार्यजातं
जगति जनिमवाप्तैस्तन्मनः कल्पनेन ।
विदधति कृतकृत्या योगिनः सिद्धिमाशाः
प्रथितमिदमनल्पं दृश्यते दिव्यदृग्भिः ॥ ८ ॥

जिस कार्य को साधारण पुरुष अनेक प्रयत्नों द्वारा ससार में सिद्ध करते हैं उसको योगीजन केवल अपने सकल्प-मात्र से सिद्ध करके जनता में उपस्थित कर देते हैं यह बात ज्ञान दृष्टि वाले सज्जनों से प्रायः छिपी नहीं है ॥ ८ ॥

सकलभुवनभङ्गद्योतकं कालकूटं
सपदि विबुधमुख्यैरर्पितं वामदेवः ।
यदपिबदतितुष्टस्तत्समस्तं महत्त्वं
प्रबलतरसमाधिस्पर्द्धियोगैकसिद्धेः ॥९॥

समस्त भुवनों का भग करने वाला कालकूट देवगणों द्वारा अर्पित किये जाने पर वामदेव ने प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करके जो अपने कण्ठदेश का भूषण बनाया, क्या यह योग का चमत्कार नहीं है ? ॥ ९ ॥

इति विविधविचारैर्योगसिद्धिं प्रसिद्धां
मनसि बहु विविच्य प्रस्थितोयं मुनीन्द्रः ।
निज निवसितिकूटादस्य शैलस्य नीचैः
कृतमहितनिवासं प्राप नेपालदेशम् ॥१०॥

इस प्रकार के अनेक विचारों से अपने मन में योगबल का महत्त्व निश्चित कर, हिमालय के इस रम्य प्रदेश से श्रीचन्द्रजी ने नैपाल की ओर गमन किया ॥ १० ॥

कृतविविधसपर्यस्तत्र नेपालभूपः
पदकमलममुष्य प्राप्यपुण्यैकलभ्यम् ।
निजविभवसमृद्धिं वर्धितां पूर्वभूपै-
र्मनसि सफलभोगां भाग्ययोगेन मेने ॥११॥

आपके नैपाल पहुंचने पर उस के महाराजा ने पुण्यलभ्य आपके श्रीचरणों को प्राप्त कर पूर्व पुरुषों द्वारा उपार्जित राज्य-श्री को हर प्रकार से आपके सत्कार में लगाकर लक्ष्मी का सार्थक करना अपने कर्तव्य से बता दिया ॥ ११ ॥

अयमपि मुनिवर्यस्तत्र योगैकवेद्यं
भवविभवविभेदभ्राजि सद्धर्मतत्त्वम् ।
परिचरणपरेषु प्रायशः स्वोपदेशैः
प्रतिदिनमुदितश्रीर्भूपवन्द्यस्ततान ॥१२॥

इधर आपने भी कुछ दिन वहां पर धूनी लगा कर सेवकवर्ग में अपने उपदेशों द्वारा धर्म का तत्व विस्तृत कर योगिजनोचित अपने कर्तव्य का पूर्णरूप से पालन किया ॥ १२ ॥

शिवचरितमलभ्यं भक्तिभावैकवेद्यं
समधिगतविशिष्टज्ञाननिष्ठोऽयमत्र ।
नरपतिमुपयातं शिष्यतां भक्तिनिष्ठं
मधुरतरविधानैर्बोधयामास सर्वम् ॥१३॥

यहां पर नैपाल नरेश की अधिक प्रार्थना करने पर आपने उनको उदासीन मार्ग की दीक्षा देकर शैवागम का समस्त रहस्य-राजा को बताया ॥ १३ ॥

अधिगतपरमार्थः शैवसिद्धान्ततत्त्वं
निजहृदि विनिवेश्य प्रलधात्रीमहेन्द्रः ।
यमतुलमुपलेभे सम्मदं तत्प्रदिष्टं
कथमपि स न शक्यो वक्तुमत्र प्रयत्नैः ॥१४॥

आपसे शैवागम की अलभ्य दीक्षा लेकर इस देशकी प्राचीन राजधानी के एक मात्र अध्यक्ष नेपाल नरेश ने जो आनन्द प्राप्त किया उसका वर्णन कवियों की शक्ति से बाहर है ॥ १४ ॥

कृतमुनिजनकार्यस्तत्र मासाननेका-
न्विविधगतिविनोदैर्यापयन्नादरेण ।

बुधजनगदिताभिः सिद्धिभिः सन्निविष्टं
पशुपतिमुपतस्थे शङ्करं विश्ववन्द्यम् ॥१५॥

नेपाल नरेश की राजधानी में मुनिवृत्ति से कई मास ठहर कर आपने अने सिद्धों के मुख से पशुपति नाथ जी की प्रशंसा सुनकर वहां जाना निश्चि किया ॥ १५ ॥

इममुपगतमस्मिन्भूविभागे मुनीन्द्रं
पशुपतिपरिचर्याबद्धचित्तं यथावत् ।
परिसरकृतवासा योगिनो ज्ञानवृद्धाः
परिचयकृतवाञ्छाः सस्मरुः सम्मदेन ॥१६॥

आपको इस प्रान्त में आया हुआ जानकर, वनों में रहने वाले ज्ञान वृद्ध योगि जन भी आपसे मिलने की इच्छा रखते हुए आपका स्मरण करने लगे ॥ १६ ॥

अयमपि मुनिवर्यस्तत्र नानामुनीनां
परिचरणमवश्यंकर्तुकामो बभूव ।
भवति हृदयमध्ये प्रायशः साम्यभाजः-
सह विविधसपर्याबोधकः कोपि भावः ॥१७॥

मनोयोग से स्मरण करने वाले उन सिद्धों की परिचर्या ही करने को सफल करने के लिए आपने उनकी गहर गुफाओं में जाकर उनसे मिलना अपना परम कर्तव्य समझा, क्योंकि एकसी वृत्ति रखने वाले सज्जनों में प्रायः एक दूसरे की परिचर्या करने का [illegible] उत्पन्न हो ही जाता है ॥ १७ ॥

कृतविविधविहारस्तत्र सीमान्तभाग-
स्थितमथ समधिगन्तुं मेरुभूमिप्रदेशम् ।
घनविहरणवाञ्छाकृष्टचित्तः प्रतस्थे
कनकपुरमगम्यं मानवैरल्पपुण्यैः ॥१८॥

यहाँ कुछ दिन ठहर कर आपने [illegible] की सीमा पर [illegible] देश [illegible] स्वर्णपुर जो मनुष्यों द्वारा अगम्य है [illegible] की ओर जाना प्रारम्भ किया ॥१८॥

वनविहरणमार्गप्राप्तनानामनोज्ञ-
प्रकृतिभिरुपतुष्टस्वान्तभावः स तत्र ।
शरदमुपसमेतां दैवयोगेन योगी
विविधवनविहारैरर्थयुक्तां चकार ॥१६॥

मार्ग में आए हुए अनेक वनों के सौन्दर्य से आकृष्ट होकर आपने भी अनेक वनों के विहारों से शरद्तु का अनुभव किया ॥ १९ ॥

गहनविपिनमध्ये दिव्यतोयं समन्ता-
द्विकसितबहुगन्धामोदि कल्हाररम्यम् ।
सपदि समवलोक्य व्यक्तमार्गं सरोऽयं
मुनिरलमधिवस्तुं तत्र चेतश्चकार ॥२०॥

इसके अनन्तर एक गहर वनमें जाकर आपने कमलों से अलकृत सुन्दर अवतार वालेअच्छोद नामक सरोवर को देखकर वहा रहने का विचार किया ॥२०॥

विविधवनकुरङ्गैः सर्वतो रुद्धमार्गः
फलभरनतनानादिव्यवृक्षावलीभिः ।
इह निवसतु कञ्चित्कालमित्यर्थितोयं
शरदमधिकरम्यां योगमार्गेण भेजे ॥२१॥

चारों ओर से मृगादि जन्तुओं से आकीर्ण तथा फलभार नत वृक्षावली से अत्यन्त मनोहर उस अच्छोद सर को देखकर सिद्ध पुरुषों के अनुरोध से आपने यहां पर कुछ समय व्यतीत किया ॥ २१ ॥

कृतविविधविचारं चेतसानिर्विकारं
मुनिमिममवलोक्य त्यक्तवैरानुबन्धाः ।
वनजनपदजाता जन्तवः प्रेमभावं
...ितुमु ... तस्थुरस्य प्रसन्नाः॥२२॥

"तत्सन्निधौ वैरत्यागः" इस योग दर्शन के सूत्र को लिये आपके पास आए हुए वन्य जन्तुओं ने जो प्रेम का अग्रिम पद्यों में देखिये ॥ २२ ॥

नकुलमनुलिलेह त्यक्तवैरो भुजङ्गः
सुरभितनयमारादालिलिङ्गातिसङ्गः ।
मृगपतिरपि भोग्यं चित्रकं नव्यकंङ्कः
किमिहबहुभिरुक्तैर्नालिलिङ्गात्र कंकः ॥२३॥

आपके आश्रम में सर्प ने स्वाभाविक वैर छोड़कर नकुल का तथा सर्वदा अकेले रहने वाले सिंह ने गोवत्स का तरक्षु ने चित्रकमृग का, कहां तक कहें ? सभी प्राणियों ने अपना २ वैर छोड़कर आपस में एक दूसरे का आलिङ्गन किया ॥२३॥

भवति नहि विकारः कोपि चित्ते जनानां
जगति गतविकारं प्राप्यसत्वं प्रशान्तम् ।
प्रथितमिदमनल्पं दृश्यते योगसिद्धेः-
फलमनुदिनमस्मिन्नेप दृष्टान्तभूमिः ॥२४॥

प्रशान्त योगी को प्राप्त होकर सब प्राणी निर्विकार होजाते हैं यह प्राचीन लोकोक्ति आपकी योग सिद्धि से प्रत्यक्ष होकर दृष्टान्त के रूप से जनता में उपस्थित हुई ॥२४॥

कृतविविधसपर्याः किन्नरा देवभेदाः
सहजमपि विहाय प्राणिविद्वेपभावम् ।
परिचरणसमर्चामत्र कर्तुं सदैव
प्रकटितनिजभावास्तस्थुरस्यैक देशे ॥२५॥

देवयोनि भेद किन्नरगण भी आपके प्रभाव से आपकी अनेक विध सपर्या के लिये आपके एक देश में आकर उपस्थित रहते थे॥ २५॥

कथमधिगतदिव्यादिव्यवृत्तान्तसारः
प्रकटितमुनिमार्गध्वस्तनानान्धकारः ।
वनमिदमतिघोरं प्राप्तवानस्यकस्मा-
दिति निशि वनदेवी तं बभाषे मुनीन्द्रम् ॥२६॥

जिस वन में आप रहते थे उसकी अधिष्ठातृ एक वनदेवी थी जो आपको इस प्रकार के अद्भुत वेष में देखकर आपसे कहने लगी कि आप सर्वज्ञ होते हुए भी अकस्मात् इस घोर वन में किस कारण से उपस्थित हुए ? ॥ २६ ॥

अतिशयकमनीयं त्वादृशं पुत्ररत्नं
जगति विविधपुण्यैराप्य का पुत्रकामा
विपिनमिदमगम्यं प्रेषयामास गेहा-
दिति मनसि वितर्कः कस्य नोदेति पुंसः ॥२७॥

हे महात्मन्! देखने में अत्यन्त सुन्दर आप जैसे पुत्ररत्न को प्राप्त कर, पुत्र चाहने वाली किस माता ने इस घोरतर वन में आपके भेजने का दुःसाहस किया? ॥ २७ ॥

कथय कथमलभ्यं सर्वथा देववन्द्यं
पतिमनुपमनानाभव्यभावैरुपेतम् ।
भुवि वत परिणीता का वधूरद्य धन्या
नयति शरदि दुःखैः कालमेतं विहाय ॥२८॥

अनेक लोकोत्तर भावों से विभूषित, देव वन्दित, मनुष्यों में सर्वथा अलभ्य आप जैसे पतिदेव को पाकर, आज भारत में कौन बड़भागिनी मुग्ध वधू शरद ऋतु के इस सुहावने समय को, घर में अकेली रहकर बिता रही है? ॥ २८ ॥

मुनिवर वद सत्यं प्रापितः कोऽद्य देशो
विरहविधुरनानाबन्धुवर्गैरुपेतः ।
अतिविषमपदस्थामव्यवस्थामवस्थां
ऋतुविरहविषण्णा श्रीरिवारण्यभागः ॥२९॥

हे मुनिवर! आप सत्य-सत्य कहिये आपने वियोगदग्ध बन्धुवर्गों से अत्यन्त दुर्बल, कौनसा भाग्यहीन देश वसन्त विहार से निष्ठुर वन की विषम अवस्था को अपने वियोग से पहुँचाया है? ॥ २९ ॥

बिसमृदुलतलं यत्ते मुने पादपद्मं
वद जनपदभागं कं समुद्दिश्य धन्यम् ।
तददयमितिमत्त्वा मानसे त्वं निधत्से
भुवि वनभवनानाकण्टकालंकृतायाम् ॥३०॥

आपका यह कोमल चरण युगल किस भाग्यशाली देश को अलंकृत करने के लिए अपने घर से निकला है ? और वन्य कण्टकों से पदे-पदे आक्रान्त इस भूतल में आप अदय होकर इसको किस उद्देश्य से धर रहे हैं ? ॥ ३० ॥

उदधितरणकल्पं साहसं ते प्रशस्यं
यदिह धनदगुप्ने निर्जनेऽरण्यभागे ।
तव गमनमवश्यम्भावि कार्याय मन्ये
कथय कथमुपागास्त्वं मुने मार्गमेतम् ॥३१॥

हे मुने ! समुद्रतरणोचित आपका यह साहस धन्यवादार्ह है, जो कि कुबेर-गुप्त इस निर्जन अरण्य में आपको लाया है ? आपका यह आगमन किसी अत्यावश्यक कार्य के लिये प्रतीत होता है ? कहिये !! आप इस मार्ग में किस कारण पधारे हैं ? ॥ ३१ ॥

अयमुदयगिरिस्ते दक्षिणेनाध्वनो यः
प्रथितविशदकूटस्तिष्ठति प्रान्तभागे ।
नयनपथमवश्यं यातएवेति मन्ये
विविधविहगपंक्तिश्रीभिरत्यन्तजुष्टः ॥३२॥

अनेक पक्षिवृन्दों से अलंकृत अत्यन्त उन्नत शिखर वाला यह उदयाचल आपके दक्षिण भाग में अवस्थित है ? यदि आपने अब तक इस पर ध्यान नहीं दिया तो अब दीजिये ? ॥ ३२ ॥

इह निवसति साक्षादुत्तरे भूविभागे
धनद इति न किन्ते वृत्तमेकान्तगुप्तम् ।
श्रवणपथमुपेतं निर्भयं यत्तवेदं
गमनमतुलकीर्तेर्लभ्यते वृद्धसिद्धैः ॥३३॥

इस प्रान्त के उत्तर भाग में अवस्थित यह जो धवलतर पर्वत है यही कैलास है इसकी उपत्यका में अवस्थित यह कुबेर की अलकापुरी है, जिसमें कुबेर रहते हैं । क्या यह वृत्तान्त आपके श्रवण पथ में नहीं आया ? जो आप इस प्रकार निर्भय होकर इस यक्ष रक्षित प्रदेश में भ्रमण कर रहे हैं ॥ ३३ ॥

धवलितरमहोच्चप्रान्तसीमान्तभूमि-
गिरिरियमतुलश्रीशोभमानो विभाति।
यदुदितवनभागे निर्भयोऽद्यापि मन्ये
विहरति हरवाहः पश्य साक्षादुपेतः ॥३४॥

अत्यन्त धवल यह भी उदयाचल का प्रदेश है इसके एक देश में कनकाचल और दूसरे प्रदेश में रजताचल चमक रहा है जिसमें निर्भय होकर शंकर का वाहन यह नन्दी रूप बदल-बदलकर विहार कर रहा है ॥ ३४ ॥

सकलभुवनरक्षादीक्षितः सर्वदेव-
स्थितिकरणसमिद्धश्रीविरामैकभूमिः।
प्रकृतिविकृतिलीलालम्बनस्यादि हेतु-
र्विलसति गिरिजायाः कोऽपि भव्यो भुजङ्गः ॥३५॥

देखिये! इस कैलाश के उच्चतम शिखर पर विश्व के एकमात्र रक्षक तथा समस्त देवगणों को आश्रय देने वाली शक्ति के अद्वितीय अध्यक्ष समस्त प्राकृतिक लीलाओं के एकमात्र अवलम्ब श्री गिरिजापति निवास करते हैं ॥ ३५ ॥

किमिह तमतिभूमिं वासनानां महेशं
भवति तव दिदृक्षा मानसे यामुपेत्य।
अतिविषममयासीर्निर्जनं भूमिभागं
कथय वनविहारे कस्तवोद्देश्यभागः ॥३६॥

क्या आपके हृदय में उनके दर्शनों की प्रबल इच्छा है? जिसकी प्रेरणा से आप इस निर्जन भू-प्रदेश में पधारे हैं? जरा कहिये तो सही? इस वन-विहार में आपका उद्देश्य क्या है? ॥ ३६ ॥

अहमिह निहितास्मि प्रष्टुमेवंविधानां
चरितमतिनिगूढं यक्षराजेन यत्नात्।
वनमिदमधिगत्यानन्ददं भाग्यभाजां
मुनिवर निवसामि त्वादृशां नर्म रोद्धुम् ॥३७॥

हे मुनिवर ! आप जैसे मनुष्यों की देखरेख के लिये ही मुझको यहां पर यक्षराज ने नियुक्त कर दिया है, मैं इस अच्छोद सरके वनमें रहकर आप जैसों का मार्ग रोकने के लिये इस रूप में रहती हूँ ॥ ३७ ॥

कथय तदधुनात्वं कीदृशस्ते विचारः
क्व तव हृदि सदिच्छा गन्तुमस्ति प्रसादात् ।
किमिह वननिवासे कारणं कोसि कस्मा-
द्वनमिदमुपयातः कस्य वंशस्य रत्नम् ॥३८॥

इस लिये अब आप कहिये ! आपका कैसा विचार है ! कहां आप जाना चाहते हैं ? यहां पर रहने का क्या कारण है ? आप कौन हैं ? किस वंश के आप रत्न हैं ? और इस वनमें क्यों पधारे हैं ? ॥ ३८ ॥

इति विविधवितर्कैरागतां तत्र देशे
वनभुवि वनदेवीं दिव्यशक्तिप्रभावाम् ।
विविधगतिविचारः साधु संक्षिप्तशब्दै-
रयमतिमुदमाप्तः सादरं तां बभाषे ॥३९॥

इस प्रकार के अनेक तर्कवितर्कों को हृदय में रखकर उपस्थित हुई इस वनदेवी को वनमें देखकर योगिराज श्रीचन्द्रजी ने उसके समस्त प्रश्नों का उत्तर देना इस प्रकार आरम्भ किया ॥३९ ॥

शृणु सखि वनदेवि त्वामहं वच्मि तत्त्वं
मम हृदि नहि कश्चिद्वासनायाः प्ररोहः ।
सकलभुवनलीलादर्शनेच्छानिदेशा-
दिदमहमुपयातस्ते वनं रम्यभागम् ॥४०॥

हे महाभागे ! वनदेवि !! सुनिये ! मैं अपने हृदय का समस्त अभिप्राय आपके समक्ष रखता हूँ—मेरे हृदय में किसी प्रकार की कोई सांसारिक वासना नहीं है मैं केवल विश्व की लीला देखने के लिये, अपने प्रान्त से चलकर आपके इस अत्यन्त रमणीय प्रान्तमें उपस्थित हुआ हूँ ॥ ४० ॥

न किमपि वनवासे कारणं प्राप्तभागां
शरदमिह यथावन्नीरतीरे निविष्टाम् ।
अनुभवितुमनेकैर्वन्यभोगैः प्रजुष्टां
विधिविहितसपर्यो यापयामि प्रसङ्गात् ॥४१॥

मैरे वनमें रहने का कोई विशेष कारण नहीं है क्रम प्राप्त शरदृतु को यहीं पर बिताने के लिये ही इस अच्छोद सरके तटपर में रह रहा हूं—क्यों कि वनमें रहने योग्य सब साधन यहां मेरे लिये अनायास ही प्राप्त होरहे हैं ॥ ४२ ॥

जगति बहुविधानां भोगभाग्योदयानां
परिणतिभिरयं मे पूर्वकर्मार्जितानाम् ।
जननमरणबन्धो वर्तते नैव कश्चि-
न्मनसि मम निविष्टस्तादृशो लोकभावः ॥४२॥

संसार में मनुष्य अपने पूर्वजन्मार्जित कर्मों के फल से उत्पन्न होता है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई मेरा जन्मका कारण नहीं, और न कोई मेरे मनमें सांसारिक भोग प्राप्त करने का ही भाव है ॥ ४२ ॥

जगदिदमनुदारैर्यवनैः क्रूरभावै-
रधिकतरमुपेतं सद्य उद्धर्तुकामः ।
शमनदमनदक्षस्तादृशानां जनानां
पशुपतिरिह लोके प्राहिणोन्मां यथावत् ॥४३॥

वर्तमान समय में इस धरातलपर यवनों का क्रूरतर अत्याचार प्रवृत्त हुआ है उसको नष्ट करने के लिये ही भगवान् श्री शङ्कर ने मुझे यहां पर अपने प्रतिनिधि रूप से भेजा है ॥ ४३ ॥

तमतिशयितयोगं देववन्द्यं महेशं
शरणमशरणानामेकमेवाद्वितीयम् ।
निजहृदि विनिवेश्य ध्वस्तमायाप्रपञ्चः
प्रतिदिशमनुयामि द्रष्टुमिच्छां तदीयाम् ॥४४॥

उस अद्वितीय अशरण शरण श्री शंकर को अपने हृदय में सर्वदा रखकर संसार के अन्य सब मायिक प्रपञ्च मिटा करके मैं आज कल संसार की वर्तमान परिस्थिति का अवलोकन करता हुआ यहां पर आया हूं ॥ ४४ ॥

स्मरसि यदि सखित्वं मानसे विश्ववन्द्यां
भगवति सपदि द्राग्भारतीं सांऽद्य मर्वम् ।
विदितभुवनवृत्ता रम्यकाश्मीरवासा
कथयितुमलमस्मादुत्तरं सर्ववृत्तम् ॥४५॥

हे वनदेवि ! इस समय यदि आप अपने मन में शारदा पीठ में रहने वाली भगवती शारदा का स्मरण करेंगी तो अन्य सब प्रश्नों का उत्तर देने के लिये वे यहां पर आकर उपस्थित हो जावेंगी ॥४५॥

इति मधुमधुराभिर्वाङ्मयीभिः सुधाभिः
मकलमपि निवेद्य स्वीयवृत्तं यथावत् ।
तदुदितशिवमार्गानुक्रमाद्दक्षिणस्यां–
दिशि किल रजताद्रेरेप देशानपश्यत् ॥४६॥

इस प्रकार मधुमधुर अपनी वाणी से वनदेवी के समक्ष अपना समस्त मनोभाव रखकर भगवान् श्रीचन्द्र उसी के बताए हुए मार्ग की अनुक्रमणिका से कैलाश के दक्षिण भाग में अवस्थित देशों की ओर प्रस्थित हुए ॥४६॥

विविधजनपदान्तःपाति लोकानवद्यं
किमपि विशदवृत्तं सर्वदेशेषु पश्यन् ।
ननविहरणवाञ्छाकृष्टचित्तो मुनीन्द्रः
पथि कमलमनोज्ञं रम्यमच्छोदमैक्षत् ॥४७॥

उधर अनेक जनपदों के भ्रमण प्रसङ्ग में उत्तम-उत्तम भावों को देखते हुए आप अनेक रमणीय वनों का विहार करते-करते फिर उसी सरोवर पर उपस्थित हुए ॥४७॥

जलविहरणलीलामत्तकारण्डवानां
कमलवनविहाराकृष्टभृङ्गावलीनाम् ।

अरुणकिरणवर्णव्यक्तहेमाम्बुजानां
नहि भवति कदाचिद्यत्र विच्छेदलेशः ॥४८॥

जिसमें जल में विहार करने वाले हंस कारण्डव आदि पक्षिगणों का कमलों पर गुञ्जार करने वाले भ्रमर गणों का और सर्वदा एक रूप में अवस्थित सुवर्ण कमलों का कदापि विच्छेद नहीं होता है ॥४८॥

कनककलशसङ्घस्पर्द्धि यस्मिन्मनोज्ञं
कमलमुकुलजातं वीक्ष्य गन्धर्वबालाः ।
अहमहमिकयैव स्नातुमिच्छन्ति कर्णो-
कृतनवबिसपुञ्जाः क्रीडनाय क्रमेण ॥४९॥

कनक कलशों से स्पर्धा रखने वाले कमल मुकुलों को देखकर जिसमें गन्धर्वों की ललनायें कानों पर बिसपुञ्ज रखकर स्नान करने की इच्छा से समय समय पर आया करती हैं ॥४९॥

किमिदमतिमनोज्ञं हेमराजीववृन्दं
पयसि बहु निविष्टं किं मुखाब्ज वधूनाम् ।
इति मनसि वितर्को यत्र नित्यं जनानां
जनयति बहुशङ्कां रूपलावण्यसाम्यात् ॥५०॥

जिसमें कमलों के समूह को देखकर मनुष्यों के मन में स्वभाव ही से भ्रम उत्पन्न होता है कि क्या ये स्नानार्थ प्रविष्ट हुए वधू गणों के मुख हैं ? या जल में सर्वदा रहने वाले वास्तविक कमल हैं ? इस भ्रम का कारण इन दोनों में रूप और लावण्य का एकसा होना है ॥५०॥

निभृतमनुचरीभिः सार्द्धमागत्य गौरी
विविधकमलपुष्पैरर्चयामास यत्र ।
प्रतिदिनमुपनीतैर्नित्यसंसिद्धगन्धै-
स्तटभुवि विनिविष्टा शङ्करं प्राणनाथम् ॥५१॥

जिसमें प्रति दिन अपनी सहेलियों के साथ नित नये कमल पुष्पों से अपने प्राणेश्वर भगवान् शङ्कर का पूजन करने के लिये गौरीजी आया करती हैं ॥५१॥

अयमपि किल तस्याच्छोदनाम्नः प्रशस्तं
सरस उपनिविष्टं शूलपाणेर्विशालम् ।
तटभुवि वहुदिव्यं मन्दिरं वीक्ष्य तुष्टः
सुरनरमुनिवन्द्यं वामदेवं ददर्श ॥५२॥

उस अच्छोद सर के तट पर देव निर्मित श्री शङ्करजी का विशाल मन्दिर देखकर आपके मन में अत्यन्त प्रसन्नता हुई, जिससे मन्दिर में प्रवेश कर आपने सुर, नर, मुनि वन्दित वामदेवजी का दर्शन किया ॥५२॥

पशुपतिपरिचर्याबद्धभावानुपेता-
नुचितवहुविचारानत्र संवीक्ष्य सिद्धान् ।
मुनिरयमधिवस्तुं दैवयोगेन हृष्टः
कमलवनमनोज्ञं गण्डशैलं समागात् ॥५३॥

इस मन्दिर में प्रति दिन शङ्कर की पूजा के लिये आये हुये सिद्ध पुरुषों को देखकर आपके मन में कुछ दिन यहां ठहरने की इच्छा हुई. इसी लिये आपने यहां पर अपने निवास योग्य एक गण्डशैल को देखा ॥ ५३ ॥

तृणनिहितकुटीरस्तत्र हेमन्तशोभां
सपदि समभिवीक्ष्य ध्यानयोगेन कालम् ।
अनुदिनमधिक श्रीर्यापयन्मानसानि
प्रथितमुनिजनानां मोदयामास मानैः ॥५४॥

उस गण्डशैल पर एक तृण की कुटी बनाकर आपने हेमन्तऋतु की अनुपम छटा देखते हुये अपने समय को योग मार्ग में व्यतीत किया ॥ ५४ ॥

अवसदिह मुनीन्द्रः श्वेतकेतुः प्रसिद्धः
प्रथितमहितकर्मा पुण्डरीकः पुरेति ।
निजहृदि स विचार्य श्रीसभालम्बितांघ्रिः
किमपि मनसि दध्यौ भारतीयं महत्त्वम् ॥५५॥

इस भान्तमें पूर्व समय में मुनिवर श्वेतकेतु तथा महामहिम-हिमगौर पुण्डरीक निवास करते थे य० वृत्तान्त सुनकर आपने अपने मन में भारतवर्ष का प्राचीन गौरव अनुभव किया ॥ ५५ ॥

इह विहितनिवासा योगिनः पूर्वकाले
हिमगिरिगतनानागह्वरान्तर्निविष्टाः ।
पवनजलफलौघैर्जीवनं यापयन्तः
सकलमपि यथावद्भूपयामासुरार्याः ॥५६॥

पूर्वकाल में यहां पर निवास करते हुये प्राचीन मुनिगण गुहाओं के गह्वरों में केवल वायु के अवलम्ब से अथवा जल एवं फल पर अपना समस्त जीवन व्यतीत करते थे, यह जानकर आपके मन में बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ५६ ॥

विहितबहुसमाधिध्वस्तमोहान्धकाराः
परमपुरुषमेकं चेतसा संस्मरन्तः ।
यमनियमकथाभिर्वर्धयन्तः स्वयोगं
वनभुवि कृतवासाः किन्न चक्रुः सुकृत्यम् ॥५७॥

समाधियोग के द्वारा नष्ट मोहान्धकार तथा हृदय में एकमात्र ब्रह्म का ध्यान करने वाले, यम नियमादि अष्टाङ्गयोग के द्वारा अपनी योगसिद्धि को बढ़ाते हुये प्राचीन समय के मुनिगण इस वन में निवासकर क्या क्या काम नहीं करते थे ? यह प्रश्न यहाँ पर आपके मन में उठा ॥ ५७ ॥

रविरयमुदितश्रीः सर्वदा योगसिद्धिं
दिशति गतिनियुक्तः शीतरश्मिः समन्तात् ।
हिमगिरिरपि येषामासनानि प्रसन्नः
कथमिह नहि वन्द्या योगिनस्ते महान्तः ॥५८॥

जिनके योगाभ्यास का साक्षी यह सूर्य तथा चन्द्रमा आज भी बार बार समक्ष में आकर गवाही दे रहा है और जिनकी आसन स्थिति का परिचय देने के लिये यह हिमालय आज भी अपने गुहामुखों को अग्रसर कर रहा है उन

महामहिम स्वनाम धन्य-धन्यवादार्ह योगियों को कौन सज्जन श्रद्धाञ्जलि अर्पित न करेगा ? ॥ ५८ ॥

इति बहुविधवाग्भिर्वन्दनीयं चरित्रं
मुनिरयमुपजातस्वान्तशान्तिर्मुनीनाम् ।
मनसि बहु विविच्य स्वाश्रमादप्रमेय
प्रथितविविधवृत्तं हेमकूटं समागात् ॥५९॥

इस प्रकार अनेक भावों से अभिराम-पूर्वज मुनियों का चरित्र मन में बार बार स्मरण कर आप यहां से अति प्रशस्त हेमकूट नामक पर्वत की ओर चले ।५९।

इह बहुविधसिद्धैः सादरं स्तूयमानः
कतिचिदरमहानिप्रार्थनाभिः सुराणाम् ।
विविधवननिकुञ्जे यापयन्नागतानां
हृदयनिहितशङ्काः प्रापयामास नाशम् ॥६०॥

चलते चलते हेमकूट की उपत्यका में पहुंच कर आपने सिद्धों की प्रार्थना पर ध्यान दे कर कुछ दिन यहां पर ठहरने का निश्चय किया और अपने पास आये हुये सज्जनों की अनेक विधि से शङ्काओं का समाधान करना आरम्भ किया ।६०।

अनुदिनकृतसेवस्तत्र गन्धर्वलोकै-
रपरममरलोकं हेमकूटं विहाय ।
क्रमविहरणवाञ्छाकृष्टचित्तस्ततोऽयं
हरसुतकृतभेदं क्रौञ्चमद्रिं जगाम ॥६१॥

यहां पर देवयोनि प्राप्त गन्धर्वों के द्वारा अतिथि सत्कार प्राप्त करे आपने स्वर्गोपम हेमकूट पर्वत का भी अवशिष्ट भ्रमणेच्छा से छोड़कर यहां से क्रौञ्च पर्वत की ओर प्रस्थान किया ॥ ६१ ॥

गिरिवरमिममुच्चैः कूटमभ्येत्य यत्ना-
द्धृतुवदनविदीर्णद्वारगच्छद्विहङ्गम् ।
नयनपथविनिर्यद्धंसमालाप्रदिष्ट
सुरतरुनतशाखं मानस सोऽध्यगच्छत् ॥६२॥

गमनक्रम से यथाक्रम क्रौञ्चाद्रि को प्राप्त कर आप कुमारवाण प्रयोग कल्पित छिद्र से निकल कर मानसरोवर की ओर जाने वाली हसमाला को ही अपना पथप्रदर्शक मानकर उसके पीछे पीछे मानस की ओर चले ॥ ६२ ॥

कृतबहुदिनवासस्तत्र तैस्तैर्विनोदैः
क्षपितसमयभागः कालमासाद्य कश्चित् ।
मुनिभिरुदितमार्गस्तत्सरः पुण्यलभ्यं
सपदि वत विहाय प्राप गङ्गावतारम् ॥६३॥

मानस पहुंच कर मुनिजनों के साथ अनेक प्रकार के विनोदों द्वारा कुछ समय बिताकर आप वहांसे भी मुनि प्रदिष्ट मार्ग का अनुसरण करते करते अन्त में पुण्यपण्य प्राप्य गङ्गावतरण नामक गङ्गोत्तरी स्थान में पहुंचे ॥ ६३ ॥

जननमरणचक्रच्छेदकं पुण्यभाजां
नयनपथमुपेतं भेदकं पातकानाम् ।
मुनिजनबहुसेव्यं प्राप्य गङ्गावतारं
स मुनिरमरवन्द्यस्तत्र विश्राममैच्छत् ॥६४॥

ससार में बार बार आवागमन रूपी चक्रव्यूह के छेदन करने वाले समस्त पाप नाशक मुनिजनों के सेवन करने योग्य इस गङ्गावतरण तीर्थ को प्राप्त कर आपने यहा पर कुछ दिन ठहरने का निश्चय किया और पूजनीय गङ्गाजी के गुणगणों का निम्नलिखित पद्यों से वर्णन आरम्भ किया ॥ ६४ ॥

[गङ्गास्तव]

सुरनरमुनिवन्द्ये देविगङ्गे प्रसीद
त्वमसि नयनमार्गं प्रापिता पूर्वपुण्यैः ।
हरशिरसिनिवासस्ते मदा मानमुच्चै-
र्नयति भुविनिपातस्तारकः कर्मभाजाम् ॥६५॥

आपने कहा कि— हे सुर-नर-मुनि वन्दनीय ! भगवति ! गङ्गे !! आप मुझ पर प्रसन्न हूजिये, मैंने आपको पूर्व जन्म के पुण्यों से प्राप्त किया है, सदाशिव

सरसमधुरपद्यैस्तत्पदादेप योगी
कथमपि यमुनायाः शिश्रिये सम्प्रमातम् ॥७२॥

इस प्रकार अपने हृदय में निविष्ट भाव को मालिनी वृत्तबद्ध पद्यों के द्वारा कहकर श्रीचन्द्र भगवान् उस गङ्गावतरण तीर्थ से चलकर धीरे धीरे कालिन्दगिरि नन्दिनी के पवित्र तट पर पहुचे ॥ ७२ ॥

प्रभवमभवहेतुं भावुकानां भवेस्मि-
न्नगमगमभवाब्धिव्यासविस्तीर्णसेतुम् ।
अनुपदमवलोक्य स्पष्टकालाञ्जनाभं
वनभुवि यमुनायाः सम्मदं प्राप देवः ॥७३॥

इस भव में भावुक जनों के अभव का हेतु भूत तथा अगम भवाब्धि के व्यास का विस्तीर्ण सेतुरूप यह पर्वत आपके लिये अत्यन्त आनन्द का कारण बनगया, अर्थात् इस काले पहाड़ को देखकर आप अति प्रसन्न हुये ॥ ७३ ॥

तटमरमधिगत्य व्यक्तमव्यक्तरूपः
क्षपितभुवनभारः श्रीनिवासावतारः ।
सहजसुभगरूपं प्राप्य यत्साधुरेमे
तमखिलमपि मन्ये ते जलस्य प्रभावम् ॥७४॥

यह कालिन्द पर्वत देखने में अत्यन्त काला है, इसी कारण इसके जल में भी कालिमा प्रतीत होती है, उस कालिमा को देखकर आपके मन में यह भावना हुई कि अव्यक्त भगवान् भी जिसके तट को प्राप्त होकर कृष्ण होगये उस यमुना की कालिमा कहा तक हटायी जा सकती है ? ॥ ७४ ॥

इति विमलविनोदैर्निस्तरङ्गामसङ्गो
वनभुवि यमुनामप्यादरेण प्रशंसन् ।
मुनिरयमनिमेषैर्लोचनैस्तां निपीय
क्रमविहितनिवासः साधु केदारमागात् ॥७५॥

इस प्रकार अनेक विध विनोदों के साथ इस यमुना के निस्तरङ्ग प्रवाह को देखते हुये आप क्रम से चलते चलते केदारनाथ पहुंच गये ॥ ७५ ॥

कृतविहितकृतीनामेष केदारभागः
कथयति फलनन्धं वस्तुनः कर्मयोगैः
कथमपि न लभन्ते येऽत्र केदारनाथं
पुनरपि मनुजास्ते यान्ति के दारभावम् ॥७६॥

वहां पहुंचकर आपने कहा कि यह केदार क्षेत्र वास्तव में पूर्व जन्म के उत्तम कर्मों का प्रत्यक्ष में फल देने वाला है, यहां आकर जो केदारनाथ को नहीं देख पाते हैं वे फिर भी स्वर्ग में जाकर दारभाव को प्राप्त होजाते हैं ॥ ७६ ॥

अनुगतबहुपुण्या. प्राप्य केदारशैलं
जगति वत जना. के दारसङ्गं लभन्ते ।
जननमरणचक्रावर्तिन. कर्मबन्धै-
रिह त्रिविधविधाभिर्यान्ति केदारभावम् ॥७७॥

इस पुण्यक्षेत्र को प्राप्त कर जो पुण्यशाली पुरुष दारसंग का परित्याग करते हैं वे मोक्ष भागी बनते हैं और जो यहां आकर भी दारसङ्ग नहीं छोड़ते वे बार बार कर्म बन्धनों में पड़कर कर्म करने योग्य केदार रूप को प्राप्त करते हैं। यहां पर केदार शब्द [केदार.पर्वत क्षेत्रेभव क्षेत्रालवालयोः] इस विश्वकोष के प्रमाण से अनेकार्थ है ॥ ७७ ॥

इति बहुविधतर्कै. कर्मबन्धं प्रभेत्तुं
कृतनवविधयोगस्तत्र केदारदेशे ।
मुनिरयमधिगन्तुं तत्परं पुण्यदेशं
पथि बहु वदरीशं ध्यानयोगेन दध्यौ ॥७८॥

इस प्रकार अनेक विध तर्कों से कर्म बन्धन का उच्छेद करने वाले योग साधन को नवीन रूप से सिद्ध कर यहां से श्रीचन्द्र जी महाराज बदरीनारायण की ओर प्रस्थित हुये ॥ ७८ ॥

अतपदिह महोग्रं माधव. पूर्वकाले
तप इति निगदन्त. केऽपि सिद्धा. प्रसिद्धा. ।

मुनिमिममधिगत्य प्रत्यहं तच्चरित्रं
कठिनतरसमाधिव्यस्तभावाः शशंसुः ॥७६॥

यहां पहुंचकर आपने अनेक प्रसिद्ध प्रसिद्ध सिद्धों से सुना कि पूर्वकाल में यहीं पर आकर श्रीकृष्ण जी ने जो बड़ा घोर तप किया था उसीके प्रभाव से वे सर्वत्र अजेय होगये ॥ ७९ ॥

नरमथ वनभागे तत्र नारायणं द्रा-
गयमुभयमवेत्य स्पष्टरूपेण सद्यः ।
कठिनतरतपोभिः साध्यमत्यन्त मिष्टं
किमपि फलमवाप्य ध्याननिष्ठोऽत्रतस्थे ॥८०॥

यहां पर आपको प्रत्यक्ष रूप में नर और नारायण दोनों का दर्शन हुआ जिससे आपने यही निश्चय किया कि—तप के प्रभाव से संसार में कोई कार्य बाकी नहीं रहता है, इसलिये तप करना ही मनुष्य के लिये श्रेयस्कर है ॥ ८० ॥

परिचरणपराणामत्र नानामुनीनां
वनविहरणवाञ्छाकृष्टचित्तक्रमाणाम् ।
कथनमुरसिकृत्याधोवताराय तस्मा-
दनुपदमयमागादाशु नन्दप्रयागम् ॥८१॥

इस पुण्यक्षेत्र में आपकी परिचर्या के लिये जो मुनिजन रहते थे वे भी आपके साथ साथ वनों में विचरना चाहते थे, इस लिये उनकी आज्ञा को शिरोधार्य समझकर आप यहां से नन्दप्रयाग पहुंचे ॥ ८१ ॥

कृतविविधविचारस्तत्र नानामुनीन्द्रै-
र्मुनिरयमतिपुण्यप्रापि दिव्यप्रवाहम् ।
भृगुमरमधिगत्य प्रस्थितं जन्हुकन्यां
पथि मुहुरनुपश्यन्नाप कर्णप्रयागम् ॥८२॥

यहां पर कुछ दिन ठहर कर अनेक मुनियों के साथ वार्त्तालाप करके अन्त में आप मार्ग में आये हुये अनेक नदियों के प्रवाहों को गङ्गाजी में गिरता हुआ देखते देखते कर्णप्रयाग पहुंचे ॥ ८२ ॥

अवतरणपथस्थं प्राप्य देवप्रयागं
क्रमगमनपरोयं वीक्ष्य विष्णुप्रयागम् ।
तदनु परमपुण्यं दिव्यरुद्रप्रयागं
नयनफलमनल्पं भाग्ययोगादवाप्त ॥८३॥

यहां से उतरते समय आपने सब से पहिले देवप्रयाग, उसके अनन्तर गमन क्रम से क्रम प्राप्त विष्णु प्रयाग, उसके अनन्तर मार्गावस्थित रुद्रप्रयाग देखा। इन सबकी शोभा देखकर आपने अपना नयनयुगल सर्वांशमें सफल बनाया ॥८३

प्रथममलखनन्दां वीक्ष्य या तुष्टिरस्य
क्रमगमनजुषोभूज्जन्हुकन्यानुगस्य ।
पथि विमलजलानां स्रोतसां प्राप्य सङ्गं
प्रतिपदमधिका सा वृद्धिमेवाललम्बे ॥८४॥

हिमालय से उतरने के समय आपने सर्व प्रथम अलकनन्दा और मन्दाकिनी का सङ्गम देखकर जो आनन्द प्राप्त किया था, वह क्रमशः उत्तरोत्तर अन्य नदियों के सङ्गम देखने से बढ़ता ही गया, जिससे दर्शनजन्य आनन्द चरम सीमा पर पहुच गया ॥ ८४ ॥

उदयगिरितटानामुच्चमारभ्य भागं
बहुविधगिरिमार्गैरेवमभ्यागतस्य ।
हिमगिरिनवकूटप्रस्थितेरस्य मन्ये
तदवसितिमवाप्तं दैवतो दिक्प्रयाणम् ॥८५॥

उदयाचल से लेकर अस्ताचल तक समस्त पर्वतों के उच्च शिखरों को क्रमशः देख कर हिमालय की ओर प्रस्थान करने का जो आपका प्रयोजन था वह समाप्त होगया अर्थात् उत्तर दिग्विजय में आप सफल हुये ॥ ८५ ॥

अनुगतबहुसिद्धः कर्मयोगेष्वविद्धः
कृतिभिरतिसमिद्धः सर्वदिक्षुप्रसिद्धः ।
विविधगुणसमृद्धः कर्मदक्षेषु वृद्धः
स मुनिरधिकमिद्धः सम्बभूवात्रवद्धः ॥८६॥

सिद्ध पुरुषों में आसक्त कर्मयोग में, अनासक्त अपने उचित कर्मों से समिद्ध समस्त दिशाओं में प्रसिद्ध अनेक गुणों से समृद्ध कार्य करने-वालों में वृद्ध यागसाधनों से बद्ध भगवान् श्रीचन्द्र इस उत्तर देश में आकर बद्ध अर्थात् अनुरक्त हुये ॥८६

भवति गुणवशेन प्रायशो दिव्यदेशे
परमपदजुपामप्यादर सत्यमेतत् ।
यदयमुपरतोपि प्राप्तभोगेषु दैवा
द्धिमगिरिमधिगत्य व्यक्तरागो बभूव ॥८७॥

दिव्य देशों में गुणों की अधिकता से प्राय उच्चपद पर पहुँचे हुये महापुरुषों को भी अनुराग हो जाता है, यह बात अधिकाश में सत्य है—क्योंकि समस्त सासारिक भोगों से उपरत श्रीचन्द्र जी दैवयोग से इस उत्तर दिशा में आ कर अनुराग से रञ्जित न रहे ॥८७॥

सकलमपि विभागं भाग्यवानुत्तराया
दिश उचितविधानैरेवमभ्येत्य दिव्यम् ।
अवतरितुमभीप्सु. पुण्यदेशं यथाव-
द्धरकृतिभिरुपेतं श्रीहरद्वारमागात ॥८८॥

भाग्यवान् श्रीचन्द्र जी उत्तर दिशा का समस्त भाग इस यात्रा में देखकर नीचे उतरने की इच्छा से अन्त में भगवान शङ्कर की दिव्य कृतियों से सर्वता व्याप्त पुण्य प्राप्य हरिद्वार में आकर उपस्थित हुए जो कि आपके पूर्वज आचार्यों का प्रधान स्थान है ॥ ८८ ॥

अकृत,मखविभङ्ग यत्र दक्षस्य रुद्र.
सपदि समुपरुद्धश्रीविलासः शिवाया. ।
तदिदमखिलभोगस्पर्द्धि गङ्गोपकण्ठं
पुरवरमधिगत्य स्वस्थचित्तो बभूव॥८९॥

जहां पर दक्षापमान से रुष्ट भगवान् श्री वामदेव जी ने अपने निश्वास से उत्पन्न हुये वीरभद्र आदि अनेक गणों द्वारा उस प्रजापति के मख का नाश की

घात में सहार कर दिया, उस गङ्गातटवर्ति कनखल को प्राप्त कर भगवान् श्रीचन्द्र शान्त चित्त हुये ॥ ८९ ॥

इति मुनिवरजुष्टं पञ्चवर्षीयवृत्तं
ननमयय-युताभिर्मालिनीभिर्विविच्य ।
कृतसमयविभागः काव्यनिर्माणकाले
कविरयमवसानं प्रापयामास सर्गम् ॥९०॥

इस सर्ग में हमने पांच वर्षों में समाप्त हुये उत्तर भ्रमण का समस्त वृत्तान्त मालिनी छन्द में उपस्थित कर दिया है। इससे अगला दिग्विजय क्रम जिनको देखना हो वे सज्जन कृपया इस महाकाव्य के अग्रिम सर्गों का अवलोकन करें। यह सूचना देकर अब हम इस सर्ग को यहीं पर समाप्त करते हैं ॥ ९० ॥

इतिश्री सनाढ्यवंशोद्भव कविवर श्रीमदखिलानन्दशर्मप्रणीते—
सतिलक जगद्गुरुश्रीचन्द्रदिग्विजये महाकाव्ये
उत्तरदिग्विजयो नामैकादश सर्गः



द्वादशः सर्गः

अथ प्रसन्नो भगवाननुग्रहा-
यथोत्तरं दिग्विजये कृतोद्यमः
महेन्द्रनामाङ्कितमुत्तमोत्तम
पुरं विवेश प्रथमानविक्रम ॥ १ ॥

उत्तर दिग्विजय के अनन्तर अन्य तीन दिशाओं के विजय म कृतोद्यम भगवान् श्रीचन्द्र हरिद्वार से प्रस्थित हाकर अबकी यात्रा में सर्वप्रथम इन्द्रप्रस्थ पहुचे ॥१॥

जयोचितं तत्र विधाय सर्वत.
प्रसाधनं साधितसर्वसाधन. ।
क्रमादवाप प्रथितां मधो· पुरीं
कलिन्दकन्यातटभूनिवेशिताम् ॥२॥

यहां पर दिग्विजय सम्बन्धी समस्त आयोजन एकत्र कर आपने यहा से यमुना।तट पर विद्यमान प्रसिद्ध मधुरापुरी के लिए गमन किया ॥ २ ॥

शशाङ्कवस्वाशुगचन्द्रसम्मिते
स वैक्रमाब्दे यमुनातटं गत. ।
यमद्वितीयामतिवाह्य सम्मदा-
जुगाम बृन्दावनमागतक्रमम् ॥ ३ ॥

विक्रम सवत् १५८१ की कार्त्तिक शुक्ल द्वितीया को मथुरा पहुचकर आपने यम द्वितीया को यमुना स्नान किया, जिसका महत्त्व पुराणों में विस्तृत रूप से कहा गया है ॥ ३ ॥

क्रमेण तस्मिन्नपि देवकीसुत-
प्रसादितात्मीयजने गुणोन्नते ।
दिनानि चत्वारि सुखेन यापय-
न्नगात्स गोवर्धनशैलमद्भुतम् ॥ ४ ॥

यहां से चलकर आप क्रम से वृन्दावन पहुँचे, वृन्दावन में चार दिन निवास करके यहां से भी आपने गोवर्धन के लिये गमन किया ॥ ४ ॥

दिने दिने यस्तिलशो विलीयते
मुरारिपादाब्जवियोगदुःखितः ।
स एव गोवर्धनभूधरो मुनिं
विलोक्य हर्षाद्ववृधे यथोत्तरम् ॥ ५ ॥

श्रीकृष्णजी के विरह में जो गोवर्धन प्रतिदिन तिलभर घटता है, वही आपका दर्शन पाकर उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होने लगा ॥ ५ ॥

तथाविधं तं समवेक्ष्य भूधरं
प्रशस्तनानाविधतीर्थमध्यगम् ।
प्रवर्षणं नाम गिरिं तदुत्तरं
मुनिः प्रसन्नोयमगादनुत्तमम् ॥ ६ ॥

अनेक तीर्थों के मध्य में विद्यमान इस गोवर्धन पर्वत को देखकर आप यहांसे प्रवर्षण की ओर चले ॥ ६ ॥

रुषाधिकं यत्र पुरा सुराधिपो
ववर्ष नागेन्द्रकरोपमैर्घनैः ।
प्रवर्षणो नाम सएव भूधरः
पदं दृशोरस्य जगाम दैवतः ॥ ७ ॥

इन्द्र ने रुष्ट होकर जहां पर हाथी के सूंड के बराबर मोटी मोटी धाराओं से वर्षा की थी, वही प्रवर्षण नामक पर्वत दैवयोग से आपके दृष्टिगोचर हुआ ॥ ७ ॥

क्रमेण मासद्वयमत्र यापय-
न्नयं मुनीनामनुमोदनैर्मुनिः ।
प्रसङ्गसम्प्राप्तमुपागतक्रमं
जगाम गोवृन्दविशोभि गोकुलम् ॥ ८ ॥

इस प्रवर्षण गिरि पर आपने मुनियों के अनुमोदन से दो मास का समय व्यतीत किया, तदनन्तर आप यहां से गोसमूह समुल्लसित गोकुल के लिये प्रस्थित हुये जो कि नन्दगोपपुर के नाम से प्रसिद्ध है ॥ ८ ॥

यशोदया लालितमत्र माधवं
विलोक्य साक्षादुपकण्ठमागतम् ।
प्रसन्नचित्तो मकरार्कचंक्रमे
समाप तत्तस्रपुरं पथि स्थितम् ॥ ६ ॥

यहां आकर आपने देखा कि यशोदोत्संगलालित श्री बालमुकुन्द जी आपके पास आकर खेल रहे हैं, भगवान् के इस अलौकिक चमत्कार को देखकर आप बहुत गद्गद हुये और उनको ध्यान में रखकर आप यहां से तत्तग्राम पहुंचे ॥९॥

दिनानि वस्तुं कतिचित्तदन्तिके
कृतस्ववासो मुनिरेष मन्दिरे ।
पुरानुगीतां मुनिभिः प्रसङ्गतः
पपाठ गीतां मधुसूदनोदिताम् ॥१०॥

इस ग्राम में जाकर आप एक मन्दिर में उतरे और कुछ दिन यहां पर ठहर कर भगवद्गीता पर ध्यान पूर्वक एक उत्तम विवेचन लिखा ॥ १० ॥

प्रसङ्गतस्तत्र समागतं पुरः
कमप्यशङ्कं धनराजबालकम् ।
मुनिः प्रमोदेन तदान्वदर्शय-
द्धठोपविष्टं मुदितं मुरद्विषम् ॥११॥

इसी समय आपके पास गीतापाठ का प्रेमी एक धनराज नामक बालक आया जिसपर प्रसन्न होकर आपने उसको श्रीकृष्णजी का प्रत्यक्ष दर्शन करा दिया ।११।

मुरद्विपः सादरमत्र पूजनं
विधाय योगेन तदर्गलं पुरम् ।
निरर्गलं कर्तुमलं प्रपूजितो
जनैः प्रतस्थे भगवानितः परम् ॥१२॥

यहां पर ठहर कर आपने आदर पूर्वक भगवान का पूजन किया और अन्तमें आप यहांसे चलकर आगरा शहर पहुँचे ॥ १२ ॥

विधाय तत्रोपगतान्निरुत्तरा-
न्विवादमध्ये बहुशास्त्रसङ्गते ।
मुनिः प्रसङ्गादयमिष्टकेश्चितं
पुरं विवेशातिनलः पथि स्थितम् ॥१३॥

आपने यहां आकर यमुना तट पर आसन लगाया और एक मास ठहर कर यहां के समस्त पण्डितों को अनेक शास्त्रीय विषयों में निरुत्तर कर यहां से आप इटावा पहुंचे ॥१३॥

निबोध्य तत्रापि मनस्यत्रस्थितं
निगूढतत्त्वं मनुजानुपस्थितान् ।
मुनिर्मनस्वी गमनक्रमादलं
पुरीमयोध्यामविशत्प्रतिष्ठिताम् ॥१४॥

इटावा पहुँचकर आपने यमुना-तट पर एक शिव मन्दिर में विश्राम किया और आगत सज्जनों में, स्वागतपूर्वक धर्मोपदेश देकर यहां से आप धीरे-धीरे अयोध्या पहुँचे ॥१४॥

इहस्त्यविद्वद्गणदर्शितक्रमं
जनिस्थलं वीक्ष्य दशाननद्विपः ।
मुनिर्बभूवातितरां हृदन्तरे
रसद्वयान्तर्गतकल्पनादरः ॥१५॥

यहां आने पर बहुत से विद्वानों ने आपको श्री रामचन्द्र जी का जन्म-स्थान दिखाया जिसको देखकर आप दो विरुद्ध रसों से बने हुए श्लोक की तरह अत्यन्त गम्भीर होगए ॥१५॥

क्व सूर्यवंशप्रभवा महीभुजः
क्व तद्विधानामिह साधुशासनम् ।
क्व दुर्दशेयं यवनासुरैः कृता
विपर्ययः कालवशादयं भुवः ॥१६॥

यवन-ध्वस्त श्रीराम जन्मस्थल को देखकर आपने अपने मन में कहा कि सूर्यवंशीय राजाओं का कहां यह जन्मस्थल ? कहाँ उनका शासन ? और कहां यह वर्तमान दृश्य ? यह सब काल की महिमा है ॥१६॥

विचारयन्नेवमयं महामति-
मदोद्धतानां दमने धृतव्रतः ।
सुरापगासूर्यसुतासमागमं
दिदृक्षुरुत्कः समवाप सङ्गमम् ॥१७॥

यवनों द्वारा इसकी यह दुर्दशा देखकर आपने उनके संहार करने का अपने मन में पूरा-पूरा प्रण किया और अपने पूर्वजों को बार-बार स्मरण कर अन्त में आप यहां से प्रयाग के लिये प्रस्थित हुए ॥१७॥

मुनिप्रशस्ते कतिचिद्दिनान्ययं
शिवे भरद्वाजमुनेर्गुहोदरे ।
समाधियोगेन नयन्नवस्थितं
ददर्श तत्रैव वटं तटस्थितम् ॥१८॥

प्रयाग पहुंच कर आपने मुनि प्रशस्त भरद्वाज मुनि के आश्रम में अपना आसन लगाया और यहां की गुहा में समाधिस्थ होकर अक्षय वट का स्मरण किया ॥१८॥

महालये यद्दलमेकमाश्रितः
सुखेन शेते भगवानधोक्षजः ।
वटः स एवायमिति स्वचेतसा
विचार्य सद्यः स ननाम तत्पदम् ॥१९॥

महाप्रलय में इसी वट के एक पत्र पुट में भगवान् बालमुकुन्द जी अपने अंगूठों का अनूठा रस पीते हैं ऐसा अपने मनमें विचार कर आपने इस तटावस्थित वटके लिये प्रणाम किया ॥ १९ ॥

प्रमज्जतोऽयं नयनाष्टबाणभृ-
मिते क्रमाद्विक्रमभूपवत्सरे ।

शिवावतारः शिवरात्रिसन्निधौ
जगाम काशीं शिवदर्शनेच्छया ॥२०॥

विक्रम संवत् १८८२ में यहां से आप शिवरात्रि के समय वाराणसी पहुंचे जहां पर भगवान शङ्कर सर्वदा निवास करते हैं ॥ २० ॥

समेत्य काशीं मणिकर्णिकातटे
कृताह्निको देवदिदृक्षया द्रुतम् ।
स विश्वनाथं भगवन्तमीक्षितुं
विवेश तन्मन्दिरमुच्चगोपुरम् ॥२१॥

वहां पहुँच कर आपने मणिकर्णिका पर अपना आसन लगाया और नित्य-कर्म से निवृत्त होकर आप श्री विश्वनाथ जी का दर्शन करने के लिये मन्दिर में पहुँचे ॥ २१ ॥

स तत्र नैवेद्यविधानतत्परै-
र्निरुद्धमार्गः शिवमन्दिरोदरे ।
निवृत्य तस्मात्तदुपान्तभूतले
जजाप सोऽहंपदमात्मदर्शनः ॥२२॥

जिस समय आप मन्दिर में पहुंचे वह समय वहां पर भोग लगाने का था जिसमें नियमानुसार अन्दर कोई नहीं जा सकता था इस कारण पुजारियों ने अन्दर जाने से आपको रोका, रोकने पर आप वहां से हटकर कुछ दूर पर एक ऊंचे स्थान में बैठकर (सोहम्) पदका जप करने लगे यह सोहंपद (योसावादित्ये पुरुषः सोसावहम्) इस यजुर्वेद के अन्तिम मन्त्र में आता है इस लिये वैदिक है । (सः अहं सोहम्) यह इसका निर्वचन है । मंत्र में "यः" पद सापेक्ष है इस लिये "सः" पद का आना आवश्यक है । यस्त्वं सोहं यह अद्वैत ही इस सोहंपद का लक्ष्य है ॥ २२ ॥

निवृत्तनानाविधपूजनक्रियैः
प्रविश्य भोगालयमीक्षितो यदा ।
स विश्वनाथो नियमानुवर्तिभि-
स्तदा बभूवात्रविचित्रमद्भुतम् ॥२३॥

आपके बाहिर जाने पर विश्वनाथजी के मन्दिर में जो विचित्र घटना हुई अब आप उसको सुनिये। मन्दिर में भोग लगा कर कुछ समय के बाद पुजारी जब बाहिर से मन्दिर के अन्दर घुसे तो उन्होंने देखा कि मन्दिर में सन्नाटा छाया हुआ है ॥ २३ ॥

न विश्वनाथप्रियता न पूजक-
प्रवर्तिता कापि समर्चनक्रिया।
न तत्र नैवेद्यविधौ निवेदिता
विशिष्टनानाविधभोज्यविस्तृतिः ॥२४॥

श्री विश्वनाथ जी अप्रसन्न हैं पुजारियों की पूजा की सब सामग्री गायब है जिन पात्रों में भोग का सामान रखकर भोग लगाया गया था वह पात्र भी सबके सब गायब हैं ॥ २४ ॥

किमेतदाश्चर्यमिति स्वमानसे
विविच्य भूयः कृतपूजनक्रियैः।
समर्चकैरत्र पुनः प्रकल्पिता
क्षणाल्लयं तत्र ययौ प्रतिक्रिया ॥२५॥

इस अद्भुत आश्चर्य को देखकर पुजारी मनमें बहुत विस्मित हुए और दुबारा भोग लगाकर फिर रोज की तरह मन्दिर से कुछ देर बाहिर ठहर कर जब दुबारा फिर मन्दिर में प्रविष्ट हुए तो घटना पहिली जैसी ही नजर पड़ी। अबकी बार पुजारियों के आश्चर्य का कुछ ठिकाना नहीं रहा ॥ २५ ॥

विलोक्य नष्टां पुनरर्चनक्रिया-
मितस्ततो धावनतत्परा जनाः।
मुनेरुपान्ते सकलामुपस्थितिं
विलोक्य तस्थुर्जडतामुपागताः ॥२६॥

जब मन्दिर में दुबारा धरी हुई भोग सामग्री भी अकस्मात् गायब हो गई तब पुजारियों के होश गुम हो गये वे इधर उधर मन्दिर के चारों ओर भाग निकले बाहिर जाकर देखा तो सब भोग सामग्री आपके समक्ष में धरी हुई पाई इस अघटित घटना को घटी हुई देखकर पुजारी चित्र लिखित जैसे हो गए ॥ २६ ॥

निजापराधप्रतिनष्टबुद्धयो
यदास्य पादे लुलुठुर्नताननाः ।
मुनिस्तदायं भगवन्निवासतः
सुदूरमभ्येत्य ययावदर्शनम् ॥२७॥

आपके महत्त्व को न समझने वाले वे नष्टबुद्धि पुजारी लज्जित होकर जब आपके समक्ष अपने अपराध की क्षमा प्रार्थना के लिये आपके चरणों की ओर झपके तब आप मन्दिर से कुछ दूर चलकर अदृश्य होगए ॥ २७ ॥

विचित्रवृत्तान्तगभीरगुम्फना
सुदुर्घटेयं घटना गृहे गृहे ।
यदा ययौ विस्तृतिमुत्तरोत्तरं
तदा बभूव क्षुभितं नभस्तलम्॥२८॥

यह अद्भुत घटना जैसे २ काशी में फैलती गई तैसे २ मनुष्यों में घर २ आश्चर्यका ठिकाना न रहा सब मनुष्य घबरा करइधर.से उधर दौड़ने लगे ॥२८॥

इहत्यविद्वत्सु महानयं भ्रमः
परस्पराकर्णसजातसम्भ्रमः ।
पुपोष वृद्धिं विविधाद्भुतक्रमो
मुनिर्बभूव प्रथमानविक्रमः ॥२९॥

यहां के पण्डितों में भी यह वृत्तान्त जब कर्णाकर्णि क्रम से फैलगया तब समस्त काशी में आश्चर्य का ठिकाना न रहा और भगवान् श्रीचन्द्र इस घटना से सर्वत्र प्रसिद्ध हो गए ॥ २९ ॥

विनिर्गतोयं गगनाध्वना मुनि-
र्दशाश्वमेघेऽवतरन्नभस्तलात् ।
व्यलोकि सर्वैरधिकं धृतप्रभो
दिनोदये सूर्यइवाधिक प्रभः ॥३०॥

विश्वनाथ के मन्दिर के पास अदृश्य होकर जब आप दशाश्वमेधपर आकाश मार्ग से उतरते हुए दिखाई दिये तब ऐसा प्रतीत होता था कि मानो आकाशमार्ग से दूसरा सूर्य उतर रहा है ॥ ३० ॥

यथोचितं तस्य निशम्य विक्रमं
स सोमनाथो धृतशर्वविग्रहम् ।
मुनिं तमेवास्मरदात्मना भृशं
प्रशस्तकाश्मीरनिरीक्षितप्रभम् ॥३१॥

आपकी इस प्रकार की विचित्र घटना सुनकर पण्डित सोमनाथ त्रिपाठी ने अपने मनमें उसी मुनिवर का स्मरण किया जिसका अद्भुत पराक्रम वे काश्मीर म देख चुके थे ॥ ३१ ॥

समागतः कश्चिदलक्षितस्थितिः
शिवावतारो मुनिरित्यलं वदन् ।
समस्तकाशीस्थबुधव्रजस्तदा
सदण्डपातं प्रणनाम तं मुनिम् ॥३२॥

यहां के विद्वान् आपको अचिन्त्य विक्रम सुनकर दूसरा शिव मानते हुए आपके समक्ष में आकर साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए उपस्थित हुए ॥ ३२ ॥

सहागतं दर्शनविह्वलेक्षणं
स सोमनाथं मुनिरुत्कलोचनः ।
समीक्ष्य कण्ठग्रहपूर्वकं तदा
मुदाऽलिलिङ्ग स्मृतपूर्वकौतुकः ॥३३॥

अन्य विद्वानों के साथ आपके दर्शन के लिये आये हुए पण्डित सोमनाथ त्रिपाठी को देखकर आपने आलिङ्गन पूर्वक उनका स्वागत किया ॥ ३३ ॥

अनामयं कच्चिदिह स्थितस्य ते
वदेति पृष्टो मुनिना स कोविदः ।
भवत्पदाम्भोरुहदर्शनादिति
स्फुटं जगाद प्रणिपत्य तत्पदम् ॥३४॥

पास बैठने के अनन्तर आपने उनसे कुशल पूछ कर जैसे ही अपनी कृपा दृष्टि का उनपर प्रसार किया वैसे ही त्रिपाठी जी ने प्रणाम पूर्वक अपना समस्त वृतान्त कहना आरम्भ किया ॥ ३४ ॥

भवद्दिदृक्षावशतो जिजीविषा
यथा धृताद्यावधि सा फलोन्मुखी ।
भवत्कृपातः समभूदिति ध्रुवं
मयाऽधुना निश्चितमस्ति सर्वशः ॥३५॥

आपने कहा कि आपका दर्शन प्राप्त करने के लिये जिस जीवन की आशा को हमने आजतक स्थिर बनाया था वह आप की कृपा से सफल हुई ॥ ३५ ॥

तदद्य विश्रम्य भवानुपस्थितं
पदाश्रयं मां निजशिष्यपद्धतिम् ।
नयत्ववश्यं निजसन्धयाऽधुना,
सहप्रयाणेऽनुमतिं ददात्वलम् ॥३६॥

इसलिये आज यहां पर ठहर कर आप अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार मुझे अपना शिष्य बनाकर अपने साथ चलने के लिये मुझे अनुमति दें ॥ ३६ ॥

इति ब्रुवन्तं तमवेक्ष्य सादरं
सहप्रयाणाय कृतस्वनिश्चयम् ।
स सोमनाथं पदयोरुपस्थितं
तदाऽन्वमंस्त स्मितमात्रसूचनः ॥३७॥

त्रिपाठी जी की विनयावनत यह प्रार्थना सुनकर आपने अपने साथ रहनेकी तो उनको अनुमति देदी परन्तु शिष्य बनानेकी प्रार्थना पर अभी आपने ध्यान नहीं दिया ॥ ३७ ॥

अनुग्रहं तादृशमस्य दैवतः
स सोमनाथः समवाप्य विस्मितः ।
यमप्रमेयं प्रमदं तदा दधौ
स केन वक्तुं भुवि शक्यतेऽधुना ॥३८॥

इस अवसर में त्रिपाठीजी ने आपसे यह अनुग्रह प्राप्त कर अपने मनमें जिस आनन्द का अनुभव किया उसका इस समय कहने के लिये कौन समर्थ हो सकता है ? ॥ ३८ ॥

गृहेगृहे मङ्गलतूर्यनिःस्वनैः
पदेपदे सत्कविगीतसंस्तवैः ।
समर्चितोयं मुनिनायकस्ततः
प्रसन्नचित्तो गमने रुचिं व्यधात् ॥३९॥

यहां पर घर २ में मङ्गलगान और पद २ में स्वागत स्तव सुनकर आप यहां से अगाड़ी जाने के लिये अपनी इच्छा प्रगट करने लगे ॥ ३९ ॥

विभूतिदानेन समस्तभूतिदः
शिवावतारः स तदा सरित्तटे ।
निजाग्निकुण्डादवचित्य यद्ददौ
तदेव सम्पत्तिकरं तदाऽभवत् ॥४०॥

चलने के समय आप के पास जिस २ कामना को लेकर जो २ सज्जन आये आपने उन सबको अपने अग्निकुण्ड की विभूति देकर सबका मनोरथ पूर्ण कर दिया ॥ ४० ॥

निजानुमत्या समुपस्थितं पदे
स सोमनाथं वहुपण्डितानुगम् ।
सहाऽनुगृह्य प्रतिपूजितो जनै-
रितः प्रतस्थे नगरं गयाभिधम् ॥४१॥

अपनी अनुमति से अनुगृहीत पण्डित सोमनाथ त्रिपाठी को अन्य अनेक पण्डितों के साथ चलने के लिये उद्यत देखकर आप यहां से गया के लिये प्रस्थित हुए ॥ ४१ ॥

इहस्थितं बौद्धमठं विलोकय-
न्नवस्थितं फल्गुनदीतटेऽवटम् ।
यदाऽलुलोके शतशस्तदाऽभव-
न्विमुक्तवन्धाः समतीत्य फल्गुताम् ॥४२॥

गया में पहुंचकर आपने सर्व प्रथम यहां के प्रसिद्ध बौद्ध मठ को देखा जिसमें अनेक बौद्ध भिक्षु रहते थे । इसके अनन्तर फल्गु नदी के तट पर विद्यमान एक

अवट अर्थात् गर्त को देखा जिसमें पड़े हुए बहुत से प्राणी आपके दृष्टिपात से मुक्त होकर अपने २ पदों को प्राप्त हुए ॥ ४२ ॥

शिवावतारस्य तदा विलोकना–
तिपशाचभावं प्रगता गयोदरे ।
विहाय कर्मानुगतां पिशाचतां
न के बभूवुर्मनुजा गतव्यथाः ॥४३॥

गयामें आपके पहुंचने पर पिशाच भाव को प्राप्त हुए बहुत अन्य प्राणी भी आपका दर्शन प्राप्त कर पापों के फल में प्राप्त पिशाच भाव को छोड़ कर सद्यः बन्धन से मुक्त हो गये ॥ ४३ ॥

विहारभूमौ समुपागतं मुनिं
निपीय तत्प्रान्तगता महोदयाः ।
मुनिव्रतं धारयितुं समुद्यता
बभूवुराबालमुदीर्णकीर्त्तयः ॥४४॥

विहार प्रान्त में आपका आगमन सुनकर उस प्रान्त के बहुत से सज्जन आपसे मुनिव्रत लेने के लिये अपनी २ इच्छा प्रकट करने लगे ॥ ४४ ॥

असावपि प्रान्तगतानिहागता–
न्विलोक्य देवेन पदं समागतान् ।
मुनिव्रते सादरमुद्दिधीर्षया
नियोजयामास नियन्त्रितक्रियः ॥४५॥

आपने उनकी प्रार्थना सुनकर उनके उद्धार की कामना से उनको उदासीन मार्ग की दीक्षा देकर भव सम्बन्धी बन्धनों से सर्वदा के लिये उनको मुक्त किया ॥ ४५ ॥

समाश्रितानां निजदीक्षयामुनि–
र्विधाय सर्वोन्नतिमुत्तरस्थितम् ।
विहारभूमण्डलमण्डनं जवा–
ज्जगाम तत्पाटलिपुत्रमुन्नतम् ॥४६॥

शरण में आए हुये समस्त मनुष्यों को अपनी दीक्षा से उन्नति की ओर लगा कर आप यहां से उत्तर भाग में वर्तमान पाटलिपुत्र पहुँचे ॥ ४६ ॥

अवाप्य गङ्गातटभूमिनिर्मितं
पुरं मुनिर्देशदिदृक्षया ततः ।
द्रुतं समुत्तीर्य सुरापगामगा-
दनुत्तमं शोणपुरं पुरः स्थितम् ॥४७॥

गङ्गा तट पर अवस्थित इस पाटलिपुत्र में पहुच कर आप देश दर्शन की इच्छा से गंगा के उस पार वर्तमान शोणपुर के लिये चले गये ॥ ४७ ॥

अवेत्य तत्राद्भुतमेकविग्रहं
हरं हरिं भिन्नगुणाश्रयं समम् ।
व्यवस्थितं भेदमपास्य कल्पितं
परामयं निर्वृतिमाप हर्षितः ॥४८॥

वहां पहुच कर आपने भिन्न भिन्न गुणाश्रय हर और हरि को एक विग्रह में अवस्थित देख कर वर्तमान समय में विद्यमान कल्पित भेद भाव को सर्वथा निर्मूल समझ कर अपने मन में एक विचित्र आनन्द का अनुभव किया ॥ ४८ ॥

प्रणम्य तत्रायमलं महेश्वरं
रमेश्वरं विग्रहमेकमाश्रितम् ।
निवृत्य तस्मात्पुनराप सत्वरं
तदेव शौद्धोदनिजन्मनः पदम् ॥४९॥

अन्त में आपने इस हरिहरक्षेत्र में रमेश्वर और महेश्वर को एक विग्रह में देख कर प्रणाम किया और वहां से गङ्गा जी को उतर कर फिर पाटलिपुत्र में प्रवेश किया ॥ ४९ ॥

बलेन तत्रायमुदस्य वादिनां
मतं विवादे बलवत्पुरोगतम् ।
जयाङ्कमुच्चं निचखान मन्दिरे
महध्वजं बौद्धविमर्दनक्षमम् ॥५०॥

यहां पर आकर आपने शास्त्रार्थ में वादियों द्वारा उपस्थापित बौद्ध मत का तिलशः खण्डन करके विजय सूचक अपना बृहद्ध्वज गाड़ दिया जो कि आज भी बहुत दूर से दीख रहा है ॥ ५० ॥

विजित्य तत्पाटलिपुत्रसङ्गतं
क्रमेण कर्मन्दिमहद्बलं ततः ।
समाप तद्राजगृहं प्रतिष्ठितं
विहारभूमेः कटकं यदुच्यते ॥५१॥

पाटलिपुत्र में एकत्र हुए कर्मन्दियों के बल को हटाकर आपने यहां से राजगृह के लिये प्रस्थान किया जो कि विहार प्रान्त का दुर्ग समझा जाता है। [कर्मन्दकृशाश्वादिनिरिति पाणिनिः] ॥ ५१ ॥

गिरिद्वयान्तर्गतगह्वराङ्कितं
सतप्तकुण्डं सवनं सनिर्झरम् ।
विलोक्य तद्राजगृहं महोन्नतं
निनाय तत्रैव दिनानि कानिचित् ॥५२॥

दो पर्वतों के बीच में अनेक गुहाओं द्वारा सब ओर से घिरे हुये तथा तप्तकुण्ड, वन और निर्झरों से अति सुन्दर इस राजगृह को देख कर आपने यहां कुछ दिन ठहरने का निश्चय किया ॥ ५२ ॥

इदं जरासन्धविनिर्मिताङ्गनं
विहारभूमेः प्रथितं गुहागृहम् ।
विलोक्य बौद्धैरभितः समावृतं
विवादयुद्धे मतिमादराददात् ॥५३॥

प्राचीन समय में यहां पर जरासन्ध का एक बड़ा भारी दुर्ग था जिसमें गुफाओं के रूप में अनेक भूगर्भगृह बने हुये थे बौद्धों ने इस दुर्ग के आस पास बहुत से मठ नियत कर दिये इसी लिये आपने भी यहां पर ठहरने का सङ्कल्प किया ॥ ५३ ॥

इहत्यकापालिकसङ्घमागतं
विजित्य वादे पुरतः प्रतिष्ठितम् ।

स शाक्तसङ्घं क्षपणैः प्रणोदितं
विमर्दयामास बलेन सद्बलः ॥५४॥

सबसे प्रथम यहां पर आपसे शास्त्रार्थ करने के लिये कापालिक आये इनके अनन्तर क्षपणकों के भेजे हुये शाक्तगण आये आपने शास्त्रार्थ में इन दोनों को परास्त कर विजय प्राप्त किया ॥ ५४ ॥

विनिर्गतानस्य भयेन वादिनो
निशम्य पश्चाच्छ्रमणास्तथागताः ।
प्रदुद्रुवुः केचन कान्दिशीकता-
मुपेत्य सिंहाद्धरिणा इवागताः ॥५५॥

वादी जनों को आपके भय से भागा हुआ सुनकर यहा के तथागत और श्रमण इस प्रकार मैदान छोड़ कर भागे जैसे सिंह से भीत होकर हरिण गण भागते हों ॥ ५५ ॥

इति क्रमेणात्र समागतानलं
शिलालिनो नास्तिकतामुपागतान् ।
विमर्दयन्नुग्रबलेन जित्वरः
स गृध्रकूटं नगमाप गत्वरः ॥५६॥

इस प्रकार क्रम क्रम से आये हुये नास्तिक शिलालियों को उग्र बल से विवाद युद्ध में परास्त कर आप यहां से गृध्रकूट पर्वत को चले ॥ ५६ ॥

इहापि शाक्तैर्यवनैरनारतं
प्रवञ्चितान्भैरवभूतजीवनान् ।
निजोपदेशैर्निगमानुमोदका-
न्विधाय पश्चादगमद्वनाद्वनम् ॥५७॥

यहां पर भी शाक्त और यवनों द्वारा वञ्चित किये हुये भैरव एव भूतों के उपासक किरात कोल तथा भिल्लों को अपने सदुपदेशों द्वारा अच्छे मार्ग में लगाकर आप यहां से अनेक गव्हर वनों में प्रविष्ट हुये ॥ ५७ ॥

परिभ्रमन्नेवमितस्ततो वनं
स भिल्लपल्लीः समतीत्य मार्गगाः ।
शिवावतारः शिवतातिरादरा-
द्दशाननेनाहृतमाप शङ्करम् ॥५८॥

गृध्रकूट के परिसर में वर्तमान वनगत अनेक भिल्ल पल्लियों को देखते हुये आप अन्त में रावण के द्वारा लाये हुये एक शिवजी के मन्दिर में पहुचे ॥ ५८ ॥

शिवोयमस्मिन्विजने महावने
दशाननेनाप्रतिमेन दैवतः ।
न्यिताचकस्मान्निहितः क्षणादलं
विवेश पातालतलं महाविलम् ॥५९॥

ये शिवजी महाबली रावण ने किसी कारण वश कैलाश से लाकर यहां पर वन में लाकर रख दिये थे जो पाताल तक प्रविष्ट होकर दुबारा रावण से भी नहीं उठाये जा सके ॥ ५९ ॥

ततः प्रभृत्यत्र शिवार्चने रतैः
स वैद्यनाथाभिधया समर्चितः ।
ददाति भुक्तिं कृपया तदुत्तरं
विमुक्तिमप्यादरतः प्रतिष्ठितः ॥६०॥

तब से अब तक आप इसी वन में विराजमान हैं शिव पूजक आपको वैद्यनाथ के नाम से अर्चित कर आपकी दी हुई भुक्ति और मुक्ति दोनों का उपभोग कर रहे हैं ॥ ६० ॥

समर्चयन्नत्र मुनिः क्रमागतं
पथि स्थितं श्रीमधुसूदनेश्वरम् ।
प्रणम्य तेनानुमतः पुरोगतं
स मन्दरं भूधरमारुरोह तम् ॥६१॥

आपने भी यहां पर श्री वैद्यनाथ शिव का पूजन कर यहा से पूर्व भाग मे अवस्थित श्रीमधुसूदनेश्वर की दर्शनेच्छा से प्रस्थान किया जोकि वर्तमान समय में जिला भागलपुर के अन्दर है ॥६१॥

अयं नगेन्द्रः समुपागतैर्जनै-
नितान्तमद्यापि मुहुर्विलोकितः।
सुरासुरैर्वासुकिवेष्टनाङ्कितो
दिशत्यमन्दं क्रमब्धिमन्थनम् ॥६२॥

यहां पहुंचकर आपने मधुसूदनेश्वर जी का दर्शन कर, इसी के पास विद्यमान मन्दराचल का निरीक्षण किया। जो वर्तमान समय में भी वासुकिवेष्टन का चिह्न रखता हुआ आज भी आगत सज्जनों को समुद्र मन्थन का स्मरण करा रहा है ॥६२॥

प्रशस्तनानाविधविस्मयाकरं
विलोकयन्नप्रतिमं स मन्दरम्।
जवाज्जयी तत्पुरमाप यज्जनैः
क्षितौ नवद्वीपपदेन गीयते ॥६३॥

अनेक विस्मयों के आकारभूत इस मन्दराचल को देखकर आप यहां से नवद्वीप की ओर प्रस्थित हुए जो अङ्ग और वङ्ग के उत्तरकोण में विद्यमान है ॥६३॥

इहत्यविद्वद्भिरलं समर्चितः
शिवावतारो मुनिरेष सत्वरम्।
कलिङ्गवङ्गाङ्गजनैः प्रतिष्ठितं
प्रसिद्धमेकं नगरं समागमत् ॥६४॥

नवद्वीप के विद्वानों से सत्कृत होकर आप नवद्वीप से कामरूप देशगत कामाक्षी नगर के लिये प्रस्थित हुए जो उस प्रान्त का सर्वोत्तम स्थान है ॥६४॥

अहर्निशं यत्र जनैः प्रगीयते
शिवेतिवर्णद्वयमेव साधकैः।
स कामरूपः प्रथितोऽस्य भूपतिः
शिवावतारस्य समर्चनं व्यधात् ॥६५॥

जिस नगर में प्रायः उपासक गण शिवा-शिवा कहते हुए दो अक्षर वाले इसी नाम को रटा करते हैं उस प्रान्त के राजा ने आपको शिवरूप मानकर आपका बड़ा सम्मान किया ॥६५॥

नतेन भक्त्या शिरसा मुनेः पदं
शिरस्यवस्थाप्य महीभुजा कृतम् ।
यदर्हणं तन्न कदापि शक्यते
प्रवक्तुमस्मद्विधकाव्यकोविदैः ॥६६॥

भक्ति से विनत उस कामरूपेश्वर ने आपका चरण कमल अपने शिर पर रखकर जो आपका पूजन किया उसका वर्णन वर्तमान समय के कविगण नहीं कर सकते ॥६६॥

इतो निवृत्य प्रणतार्तिहा मुनिः
समुद्रतीरस्थितमुच्चगोपुरम् ।
नभोविभागादवतीर्य सत्वरं
विवेश रम्योत्कलमण्डनं पुरम् ॥६७॥

पूर्व दिशा के इस अन्तिम नगर से आप कामाक्षी का दर्शन करके समुद्र तट पर वर्तमान जगन्नाथपुरी के लिये प्रस्थित हुए ॥६७॥

हरिं जगन्नाथमिह प्रतिष्ठितं
शिवावतारो मुनिरेष सादरम् ।
प्रणम्य तत्रैव समुद्रसन्निधौ
निजाधिवासं समकल्पयच्छिवम् ॥६८॥

उत्कल देश के प्रधान केन्द्रभूत पुरी में पहुंचकर आपने जगन्नाथजी का दर्शन कर समुद्र के तट पर अपना निवास स्थान नियत किया जो अब तक विद्यमान है ॥६८॥

समागतं दिग्विजयप्रधर्षित-
प्रकाण्डविद्वद्गणमण्डनं मुनिम् ।
विलोक्य तत्तद्विपयेषु विस्तृता
विवादवाञ्छा समभूद्विरोधिनाम् ॥६९॥

दिग्विजय प्रसङ्ग से अनेक दिग्विजयी पण्डितों के साथ यहां आये हुये आप को देख कर विरोधी पण्डितों के मन में शास्त्रार्थ करने की इच्छा हुई ॥ ६९ ॥

सहागतं केचिदुदग्रमुत्कलाः
समीक्ष्य काशीस्थबुधव्रजं भयात् ।
प्रदुद्रुवुः पण्डितमानिनो जना
दिशां मुखानि प्रसभं विनिर्जिताः ॥७०॥

आपके साथ में दिग्विजयी पण्डित सोमनाथ आदि भी उपस्थित थे उनको देखकर पण्डितम्मन्य यहां के वादीभट शास्त्रार्थ में हार कर इधर उधर भाग निकले ॥ ७० ॥

निरादृताः केपि विनष्टबुद्धयो
बुधव्रजेनानुगतेन सत्वरम् ।
विवादयुद्धे मनुजास्त्रपावशा-
न्मनोदधुस्तत्र समुद्रमज्जने ॥७१॥

कुछ पण्डित शास्त्रार्थ में हार कर लज्जा और भय के कारण इधर उधर न जाकर सर्वदा के लिये समुद्र में छिपने के लिये उद्यत हुये ॥ ७१ ॥

विनिर्गतानस्य भयेन पण्डिता-
न्निशम्य सर्वे मनुजाः पुरीगताः ।
मतं मुनेरस्य मुदा मनःपथे
निवेश्य दास्यं प्रययुः समन्ततः ॥७२॥

आपके भय से इस प्रान्त के प्रधान प्रधान पण्डितों को भागा हुआ सुनकर जगन्नाथ पुरी के रहने वाले अन्य समस्त सज्जन आपका सिद्धान्त अजेय समझ कर आपका दास्य स्वीकार करने पर उद्यत हुये ॥ ७२ ॥

युगाष्टबाणेन्दुमितेऽत्र वैक्रमे
मधावुपेते सितपञ्चमीदिने ।
स सोमनाथं नियमेन शिष्यता-
न्निनाय पुर्यां मुनिदीक्षया मुनिः ॥७३॥

इसी जगन्नाथ पुरी में विक्रम सवत् १५८४ चैत्र शुक्ल पञ्चमी के दिन आपने

सोमनाथ त्रिपाठी को नियमानुसार उदासीन मत की दीक्षा देकर सोमदेव नाम से अपना शिष्य बनाया ॥ ७३ ॥

प्रसङ्गतोस्मिन्समये समागतः
प्रसिद्धचैतन्यमहाप्रभुः प्रभोः ।
पदारविन्दानुरतः क्रमान्मुनेः
प्रसादपात्रं समभूद्विनिर्जितः ॥७४॥

प्रसङ्ग से इसी समय आपके पास चैतन्य महाप्रभु भी आप से मिलने के लिए आये हुए थे जो विचार के समय आपके सपक्ष निरुत्तर होकर आपके दास बन गए ॥७४॥

इह प्रतिष्ठाप्य मठं महोदयः
स बालहासोदितपद्धतेः शिवम् ।
क्रमादुदासीनपथप्रवर्द्धनो
मुनिर्बभूवातितरां कृतक्रियः ॥७५॥

पुरी में समुद्र-तट पर जहां आप ठहरे हुए थे वहां बालहास पद्धति के मगुदास उदासी ने एक स्थान बनाया था, जो अब मगु मठ के नाम से प्रसिद्ध है। यहा पर इतना काम करके आप कृतकृत्य हो गए ॥७५॥

अनेकविद्वज्जनमण्डलाग्रणीः
स सोमदेवोपि गुरोरनुज्ञया ।
सहैव तिष्ठन्विजये कृतोद्यमः
प्रकम्पयामास मनांसि विद्विषाम् ॥७६॥

इधर सोमदेव भी अब नियमानुसार उदासीन बनकर आपकी आज्ञा से आपके साथ रहते हुए दिग्विजय के कार्य में सर्वदा दत्त चित्त होकर विपक्षियों का मुखमर्दन करने के लिए सन्नद्ध होगए ॥७६॥

महेन्द्रगुप्तां दिशमेवमादरा-
द्विजित्य वादे निगमानुमोदितम् ।

शिवावतारो मुनिरेष सत्वरं
मतं मुनीनामनयन्महोदयम् ॥७७॥

भगवान् श्रीचन्द्र जी इस प्रकार महेन्द्रपुर्ण पूर्व दिशा को धर्मयुद्ध में जीतकर इस प्रान्त में वेद प्रतिपादित उदासीन मत को अपने परिश्रम से उन्नति पर पहुँचा गए ॥७७॥

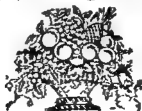
प्रसङ्गमेवं भगवत्कृपावशा-
त्समाप्य हर्षेण मयापि नीयते ।
दिनान्तभागेऽवसितिं क्रमागत-
क्रमेण सर्गोपि निसर्गसुन्दरः ॥७८॥

आपके दिग्विजय प्रसङ्ग में इतना ही कह कर अब हम भी दिन के अन्त भाग में इस सर्ग को इसी वृत्तान्त के साथ-साथ समाप्त करते हैं ॥७८॥

इतः परं दिग्विजयप्रसङ्गतो-
ऽवशिष्टवृत्तं प्रसभं दिदृक्षुभिः ।
महोदयैरग्रिमसर्गदर्शने
मनः प्रदेयं मुनिमण्डलानुगैः ॥७९॥

इससे अग्रिम दिग्विजय का प्रसङ्ग जिन महानुभावों को देखना हो वे इस महाकाव्य के अग्रिम सर्गों का अवलोकन करें ॥७९॥

इतिश्री सनाढ्यवंशोद्भव कविवर श्रीमदखिलानन्दशर्मप्रणीते
सविलास जगद्गुरुश्रीचन्द्रदिग्विजये महाकाव्ये
पूर्वदिग्विजयो नाम द्वादश सर्ग



त्रयोदशः सर्गः



अथ प्रतस्थे भगवान्मुनिमण्डलमण्डनः ।
परीतो बहुभिः शिष्यैः पुरं जनकपालितम् ॥१॥
तत्र नानामुनिजनैः कृतनानाविधार्थनः ।
उदासीनपथं तेने सनकादिप्रवर्तितम् ॥२॥
दिनानि कतिचित्तत्र मुनिभिः सह संवसन् ।
दिव्यं हरिहरक्षेत्रं पुनराप मनोहरम् ॥३॥
एकमूर्तिनिविष्टाङ्गौ देवौ हरिहरौ नमन् ।
नैमिषारण्यमगमत्पुराणाचार्यसत्कृतम् ॥४॥
व्यासादिमुनिभिस्तत्र कृतवासे मनोरमे ।
वने दिनानि कतिचिन्निनाय नतशङ्करः ॥५॥
सुलक्षणाकृतध्यानः स्मृतमात्रो नभस्तलात् ।
सन्धामनुसरन्नेष देशं पञ्चनदं ययौ ॥६॥
तत्रावतीर्य नभसो मुनिर्नारदवद्द्रुतम् ।
पुरं जलन्धरन्नाम प्रतिभामण्डितं व्यधात् ॥७॥
समागतैरयन्तत्र वीरैः क्षत्रियपुङ्गवैः ।
सहायमगमत्सद्यः सुलतानपुरं महत् ॥८॥
भक्तः सुखदयालस्तत्पुरस्थं यवनेश्वरम् ।
मुनेरस्य प्रभावेण हर्षितः समसूचयत् ॥९॥
प्रभावितः स यवनो मुनेरस्य प्रभावतः ।
विहाय हिंसामभजद्भगवन्तं महेश्वरम् ॥१०॥

नानाविधकथालापैरेवं विनिवोधयन् ।
मुनिरेष दयादानतत्परं समकल्पयत् ॥११॥

पूर्व दिग्विजय के अनन्तर भगवान् श्रीचन्द्र जी अनेक शिष्यों के साथ जगन्नाथ पुरी से प्रस्थित होकर जनकपुर पहुंचे। वहां पर अनेक मुनि जनों की प्रार्थना से आपने सनकादि मुनि प्रवर्तित उदासीन मार्ग का प्रचार किया। कुछ दिन मुनियों के साथ यहां ठहर कर आप यहां से दुवारा हरिहरक्षेत्र पहुँचे। यहां पर एक विग्रह में अवस्थित हरि और हर को प्रणाम कर आप यहां से नैमिपारण्य पहुँचे, व्यास आदि अनेक मुनिगण से मिल इस वन में कुछ दिन निवास कर आप यहां से माता जी के स्मरण करने पर नभोमार्ग से पञ्चनद की ओर चले, वहां पर देवर्षि नारद की तरह आकाश से अवतीर्ण होकर आपने जालन्धर नामक नगर को अलंकृत किया यहां पर दर्शनार्थ उपस्थित भक्त सुखदयालु आदि अनेक वीर क्षत्रियों के साथ आप यहां से सुलतानपुर पहुंचे। यहां के नवाव दौलतखां लोदी के पास जाकर भक्त सुखदयालु ने आप के प्रभावों की बहुत कुछ प्रशंसा की जिससे प्रभावित होकर नवाव आपका भक्त बन गया और आपके सदुपदेशों से हिंसा आदि कुकर्मों को छोड़ कर दया और दान आदि उत्तम कामों में प्रवृत्त हुआ ॥ १—११ ॥

पुरादस्मादपि मुनिः करतारपुरं परम् ।
समेत्य नगराद्दूरमासनं समयोजयत् ॥१२॥
समागतं निजसुतं समाकर्ण्य तदम्बिका ।
लक्ष्मीचन्द्रेण सहिता समायाता तदाश्रमम् ॥१३॥
उपस्थितां निजामम्बां वीक्ष्य तस्याः पदद्वयम् ।
मुनिरेष यथाशास्त्रमभिवाद्येदमब्रवीत् ॥१४॥
कच्चिदम्ब वियोगेन मम दूनासि यद्द्रुतम् ।
दूरस्थितं निजप्रेम्णा मामुपस्थितमस्मरः ॥१५॥
एवं बहुविधप्रश्नैः समाश्वास्य मुहुर्मुनिः ।
मातरं साश्रुनयनां ववन्दे पदयोः पतन् ॥१६॥

लक्ष्मीचन्द्राभिधं पश्चादनुजं मृदुपाणिना ।
परामृशन्नतपदं मुनिः पप्रच्छ तद्गतिम् ॥१७॥
मात्रा पुनः कृतान्प्रश्नानाकर्ण्य विविधक्रमान् ।
कापिलैरुत्तरैः सम्यक् तोषयामास मातरम् ॥१८॥
निपीय सूत्तरं माता श्रीचन्द्रवदनोद्गतम् ।
परां निर्वृत्तिमापेदे गतमोहव्यथाऽभवत् ॥१९॥
अनुरोधादयं तत्र मातुः कर्तव्यगौरवात् ।
मासान्कतिचिदास्थाय धर्मचर्चामवर्धयत् ॥२०॥

इसके अन्तर आप यहां से करतारपुर पहुँचे और नगर के बाहर अपना आसन लगाया । आपको यहां पर आया हुआ सुनकर आपकी माता लक्ष्मीचन्द्र को साथ लेकर आपके पास पहुंची । माता जी को देखकर आप आसन से उठे और मर्यादानुसार उनको प्रणाम कर कहने लगे कि मेरे वियोग में आपको क्या कष्ट हुआ, जिसके लिये आपने मेरा स्मरण किया ? इस प्रकार अनेक प्रश्न करने पर आपने माता जी को बहुत सान्त्वना दी और अपने भाई लक्ष्मीचन्द्र को आशीर्वाद देकर बहुत काल तक उनके साथ वार्तालाप किया इसके अनन्तर माता ने आपसे कुछ शास्त्रीय प्रश्न किये, जिनका उत्तर आपने सांख्यपद्धति से दिया, माता आपके उत्तर को सुनकर आनन्द में मग्न हुई और अज्ञान रूप मोह को छोड़ कर ज्ञानवती होगई । माता के अनुरोध से आप यहां पर कुछ दिन ठहर कर सनातनधर्म की चर्चा से अपने समय को व्यतीत करते रहे ॥ १२—२० ॥

अस्मिन्नेवान्तरे तत्र लक्ष्मीचन्द्रोऽनुजो मुनेः ।
लोकान्तरं प्रतिगतो धर्मचन्द्रमिह त्यजन् ॥२१॥
तमयं भ्रातरि प्रेते भ्रातृव्यं समुपस्थितम् ।
कुलतन्तुमनुस्मृत्य निजवंशप्रवर्धनम् ॥२२॥
उदासीनपथाभिन्नां ऋषिदीक्षामनुत्तमाम् ।
तस्मै प्रदाय विधिवच्छिष्यतामनयन्मुनिः ॥२३॥

दीक्षामिमामनुप्राप्य गृहस्थोपि यथोचिताम् ।
कर्तुमर्हति कर्माणि यथापूर्वं नृपः पृथुः ॥२४॥
भ्रातृव्यमेवं विधिवद्दीक्षितं प्रविधाय सः ।
पितुरप्यागतस्यात्र ननाम पदपङ्कजम् ॥२५॥
त्रिवार्षिकमिमं त्यक्त्वा गृहे पुत्रं पिता वनम् ।
ययौ तदुत्तरमयं नापश्यन्मुनिमात्मजम् ॥२६॥
द्वात्रिंशद्वर्षदेशीयमात्मजं नानको गुरुः ।
विलोक्य नयनद्वन्द्वमद्य दिव्यफलं व्यधात् ॥२७॥
एवमत्र गते काले मुनिर्बहुतिथे द्रुतम् ।
ययावितो गुरुपदं काश्मीरविषयस्थितम् ॥२८॥
दिनानि कतिचित्तत्र विश्रम्य गुरुसन्निधौ ।
ययौ ततोपि कर्तव्यपारवश्येन सत्वरम् ॥२९॥
वाणाङ्कवाणेन्दुमिते विक्रमे वत्सरे मुनिः ।
सीमाप्रान्तगतं पेशावर पत्तनमभ्यगात् ॥३०॥

इसी अवसर में आपका अनुज लक्ष्मीचन्द्र परलोक सिधारा और धर्मचन्द्र नामक अपने पुत्र को आपके आश्रय में छोड़ गया। भाई के स्वर्ग सिधारने पर आपने अपने भतीजे को अपने भावी वंश का एकमात्र मूल समझ कर उसके लिये उदासीन मत से अभिन्न ऋषि दीक्षा देकर अपना शिष्य बनाया। यह वह दीक्षा है जिसको प्राप्त होकर मनुष्य गृह में रहकर भी मोक्ष प्राप्ति के साधन कर सकता है, जिस प्रकार पूर्व समय में महाराजा पृथु ने किया था। अपने भ्रातृव्य को इस प्रकार विधिपूर्वक अपना शिष्य बनाकर आपने अपने समीप आए हुए अपने पितृदेव को प्रणाम किया। आपके पिता आपको घर में तीन वर्ष का छोड़कर तीर्थाटन के लिये घर से चले गए थे तब से अब तक मिलने का कोई अवसर नहीं आया। आज दैवयोग से बत्तीस वर्ष के बाद यह अवसर प्राप्त हुआ जिसमें पिता ने पुत्र को देखकर अपना नयनयुगल सफल किया। इस प्रकार यहां पर बहुत समय बीतने पर आप यहां से काश्मीर चले गए। वहां

पर गुरुजी के पास कुछ दिन ठहर कर १५९५ विक्रम संवत् में आप अपना कर्तव्य पूरा करने के लिये पेशावर चले गए ॥२१—३०॥

अत्रागतं मुनिवरं समाकर्ण्यातिहर्षितः ।
कश्चित्सांयात्रिको भूरि द्रव्यमस्यपुरो न्यधात् ॥२१॥
असौ पोतवणिक्पूर्वं समुद्रे विपणीकृतम् ।
पोते निधाय विविधद्रव्यं देशान्तरादगात् ॥२२॥
मध्येसमुद्रमागत्य यदा पोतः प्रकम्पितः ।
झञ्झावातैस्तदा पोतवणिक् सस्मार तं मुनिम् ॥२३॥
स्मृतमात्रेण मुनिना समुद्रे स्थिरताङ्गते ।
सांयात्रिको निजां यात्रां पूरयामास दैवतः ॥२४॥
सएवायमिहागत्य धनं भूरि न्यवेदयत् ।
मुनये मुनिरप्याशु तेनधर्मस्थलं व्यधात् ॥२५॥
श्रीचन्द्रधर्मशालेयमद्यापि बहुभिर्जनैः ।
गीयते यत्र बहवः कुर्वन्ति हरिकीर्तनम् ॥२६॥
अहर्दिवमिह प्रेम्णा घृताक्ताः पञ्चदीपकाः ।
प्रज्वाल्यन्ते बहुजनैर्धर्ममार्गानुयायिभिः ॥२७॥
एवमत्र निजं धर्मं व्यवस्थाप्य सनातनम् ।
प्रतस्थे यावनं देशं मुनिरेष महाबलः ॥२८॥

आपको यहां पर आया हुआ सुनकर एक सायात्रिक बहुत सा धन लेकर आपको भेंट करने के लिये आया यह सौदागर विदेश से माल भर कर अपने देश को लौट रहा था कि इतने ही में मार्ग में समुद्री तूफान आने से जहाज डूबने लगा जिस समय यह घटना हुई उसी समय सौदागर ने आपका ध्यान किया जिससे समुद्र स्थिर हो गया और सौदागर लाखों रुपयों का माल लेकर घर आ गया। घर आते ही उसने ढूढते-ढूढते आपको पेशावर में पाया। आपने भी उस द्रव्य से पेशावर में एक स्थान बनवाया जो आज भी श्रीचन्द्र धर्मशाला

के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें पेशावर के सब हिन्दू आज भी एकत्र होकर हरि-कीर्तन और धर्म-चर्चा करते हैं। इस स्थान में अहर्निश पांच घृत के दीपक जलते हैं जिनको यहां के लोग ज्योति कहते हैं। इस प्रकार आप यहां पर अपने धर्म की व्यवस्था करके यहां से काबुल के लिये प्रस्थित हुए ॥३१—३८॥

अत्रागतमिमं वीक्ष्य बहवो यवना अपि ।
विहाय यावनं मार्गं हरिभक्तिमुपागमन् ॥३६॥
एकोत्र यवनो हित्वा यावनं मतमादरात् ।
रामभक्तिपरो भूत्वा बभ्राम यवनव्रजे ॥४०॥
तथाविधं तमालोक्य यवनं हरिकीर्तनम् ।
चुक्षुभुर्बहवो धूर्ता यवना वेदविद्विषः ॥४१॥
अथैकदा हरिपदं गायन्तं तमितस्ततः ।
समेता यवनाः पापाः पथि लोष्ठैरताडयन् ॥४२॥
भगवद्भजनध्यानसमासक्तः स सत्वरम् ।
मुनेराश्रममागत्य हरिमेव सदाऽस्मरत् ॥४३॥
तथावस्थमिमं वीक्ष्य ये प्रहर्तुमुपागताः ।
यवनास्ते मुनेःशापाद्बभूवुर्गतचक्षुषः ॥४४॥
पदात्पदमपि प्राणपरित्राणे कृतोद्यमाः ।
गन्तुं यदा न शेकुस्ते तदा मूर्छामुपागमन् ॥४५॥
अपराधक्षमाभिक्षां यदातेऽत्र ययाचिरे ।
तदा मुनिस्तानवदद्भक्तोयं जानकीपतेः ॥४६॥
यदि जीवितुमिच्छास्ति भवतां भुवने तदा ।
प्रार्थनीयः सएवाद्य हतोयः पथि कङ्कणैः ॥४७॥
मुनेरिदं वचः श्रुत्वा बहवो यवना सुराः ।
तमेव भगवद्भक्तं क्षमाभिक्षां ययाचिरे ॥४८॥

सोऽपि नैवं पुनःकार्यमित्युक्त्वा मुनिसन्निधौ ।
निषण्णः प्राह भगवत्पदं भजत रेशठाः ॥४६॥
एवं यवनसाम्राज्ये बहुदर्शित विक्रमः ।
मुनिरेष ततोऽप्यग्रे गान्धारं देशमभ्यगात् ॥५०॥

काबुल में पहुंच कर आपने एक तृण कुटीर में विश्राम किया और अखण्ड धूनी लगाकर अपने कार्य का आरम्भ किया। यहां पर बहुत से यवन आपको आया हुआ सुनकर आपके दर्शनार्थ आने लगे और आपका उपदेशामृत पानकर हरि भक्ति में आसक्त हुए। वजीरखां नामक एक यवन आपके प्रभाव से प्रभावित होकर अपने मत में अश्रद्धा करके पूर्णरूप से रामभक्त होकर यवनों में घूमने लगा। उसको ऐसा देखकर बहुत से हिन्दूधर्म के द्वेषी यवन क्षुब्ध हो उठे। ऐसी परिस्थिति में एक दिन वह खड़तालों पर हरिकीर्त्तन करता करता यवन मन्दिर के पास होकर निकल रहा था कि उसके ऊपर यवनों ने ढेले फेंकने आरम्भ किये। वह उनकी कुछ परवाह न करता हुआ कीर्तन करते-करते आपके आश्रम में पहुंच गया। उसका पीछा करते हुए कुछ यवन वहां पर भी पहुंचे जहां पर आप समाधिस्थ थे। आपने जैसे ही उनको आंख खोलकर देखा वैसे ही वे सब अन्धे हो गए और पृथिवी ने उनके पैर जकड़ दिये। आपके इस चमत्कार से जब वे एक कदम भी अगाड़ी न चल सके तब वे सबके सब मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े और अपने अपराधों की आपसे क्षमा मांगने के लिये विवश हुए। आपने उनकी तरफ देखकर कहा कि यह वजीरखां रामचन्द्रजी का भक्त है इसलिए आप लोग यदि कुछ दिन जीवित रहना चाहते हैं तो उसी के शरण में जाइये जिस पर आप लोगों ने ढेलों की वर्षा की थी, अन्यथा आप लोगों की मृत्यु निकट आ पहुंची है। आपकी यह बात सुनकर वे भयभीत होकर उसी भक्त के पास पहुंचे जिस पर ढेले बर्साते थे। उसने भी आपका सङ्केत पाकर उन शरणार्थियों से कहा कि ऐसा कार्य भविष्य में कभी न करना यदि ऐसा फिर करोगे तो सर्वनाश हो जावेगा। अब यहां से जाओ और श्रीरघुनाथजी के शरण में जाकर उनसे क्षमा मांगो। वजीरखां की यह बात सुनकर वे सब लज्जित होकर वापिस चले गए और वजीरखां हरिकीर्त्तन में प्रवृत्त हुआ। इस प्रकार यवन साम्राज्य में अपना बल दिखाकर आप यहां से भी अगाड़ी कन्धार पहुंचे ॥३९—५०॥

अत्रापि सोमदेवादिशिष्यैरनुगतो मुनिः ।
निगमागतसिद्धान्तं शङ्खघोषैरपूरयत् ॥५१॥
यदायमगमत्तत्र गान्धारविषये मुनिः ।
बलवद्यावनमभूच्छासनं धर्मनाशनम् ॥५२॥
नष्टसङ्गठनाः सर्वे द्विजन्मानो भयाकुलाः ।
यवनध्वस्तभवना विविशुर्गिरिगह्वरम् ॥५३॥
न कोपि देवसदने शङ्खघोषमवर्धयत् ।
प्राणापहरणं तत्र तदाभूच्छंखनिस्स्वने ॥५४॥
एवंविधव्यतिकरव्यवस्थाया निदर्शकम् ।
एकमैतिह्यमधुना लिख्यते दृश्यतां बुधैः ॥५५॥

सोमदेव आदि अनेक शिष्यों के साथ कन्धार पहुंच कर आपने अपने योग बल से शङ्खनाद के साथ अपने सिद्धान्तों का प्रचार आरम्भ किया। जिस समय आप कन्धार पहुंचे, उस समय अफगानिस्तान पूर्णरूप से यवनाक्रान्त था। हिन्दुओं की दुर्दशा चरम सीमा तक पहुंच चुकी थी, सङ्गठन से रहित ब्राह्मणादि वर्ण यवनों के भय से अपना अपना घर छोड़कर पर्वतों की कन्दराओं में जा छिपे, कोई अपने देवमन्दिर में शङ्ख नहीं बजा सकता था, यदि कोई बजाता था तो उसके लिये प्राणदण्ड दिया जाता था। इस प्रकार के व्यतिकर का उदाहरण स्वरूप एक इतिहास यहां पर उपस्थित किया जाता है। पाठक ध्यानपूर्वक उसका अवलोकन करें ॥५१—५५॥

गान्धारविषये कश्चिद्ब्राह्मणो धर्मतत्परः ।
तदा लक्ष्मणदत्ताख्यो बभूव भगवत्परः ॥५६॥
कृष्णभक्तः स भवने मन्दिरं बहुसुन्दरम् ।
विधाय भगवत्पूजां चकार गतमत्सरः ॥५७॥
एकदा स बहिः कार्यपारवश्येन यन्त्रितः ।
जगाम रामरत्नाख्यं सुतं हित्वाऽल्पहायनम् ॥५८॥

गते पितरि कार्येण बहिः पुत्रो गृहस्थितम् ।
शङ्खमादाय चिक्रीड मुखमारुतपूरणैः ॥५६॥
दैवयोगेन तद्वायुरेकदा शङ्खमध्यगः ।
सूचयामास शङ्खस्य ध्वनिमस्फुटतां गतम् ॥६०॥
तस्य नादेन विक्षुब्धो यवनः कोपि बालकम् ।
तमाचकर्ष भवनाद्दण्डदाने समुद्यतः ॥६१॥
एतावतैव कालेन तत्पिता समुपागतः ।
बलादाकृष्यमाणं तं बालकं वह्वतर्जयत् ॥६२॥
बालकोयमिति ज्ञात्वा भवतास्य विचेष्टितम् ।
क्षन्तव्यमिति तं प्राह यवनं पुरतः स्थितम् ॥६३॥
अनादृत्य पितुर्वाक्यं बलादाकृष्यबालकम् ।
यदा निनाय यवनस्तदा विक्षुब्धमानसः ॥६४॥
ब्राह्मणः स मुनेः पार्श्वे समागत्य तथाविधम् ।
सर्वं निवेदयामास बालकस्य विचेष्टितम् ॥६५॥
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा करुणासागरो मुनिः ।
निजकुण्डात्समुद्धृत्य ददौ भस्म विभूतिदम् ॥६६॥
तदादाय गते तस्मिन्ब्राह्मणे यवनालयम् ।
विक्षोभः समभूत्तेषां यवनानां दले दले ॥६७॥

कन्धार में लक्ष्मणदत्त नामक एक ब्राह्मण रहता था जो कि अनन्य कृष्ण भक्त था। उसके घर में एक कृष्ण मन्दिर था जिसमें वह चुपचाप बिना शङ्ख आदि बाजे बजाए कृष्ण पूजन करता था। एक दिन किसी कार्यवश वह बाहर गया हुआ था उसका इकलौता रामरत्न नामक एक पुत्र था जो घर पर रह गया था वह पिता के बाहिर चले जाने पर शङ्ख से खेलने लगा। शङ्ख उससे बजता नहीं था। एक बार दैवयोग से वह थोड़ा सा बज गया जिसका हुआ अस्फुट शब्द बाहर सुनाई पड़ा। उस शब्द से क्षुब्ध हुआ एक यवन मौलवी

बालक को पकड़ लेने के लिये दरवाजे पर आ गया, इतने ही में उसका पिता भी बाहर से आ गया। पिता ने यवनाकृष्ट अपने उस बालक को बहुत फटकारा और उस यवन मौलवी से कहा कि इस अबोध बालक के इस कृत्य को आप क्षमा कीजियेगा इसने अज्ञानपूर्वक ऐसा कार्य किया है। पिता के इतना कहने पर भी उनकी बात पर कुछ ध्यान न देकर जब यवन उस बालक को बलपूर्वक खींचकर ले जाने लगा, तब ब्राह्मण घबड़ाकर आपके शरण में आया और बालक का सब हाल आपके समक्ष कह सुनाया। करुणासागर भगवान् उस ब्राह्मण की करुण कहानी सुनकर अपने अग्निकुण्ड से मन्त्राभिमन्त्रित विभूति देकर कहने लगे कि तुम शीघ्र जाकर बालक के मस्तक पर इस विभूति को लगा दो। आप की आज्ञा पाते ही ब्राह्मण विभूति लेकर कामरान के दरबार में पहुँच गया और उसने जाते ही बालक के मस्तक पर उसका तिलक कर दिया। ब्राह्मण के इस कृत्य को देखकर दरबार के मौलवी लोगों में बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ और वे रामरत्न को दरबार में खड़ा करके अपने अपने मन्तव्यानुसार दण्ड का निर्णय करने लगे॥ ५६—६७॥

एकः समवदत्तेषां दले बालकघातनम्।
अपरो नेत्रकदनं तदन्यो हस्तशातनम्॥६८॥
लोष्ठघातैर्वधं कश्चिद्दण्डघातैरथापरः।
दिदेश तस्य बालस्य कृते धर्मविपर्ययम्॥६९॥
एवं भिन्नमतेष्वेषु यवनेषु स बालकः।
मुनिदत्तप्रसादेन पवित्रीकृतमस्तकः॥७०॥
विहस्य सर्वानवदत्किमर्थं क्रियते भ्रमः।
सज्जोऽहमस्मि धर्मार्थे प्राणदानाय सत्वरम्॥७१॥
हतः स्वर्गं गमिष्यामि भविष्याम्यथवाऽमरः।
परं धर्मं न हास्यामि जीवनार्थे कदर्थितः॥७२॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा बालकस्य यथोचितम्।
यावत्ते निर्णयमदुस्तावता जडतां गताः॥७३॥

कोई कहने लगा कि इस बालक को प्राण दण्ड देना चाहिये दूसरा कहने लगा कि इसकी आंखें निकालनी चाहिये तीसरा कहने लगा कि इसके हाथ काटने चाहिये चौथा कहने लगा कि इसे मार-मार कर इसको मारना चाहिये पांचवां कहने लगा कि लाठियों के प्रहार से इसको मारना चाहिये छठवां कहने लगा कि बलात् यवन बना कर अपने दल में मिलाना चाहिये इस प्रकार उनकी अनेक विध दण्डाज्ञा सुनकर वह बालक बोला कि आप लोग क्यों इस प्रकार के प्रपञ्च में पड़े हैं मैं भगवान् के आशीर्वाद से अपने धर्म के लिये प्राण तक देने के लिये उद्यत हूँ यदि मैं धर्म के लिये मारा जाऊंगा तो स्वर्ग जाऊंगा अथवा अमर हो जाऊंगा परन्तु इस तुच्छ जीवन के लिये अपना धर्म नहीं छोड़ूंगा इस प्रकार बालक की धैर्य युक्त गम्भीर वाणी सुनकर जब तक वे मौलवी कामरान के दरबार में अपना निर्णय देने के लिये उद्यत हुये तब तक भगवान् की अद्भुत योग माया से वे सबके सब जकड़ गये ॥ ६८—७३ ॥

जिह्वाजाड्यमगाद्धस्तौ बद्धौ पाशेन केनचित् ।
काष्ठतामगमत्सद्यः शरीरं पापकर्मणाम् ॥७४॥
तेषामेवंविधां दृष्ट्वा दुर्दशामतिदुःखदाम् ।
हाहाकारः समभवत्सर्वत्रापि गृहे गृहे ॥७५॥
रामरत्नपिता पुत्रं समादाय मुनेः पदम् ।
पस्पर्श यत्प्रभावेन पुत्रो मृत्युमतीतरत् ॥७६॥
गान्धारदेशाधिपतिः सर्वमेतद्विलोकयन् ।
निजस्य सख्युः कथनान्मुनेः पदमुपागमत् ॥७७॥
नताननो गतमदो मुनेरस्य पुरःस्थितः ।
अपराधक्षमाभिक्षां वारम्वारमयाचत ॥७८॥
मुनिरप्यस्य विनयं विलोक्य शरणप्रदः ।
निजसिद्धिप्रभावेण बन्धनं पर्यवारयत् ॥७९॥
विमुक्त बन्धनेष्वेषु गतेषु निजमालयम् ।
मुनिः शिवाय भूतानां शिवमेव मुदाऽस्मरत् ॥८०॥

उन सब की जिव्हा स्तब्ध हो गई, हाथ और पैर अकड़ गये और शरीर काष्ठ की तरह जड़ हो गया उनकी यह दशा देख कर घर घर में हाहाकार मच गया रामरत्न का पिता रामरत्न को लेकर भगवान् के चरणों में आकर गिर गया क्यों कि आपके आशीर्वाद से ही उसके प्राण बचे हुये थे। कन्धार का बादशाह कामरान इन सब बातों से भयभीत होकर गुलअकबर नामक अपने मित्र के साथ भगवान् के पास पहुंचा और नतमस्तक होकर अपने अपराधों की बार बार क्षमा चाहने लगा। भगवान् इसकी दीन दशा देख कर अपने प्रभाव से सबको मुक्त बन्धन करके अन्त में सबको घर भेज कर अपनी योग विद्या से शिव का स्मरण करने लगे ॥ ७४—८० ॥

इदमेकं मया तस्य मुनेरत्र विचेष्टितम् ।
निवेदितमतोऽप्यन्यद्दीयतेस्य निदर्शनम् ॥८१॥

अधित्यकामधिगतो निर्भयो मुनिरेकदा ।
निजाश्रमे समासीनो ददर्श मृगशावकम् ॥८२॥

गिरेरुपत्यकादेशे चरन्तमकुतोभयम् ।
यवनः कश्चिदागत्य मृगयुस्तमघातयत् ॥८३॥

निपात्य नयने तस्य समुद्धर्तुं समुद्यतः ।
यदायमभवत्तत्र तदा मुनिरुवाच तम् ॥८४॥

येनास्य नयने वेगादुद्धृते समयान्तरे ।
तस्यापि नयने कोपि बलादेवोद्धरिष्यति ॥८५॥

एवमत्यन्तभयदां गिरमस्य महामुनेः ।
निशम्य स मदोन्मत्तो मुनिमेवमभाषत ॥८६॥

यद्ययं सद्यएवाद्य प्रभावात्ते मृगो निजाम् ।
दशामुपेयात्तदहं हास्यामि मृगयामिमाम् ॥८७॥

वदन्तमेवं यवनं विलोक्य मुनिसत्तमः ।
दृशापश्यन्मृगं सद्यः सोपि जीवनमाप्तवान् ॥८८॥

परमस्य मुनेः शापाद्गते काले सहोदरः ।
नयनेऽस्य समुद्धृत्य शापस्यान्तमदर्शयत् ॥८९॥
एवंविधान्यनेकानि चरितान्यस्य भूतले ।
लभ्यन्ते मुनिवर्यस्य निदर्शनपथानुगैः ॥९०॥

यह एक इतिहास यहां पर आपके सम्बन्ध में लिखा गया है, जो उस समय के अत्याचारों का निदर्शनमात्र कहा जा सकता है। अब इसी के जोड़ का दूसरा इतिहास भी उपस्थित किया जाता है। पाठक गण ! उसका धैर्यपूर्वक मनन करें। एक समय भगवान् पर्वत की अधित्यका में आश्रम में चरते हुए एक मृगशावक को ऊपर से देख रहे थे। उसको उस पर्वत की उपत्यका में घास चरते चरते एक शिकारी यवन ने मार दिया। मारकर वह शिकारी उसकी आंखें निकालने पर उतारू होगया। उसके इस कुकृत्य को देखकर आप उससे कहने लगे कि जिसने इस मृगशावक की आंखें निकाली हैं समयान्तर में उसकी आखें भी इसी प्रकार बल पूर्वक निकाल ली जावेंगी, भगवान् की इस अभिशाप पूर्ण बात को सुनकर वह कन्धार नरेश कामरान शिकारी भयभीत होकर भगवान् से कहने लगा कि यदि आपके प्रभाव से यह मृग शावक सजीव होकर पहिली जैसी हालत में हो जावे तो आज से मैं शिकार खेलना बन्द कर दूंगा, यवन की यह बात सुनकर भगवान् ने उसकी ओर देखा। देखते ही वह सजीव होकर चलने लगा परन्तु कुछ दिन बीतने पर कामरान अपनी प्रतिज्ञा भूलकर फिर शिकार खेलने लगा अन्त में विक्रम सवत् १६११ में बाबर के पुत्र हुमायू ने काबुल पर चढ़ाई करके लड़ाई में कामरान को मार कर उसकी आखें निकलवालीं कामरान हुमायू का छोटा पुत्र था। भगवान् का दिया हुआ शाप अन्त में सफल होकर रहा। इस प्रकार के अनेक इतिहास भगवान् की योग सिद्धि का महत्व दिखा रहे हैं जो इस भूतल पर हो चुके हैं॥ ८१—९०॥

दिनानि कतिचित्तत्र गान्धारविषये वसन् ।
मुनिरेष यथामार्गं बभ्राम वनभूमिषु ॥९१॥
मार्गे समागतानन्यान्गिरीनवटसङ्कुलान् ।
समतीत्य महाघोरं विषयान्तरमभ्यगात् ॥९२॥

तत्रापि कृतसञ्चारो दिशं वरुणलाञ्छनाम् ।
विजित्य यवनाक्रान्तां प्रत्यावर्तत भारतम् ॥६३॥
येन मार्गेण संयातस्तेनैव पुनराव्रजन् ।
क्रमशः प्राप्तमनुजं पेशावरमुपागमत् ॥६४॥
मातुः सन्देशमादाय तत्रायातमुपस्थितम् ।
धर्मचन्द्रं समालोक्य मुनिस्तमिदमब्रवीत् ॥६५॥
किमर्थं म्लानवदनः समायातोसि मातरम् ।
विहाय वद तत्सर्वं यन्मात्रा समुदीरितम् ॥६६॥
धर्मचन्द्रो निशम्येदं मुनेर्वचनमादरात् ।
विनीतः प्राह भगवन्नवाच्यं श्रूयतामिदम् ॥६७॥
ऋत्वङ्कबाणेन्दुमिते शुभे विक्रमवत्सरे ।
मासे तथाऽश्विने कृष्णदशम्यां त्वामनुस्मरन् ॥६८॥
लोकमेनं परित्यज्य परलोकमनुस्मरन् ।
पिता ते निधनं प्राप्तस्तद्वियोगेन दुःखिता ॥६९॥
माता तवाननमिदं द्रष्टुमुत्सहतेऽबला ।
तदेहि सत्वरं तस्याः सविधे भव धैर्यदः ॥१००॥

इस प्रकार के आश्चर्य मय कार्य करते हुये आप कन्धार में कुछ दिन रहकर वहां से शिवबुलान चले गये मार्ग में आये हुये अनेक वन तथा गहर पर्वत कन्दराओं को पार करते हुये आप अत्यन्त भयंङ्कर बिलोचिस्थान पहुंचे। वहां पर भी प्रचार करते हुये अन्त में पश्चिम दिशा को जीत कर भारत के लिये लौट पड़े मार्ग से पहिले आये थे उसी से फिर लौट कर पेशावर आगये। इसी समय का सन्देश लेकर वहाँ पर आये हुये धर्मचन्द्र को देख कर भगवान् कहने कि माता को छोड़ कर इस समय यहां पर क्यों आये हो ? जो कुछ सन्देश माता जी ने भेजा है उसे कहो, भगवान् की यह आज्ञा पाकर धर्मचन्द्र ने कहा कि भगवन् !! विक्रम सवत् १५९६ की आश्विन वदी दशमी के दिन आपको याद करते करते आपके पिता जी परलोक सिधार गये उनके वियोग में अत्यन्त

दुःखित आप की माता आपको देखना..चाहती हैं इसलिये यहां से आप जल्दी उनके पास चलिये और उनको धैर्य पूर्वक सान्त्वना दीजिये ॥ ९१—१०० ॥

भवानेवाधुना तस्याः प्राणाधारः परं बलम् ।
शरण्यः सर्वलोकानां भक्तानुग्रहकारकः ॥ १०१ ॥
निशम्येदं वचस्तस्य धर्मचन्द्रस्य धीमतः ।
उवाच मुनिरप्राप्तं किमपि प्रतिचिन्तयन् ॥ २ ॥
धैर्यावलम्बनं मातुस्त्वया पूर्वं विधीयताम् ।
अहमप्यागमिष्यामि गतानुगतिकक्रमात् ॥ ३ ॥
मुनेरिदं वचः श्रुत्वा निवृत्ते मातुरन्तिकम् ।
धर्मचन्द्रे मुनिस्तत्र कृतवान्समयोचितम् ॥ ४ ॥
भक्तानुपस्थितानत्र वियोगबहुदुःखितान् ।
सान्त्वयित्वा कथमपि प्रतस्थे भगवानितः ॥ ५ ॥
मार्गागतेषु नगरेष्वयमागतसज्जनान् ।
निबोधयन्धर्मतत्त्वं प्रपेदे मातुरन्तिकम् ॥ ६ ॥
ग्रामाद्बहिः कृतावासं निशम्य निजमात्मजम् ।
वियोगविधुरा सद्यः प्रपेदे जननी जवात् ॥ ७ ॥
समायातां मुनिर्दृष्ट्वा मातरं शोकविह्वलाम् ।
उवाच भगवत्यम्ब ! किमर्थमसि दुःखिता ॥ ८ ॥
या गतिः पुण्यशीलानां धर्ममार्गानुवर्तिनाम् ।
तामेव समनुप्राप्तः पतिस्ते जनको मम ॥ ९ ॥
शिवा भवन्तु पन्थानस्तस्य धर्मानुवर्तिनः ।
तवाप्यम्ब ! शिवः पन्था भवितास्ति न संशयः ॥१०॥
एवमाश्वासनपरैर्वचोभिः परिसान्त्वयन् ।
शिवावतारः श्रीचन्द्रो मातरं बह्वमन्यत ॥११॥

तत्रापि कृतसञ्चारो दिशं वरुणलाञ्छनाम् ।
विजित्य यवनाक्रान्तां प्रत्यावर्तत भारतम् ॥६३॥
येन मार्गेण संयातस्तेनैव पुनराव्रजन् ।
क्रमशः प्राप्तमनुजं पेशावरमुपागमत् ॥६४॥
मातुः सन्देशमादाय तत्रायातमुपस्थितम् ।
धर्मचन्द्रं समालोक्य मुनिस्तमिदमब्रवीत् ॥६५॥
किमर्थं म्लानवदनः समायातोसि मातरम् ।
विहाय वद तत्सर्वं यन्मात्रा समुदीरितम् ॥६६॥
धर्मचन्द्रो निशम्येदं मुनेर्वचनमादरात् ।
विनीतः प्राह भगवन्नवाच्यं श्रूयतामिदम् ॥६७॥
ऋत्वङ्कबाणेन्दुमिते शुभे विक्रमवत्सरे ।
मासे तथाऽश्विने कृष्णदशम्यां त्वामनुस्मरन् ॥६८॥
लोकमेनं परित्यज्य परलोकमनुस्मरन् ।
पिता ते निधनं प्राप्तस्तद्वियोगेन दुःखिता ॥६९॥
माता तवाननमिदं द्रष्टुमुत्सहतेऽबला ।
तदेहि सत्वरं तस्याः सविधे भव धैर्यदः ॥१००॥

इस प्रकार के आश्चर्यमय कार्य करते हुये आप कन्धार में कुछ दिन रहकर वहां से शिवबुलान चले गये मार्ग में आये हुये अनेक वन तथा गह्वर पर्वत कन्दराओं को पार करते हुये आप अत्यन्त भयङ्कर बिलोचिस्थान पहुंचे। वहां पर भी प्रचार करते हुये अन्त में पश्चिम दिशा को जीत कर भारत के लिये लौट पड़े जिस मार्ग से पहिले आये थे उसी से फिर लौट कर पेशावर आगये। इसी समय माता का सन्देश लेकर वहाँ पर आये हुये धर्मचन्द्र को देख कर भगवान् कहने लगे कि माता को छोड़ कर इस समय यहां पर क्यों आये हो ? जो कुछ सन्देश माता जी ने भेजा है उसे कहो, भगवान् की यह आज्ञा पाकर धर्मचन्द्र ने कहा कि भगवन् !! विक्रम सवत् १५९६ की आश्विन वदी दशमी के दिन आपको याद करते करते आपके पिता जी परलोक सिधार गये उनके वियोग में अत्यन्त

दुःखित आप की माता आपको देखना..चाहती हैं इसलिये यहां से आप जल्दी उनके पास चलिये और उनको धैर्य पूर्वक सान्त्वना दीजिये ॥ ९१—१०० ॥

भवानेवाधुना तस्याः प्राणाधारः परं बलम् ।
शरण्यः सर्वलोकानां भक्तानुग्रहकारकः ॥ १०१ ॥
निशम्येदं वचस्तस्य धर्मचन्द्रस्य धीमतः ।
उवाच मुनिरप्राप्तं किमपि प्रतिचिन्तयन् ॥ २ ॥
धैर्यावलम्बनं मातुस्त्वया पूर्वं विधीयताम् ।
अहमप्यागमिष्यामि गतानुगतिकक्रमात् ॥ ३ ॥
मुनेरिदं वचः श्रुत्वा निवृत्ते मातुरन्तिकम् ।
धर्मचन्द्रे मुनिस्तत्र कृतवान्समयोचितम् ॥ ४ ॥
भक्तानुपस्थितानत्र वियोगबहुदुःखितान् ।
सान्त्वयित्वा कथमपि प्रतस्थे भगवानितः ॥ ५ ॥
मार्गागतेषु नगरेष्वयमागतसज्जनान् ।
निबोधयन्धर्मतत्वं प्रपेदे मातुरन्तिकम् ॥ ६ ॥
ग्रामाद्बहिः कृतावासं निशम्य निजमात्मजम् ।
वियोगविधुरा सद्यः प्रपेदे जननी जवात् ॥ ७ ॥
समायातां मुनिर्दृष्ट्वा मातरं शोकविह्वलाम् ।
उवाच भगवत्यम्ब ! किमर्थमसि दुःखिता ॥ ८ ॥
या गतिः पुण्यशीलानां धर्ममार्गानुवर्तिनाम् ।
तामेव समनुप्राप्तः पतिस्ते जनको मम ॥ ९ ॥
शिवा भवन्तु पन्थानस्तस्य धर्मानुवर्तिनः ।
तत्राप्यम्ब ! शिवः पन्था भवितास्ति न संशयः ॥१०॥
एवमाश्वासनपरैर्वचोभिः परिसान्त्वयन् ।
शिवावतारः श्रीचन्द्रो मातरं बह्वमन्यत ॥११॥

मातापि तस्य वचनैर्दर्शनैरमृतोपमैः ।
परां निर्वृतिमापेदे न सस्मार गतं पतिम् ॥१२॥

इस समय उनके आपही एक मात्र अवलम्ब हैं और आप ही प्राण रक्षक तथा आश्रय देने वाले हैं इस प्रकार की धर्मचन्द्र की बात सुनकर आप कुछ देर तक ध्यानस्थ होकर कहने लगे कि मेरे वचन से आप पहिले माता के समीप चले आप के पीछे मैं भी आता हूं आप की यह आज्ञा पाकर धर्मचन्द्र माता के पास चले गये। उनके जाने पर भगवान् कुछ दिन वहां ठहर कर अपने भक्तों को समझाते हुये यहां से चले, मार्ग में गुजरात स्यालकोट आदि नगरों में होते हुये अन्त में देहराबाबा नानक पहुंचे। आपने ग्राम के बाहर शिंशपा वृक्ष के नीचे आसन लगाया। आपके आते ही आपकी माता आपके पास पहुंचीं। माता जी को देख कर भगवान् उनसे कहने लगे कि माता जी आप क्यों इस प्रकार दुःख प्रकट करती हैं। आपके आराध्य पति देव और हमारे पिता तो उत्तम लोक को प्राप्त हो गये हैं। उनके मार्ग कल्याण पूर्ण हों और उनके पीछे आपका भी मार्ग कल्याण पूर्ण हो इस प्रकार माता जी को सान्त्वना देकर आप निवृत्त हुये और आपकी माता भी आपसे सान्त्वना पाकर आपके दर्शन से पति वियोग जन्य दुःख को भूल गईं॥ १—१२॥

भगवानपि तत्रत्यपर्वतीयजनव्रजे ।
धर्मप्रचारकं शिष्यं योजयामास सत्वरम् ॥१३॥
शिंशपातरुमुत्सृज्य कृतावासं निजेच्छया ।
तदन्यशिंशपावृक्षे निजावासमकल्पयत् ॥१४॥
दिनानि कतिचित्तत्र वसन्पञ्चवटीतटे ।
भक्तैः प्रकल्पितां पर्णकुटीं मुनिरुपागमत् ॥१५॥
अत्रापि कृतसंवासो हरद्वारदिदृक्षया ।
बहुभिः सज्जनैः सार्द्धं प्रतस्थे भगवान्मुनिः ॥१६॥
ग्रामेषु मार्गसंस्थेषु नगरेषु वनेष्वपि ।
निवसन्नयमेकान्ते धर्ममार्गमवर्धयत् ॥१७॥

जलन्धरपुरप्रान्ते ग्राममेकमुपेत्य सः ।
विशुष्कं शिंशपावृक्षं दर्शनाद्धरितं व्यधात् ॥१८॥
इतो यथाक्रमं गच्छन्हरद्वारमुपागतः ।
मुनिः कनखलं प्राप्य विशश्राम सरित्तटे ॥१९॥
सनत्कुमारस्यमुनेराश्रमे निवसन्नयम् ।
शिष्यैः सह कृतालापः साधुकालमयापयत् ॥२०॥

इधर आप भी कांगड़ा के पर्वतीय प्रान्तों में धर्म प्रचार के लिये अपने शिष्य कमलदास को नियुक्त कर एक शिंशपा वृक्ष को छोड़कर दूसरे शिंशपा वृक्ष के नीचे ठहरे। यह दोनों स्थान आज तक इस प्रान्त में प्रसिद्ध हैं। यहां कुछ दिन ठहरकर आप पञ्चवटी के पास एक पर्णकुटी में रहे। यह स्थान वट साहब के नाम से अब भी पञ्जाब में प्रसिद्ध है। यहां पर भी कुछ काल तक निवास कर आप वारठ ग्राम में पहुंचे। कुछ दिन यहां पर ठहर कर यहां से भी आपने हरद्वार जाने का निश्चय किया। पूर्वोक्त चारों स्थान जिला गुरुदासपुर में प्रख्यात हैं। हरद्वार के जाने के समय आपने प्रत्येक नगर और ग्राम में ठहर २ कर धर्म प्रचार किया। जिला जालंधर के पास दौलतपुर ग्राम में ठहरकर आपने दर्शन मात्र से एक सूखे शिंशपा वृक्ष को हरा भरा कर दिया। यहां से भी धीरे २ चलकर आप हरद्वार पहुंचे। यहां कनखल में भागीरथी के तट पर सनत्कुमार मुनि के पुण्याश्रम में आपने अपने शिष्यों के साथ कुछ समय तक निवास किया। उदासीन मार्ग के प्रधान आदिम आचार्य श्री सनत्कुमार मुनि प्रायः कनखल में ही रहा करते थे, इस कारण यह स्थान साम्प्रदायिक दृष्टि से ऐतिहासिक तथा परम पवित्र माना जाता है ॥ १३-२० ॥

इतो यावदयं शिष्यैः सहान्यत्र रुचिंव्यधात् ।
तावदभ्यागतः कश्चिद्ब्रह्मनेऽस्य मुनेः पुरः ॥२१॥
समागतं सिन्धुदेशाद्रामचन्द्रमवस्थितम् ।
मुनिः पप्रच्छ देशस्य ज्ञातवृत्तोपि संस्थितिम् ॥२२॥
स दीनतामनुप्राप्तां देशस्य बहु दर्शयन् ।
मुनिं तत्र प्रचाराय प्रार्थयामास दुःखितः ॥२३॥

मुनिस्तत्सर्वमाकर्ण्य तदागमनकारणम् ।
तमेनमाह करुणारुणया मुदितो दृशा ॥ ४१ ॥
यस्या दर्शनमुद्दिश्य भगवत्यास्त्वमागतः ।
सा सर्वजगतां माता वन्दनीया सुरासुरैः ॥ ४२ ॥
यद्यत्रैव समागत्य स्वेनरूपेण दर्शनम् ।
दद्यात्तदा किमर्थस्ते दूराध्वगमनश्रमः ॥ ४३ ॥
इदं वचनमाकर्ण्य मुनेर्विस्मितमानसः ।
सद्यो भक्तगिरिस्तत्र विशश्राम मुनेस्तटे ॥ ४४ ॥
भगवत्प्रेरिता सापि भवानी समुपागता ।
नतं भक्तगिरिं प्राह करुणारुणवीक्षणा ॥४५॥
यदि ते हृदये वाञ्छा कल्याणपथगामिनी ।
वरीवर्ति तदा दासो भवास्य मम शासनात् ॥४६॥
अयं साक्षान्महादेवो जगदुद्धर्तुमागतः ।
अस्यैव शासनादत्र समायातास्मि सत्वरम् ॥४७॥
एवमुक्त्वा भगवती हिङ्गलाजपदस्थिता ।
बभूवान्तर्हिता सद्यो भक्तमुद्धर्तुमागता ॥४८॥
दृष्ट्वाद्भुतं चमत्कारं मुनेरस्य स मागधः ।
सद्यः शिष्यत्वमापेदे मुनिमार्गमनुव्रजन् ॥४९॥
भगवानपि विश्वात्मा विधाय समुपागतम् ।
शिष्यमेनं निजाम्नायरहस्यं समबोधयत् ॥५०॥

जिन दिनों में आप यहां पर विराजमान थे उन्हीं दिनोंमें मगधदेश का रहने वाला एक भक्तगिरि नामक तान्त्रिक अपने ३६० शिष्यों के साथ हिङ्गलाजदेवी के दर्शनार्थ जारहा था वह आपकी कीर्ति सुनकर अपने समस्त शिष्यों के साथ आपके दर्शनार्थ आरहा था। उसके साथ रामरत्न नामक एक तान्त्रिक था जो आपकी कीर्ति सुनकर अपने मनमें जलता था और साथ ही मार्ग में जाने वाले अन्य सज्जनों

को झूठी२ बातें सुनाकर भटकाता था। दैवयोग से उसको एक दिन सोमदेव के साथ मिलने का अवसर मिला। सोमदेव ने उसको अनेक प्रकारों से समझाकर आपके समीप आने के लिये उसको बाध्य किया। अन्त में वह भक्तगिरि के साथ२ आपके पास पहुँच गया, आपके स्वागताचार को देखकर वह चित्र-लिखित जैसा होगया। भगवान्ने भक्तगिरिसे इधर आनेका कारण पूछा, भक्तगिरि ने भी आपके पूछने पर अपना समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। सुनकर भगवान् भक्तगिरि से कहने लगे कि जिस हिंगलाज देवी के दर्शनार्थ आप वहा जारहे हैं, वह देवी यदि यहीं आकर दर्शन दे देवें तो वहा जाने का कष्ट आप क्यों उठाते हैं ? आपकी यह आश्चर्यभरी वाणी सुनकर भक्तगिरि आपके पास ही ठहर गया। रात्रि बीतने पर प्रातःकाल होते ही भगवती ने आकर भक्तगिरि को दर्शन देकर कहा कि—यदि आप अपना कल्याण चाहते हैं तो मेरे कथन से आप इनके चरणों का दास्य अङ्गीकार करें। ये साक्षात् भवानीपति भगवान् शङ्कर हैं, जगत् का उद्धार करने के लिये इस रूप में अवतीर्ण हुये हैं। इनके कथन से ही मैं यहा पर उपस्थित हुई हूँ। इतना कहकर देवी अन्तर्हित होगई। भगवान् का यह अद्भुत चमत्कार देखकर भक्तगिरि भगवान् से शिष्य होने की इच्छा प्रकट करने लगा, अन्त में भगवान् ने भी उदासीन प्रथा की दीक्षा देकर भक्तगिरि को, भक्त भगवान्के नाम से प्रख्यात कर अपने आगम का समस्त रहस्य समझा दिया। [भक्तगिरि के साथ जो ३६० शिष्य थे, वे भी अन्त में उदासीन बनकर अपने अपने नाम से ३६० उदासीन मठों के अध्यक्ष हुये, यह सब कार्य अविनाशी मुनि के सत्य सङ्कल्प से ही पूर्ण हुआ] ॥ ३२—५० ॥

[युग्मम्]

यानि यानि रहस्यानि मुनिनानेन नामतः ।
कथितानि समासेन सनातनपथानुगे ॥५१॥
तानि सर्वाणि दिग्यात्रानन्तरं वदनान्मुने ।
श्रोतव्यान्यग्रसर्गेषु समभाणानि सज्जनैः ॥५२॥
सूचनामेवमादिश्य सोमदेवमुखोद्गताम् ।
मुनिरत्र निजोद्देश्यसाधनाय कृतिं व्यधात् ॥५३॥

मुनिस्तत्सर्वमाकर्ण्य तदागमनकारणम् ।
तमेनमाह करुणारुणया मुदितो दृशा ॥ ४१ ॥
यस्या दर्शनमुद्दिश्य भगवत्यास्त्वमागतः ।
सा सर्वजगतां माता वन्दनीया सुरासुरैः ॥ ४२ ॥
यद्यत्रैव समागत्य स्वेनरूपेण दर्शनम् ।
दद्यात्तदा किमर्थस्ते दूराध्वगमनश्रमः ॥ ४३ ॥
इदं वचनमाकर्ण्य मुनेर्विस्मितमानसः ।
सद्यो भक्तगिरिस्तत्र विशश्राम मुनेस्तटे ॥ ४४ ॥
भगवत्प्रेरिता सापि भवानी समुपागता ।
नतं भक्तगिरिं प्राह करुणारुणवीक्षणा ॥४५॥
यदि ते हृदये वाञ्छा कल्याणपथगामिनी ।
वरीवर्ति तदा दासो भवास्य मम शासनात् ॥४६॥
अयं साक्षान्महादेवो जगदुद्धर्तुमागतः ।
अस्यैव शासनादत्र समायातास्मि सत्वरम् ॥४७॥
एवमुक्त्वा भगवती हिङ्गलाजपदस्थिता ।
बभूवान्तर्हिता सद्यो भक्तमुद्धर्तुमागता ॥४८॥
दृष्ट्वाद्भुतं चमत्कारं मुनेरस्य स मागधः ।
सद्यः शिष्यत्वमापेदे मुनिमार्गमनुव्रजन् ॥४९॥
भगवानपि विश्वात्मा विधाय समुपागतम् ।
शिष्यमेनं निजाम्नायरहस्यं समबोधयत् ॥५०॥

जिन दिनों में आप यहां पर विराजमान थे उन्हीं दिनोंमें मगधदेश का रहने वाला एक भक्तगिरि नामक तान्त्रिक अपने ३६० शिष्यों के साथ हिङ्गलाजदेवी के दर्शनार्थ जारहा था वह आपकी कीर्ति सुनकर अपने समस्त शिष्यों के साथ आपके दर्शनार्थ आरहा था। उसके साथ रामरत्न नामक एक तान्त्रिक था जो आपकी कीर्ति सुनकर अपने मनमें जलता था और साथ ही मार्ग में जाने वाले अन्य सज्जनों

को झूठी २ बातें सुनाकर बहकाता था। दैवयोग से उसको एक दिन सोमदेव के साथ मिलने का अवसर मिला। सोमदेव ने उसको अनेक प्रकारों से समझाकर आपके समीप आनेके लिये उसको बाध्य किया। अन्तमें वह भक्तगिरि के साथ २ आपके पास पहुँच गया, आपके स्वागताचार को देखकर वह चित्र-लिखित जैसा होगया। भगवान्ने भक्तगिरिसे इधर आनेका कारण पूंछा,भक्तगिरि ने भी आपके पूछने पर अपना समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। सुनकर भगवान् भक्तगिरि से कहने लगे कि जिस हिङ्गलाज देवी के दर्शनार्थ आप वहां जारहे हैं, वह देवी यदि यहीं आकर दर्शन दे देवें तो वहां जाने का कष्ट आप क्यों उठाते हैं ? आपकी यह आश्चर्यभरी वाणी सुनकर भक्तगिरि आपके पास ही ठहर गया। रात्रि बीतने पर प्रातःकाल होते ही भगवती ने आकर भक्तगिरि को दर्शन देकर कहा कि—यदि आप अपना कल्याण चाहते हैं तो मेरे कथन से आप इनके चरणों का दास्य अङ्गीकार करें। ये साक्षात् भवानीपति भगवान् शङ्कर हैं, जगत् का उद्धार करने के लिये इस रूप में अवतीर्ण हुये हैं। इनके कथन से ही मैं यहां पर उपस्थित हुई हूं। इतना कहकर देवी अन्तर्हित होगई। भगवान् का यह अद्भुत चमत्कार देखकर भक्तगिरि भगवान् से शिष्य होने की इच्छा प्रकट करने लगा, अन्त में भगवान् ने भी उदासीन प्रार्थी की दीक्षा देकर भक्तगिरि को, भक्त भगवानके नाम से प्रख्यात कर अपने आगम का समस्त रहस्य समझा दिया। [भक्तगिरि के साथ जो ३६० शिष्य थे, वे भी अन्त में उदासीन बनकर अपने अपने नाम से ३६० उदासीन मठों के अध्यक्ष हुये, यह सब कार्य अविनाशी मुनि के सत्य सङ्कल्प से ही पूर्ण हुआ] ॥ ३३—५० ॥

[युग्मम्]

यानि यानि रहस्यानि मुनिनानेन नामतः ।
कथितानि समासेन सनातनपथानुगैः ॥५१॥
तानि सर्वाणि दिग्यात्रानन्तरं वदनान्मुनेः ।
श्रोतव्यान्यग्रसर्गेषु सप्रमाणानि सज्जनैः ॥५२॥
सूचनामेवमादिश्य सोमदेवमुखोद्गताम् ।
मुनिरत्र निजोद्देश्यसाधनाय कृतिं व्यधात् ॥५३॥

सहैकादशभिः पुत्रैर्बलिवेदीमुपागतः ।
मातृभूमेः समुद्धर्ता विस्मृतः किं स लक्ष्मणः ॥६६॥
युद्धे विजित्य यवनानिन्द्रप्रस्थरणाङ्गणे ।
शूरः संग्रामसिंहोपि गतः स्वर्गं तव प्रभुः ॥७०॥
त्रयोदशसहस्राणि यया सह चितामगुः ।
वीराङ्गना सा भवता पद्मिनी विस्मृतास्ति किम् ॥७१॥
दुर्दशामनयद्देवी या रणाङ्गणमध्यगा ।
यवनानति दुर्धर्षान्कर्मदेवीमवेहि ताम् ॥७२॥
मेवाडभूमेरुद्धर्ता रक्षकः सर्वभूभुजाम् ।
एकलिङ्गोयमधुना विजयं तव शंसति ॥७३॥
मन्त्री तवायमतुलां सम्पत्तिं समराङ्गणे ।
योजयिष्यति साहाय्यप्रदानाय कृतोद्यमः ॥७४॥
तस्मादुत्तिष्ठ युद्धाय विजयी भव सर्वतः ।
अविलम्बमितो गच्छ शिवः शं ते विधास्यति ॥७५॥
इत्येवमादिभिर्वाक्यैः प्रतापं बहु बोधयन् ।
विरराम मुनिस्तत्र यवनप्रतिमर्दनः ॥७६॥

भगवान् ने महाराणा प्रतापसिंह से कहा कि आप उस सूर्यवंशी रामचन्द्र के वंशधर हैं जिन्होंने महा योद्धा रावण पर भी विजय प्राप्त किया था। आप इस समय इस देश की अवनत दशा को अपने बाहुबल से शीघ्र दूर करें। उत्साही पुरुषों के लिये असम्भव भी सम्भव हो जाता है। इसका दृष्टान्त भगवान् श्री रामचन्द्र ने स्वयं करके दिखलाया है न्याय पथ पर चलने वाले पुरुष के लिये तिर्यञ्च भी सहायक बन जाते हैं इसमें उदाहरण रूप वानरी सेना को लेकर भगवान् का लङ्का पर विजय प्राप्त करना ही है, समस्त यवनों पर विजय प्राप्त करने वाले बप्पाराव जी आपके ही वंश में हुए हैं जिनकी विजय वैजयन्ती गजनी तक फहरा रही थी। दृषद्वती नदी के तट पर संग्राम में जीवन देने वाले वीर समरसिंहजी आपके ही पूर्वजों में हुए हैं। अपनी मातृभूमि की रक्षा के

लिये जिन्होंने अपने ग्यारह पुत्रों के साथ अपने को भी बलिवेदी पर चढ़ा दिया था वे वीर लक्ष्मणसिंह जी क्या आपका स्मृति से उतर गए हैं ? जिन्होंने चित्तौर गढ़ में अपना पराक्रम दिखाकर देहली के मैदान में अपने पराक्रम से यवनों को मार कर देहली अपने अधिकार में कर ली थी वे आपके दादा राणा संग्रामसिंह जी क्या आपके स्मरण में नहीं रहे ? अपने धर्म की रक्षा के लिये जिसने १३००० तेरह सहस्र वीर क्षत्राणियों के साथ अपना जीवित शरीर धधकती हुई चिता में भस्म कर दिया था उस वीराङ्गना पद्मिनी को क्या आप भूल गए हैं ? समर में जिसने कुतुबुद्दीन को हराकर अपना बल सर्वत्र विख्यात कर दिया उस कर्मदेवी को आप स्मृति पथ पर लाइये । मेवाड़ प्रान्त के एकमात्र अध्यक्ष सबके रक्षक भगवान् एकलिङ्गेश्वर इस समय आपका विजय देखना चाहते हैं, ऐसी अवस्था में आपको चिन्ता किस बात की है । यह जो आपके मन्त्री भामाशाह आपके साथ आए हुए हैं इनके पास अतुल सम्पत्ति विद्यमान है । आपके समराङ्गण में आने पर यह सब सम्पत्ति देश जाति और धर्म की रक्षा के लिये आपको अर्पण कर देंगे । इसलिये आप इस समय युद्ध के लिये उठिये । सब ओर से यवनों पर विजय प्राप्त कीजिये । यहां से अविलम्ब प्रस्थान कीजिये भगवान् शङ्कर आपका कल्याण करेंगे । इस प्रकार आपने महाराणा प्रताप का भलीभांति समझाकर अपना कथन समाप्त किया ॥ ६३—७६ ॥

प्रतापोपि मुनेर्वाक्यमाकर्ण्य बहुविस्मितः ।
भवदुक्तं करिष्यामीत्युक्त्वा मुनिमभाषत ॥७७॥

यस्मिन्वंशे मत्जन्म ममभून्मुनिसत्तम ।
तमहं श्रोतुमिच्छामि भवान्वदतु विस्तरात् ॥७८॥

वाक्यमेतत्प्रतापस्य समाकर्ण्य यथाक्रमम् ।
वंशं निवोधयामास मुनिरेवं मिताक्षरैः ॥७९॥

रामो दाशरथिः सीतामुद्वाह्य जनकात्मजाम् ।
सुतौ लवकुशौ नाम जनयामास धर्मतः ॥८०॥

आपने कहा कि यवन साम्राज्य का अब अन्तिम समय आगया है। घब हाने की कोई बात नहीं है। साहस पूर्वक अपने आपको उन्नति के मार्ग पर ले चलिये। चन्द्र वंश में उत्पन्न धनराय आजकल बहुत से शूरवीरों के साथ युद्ध का आयोजन एकत्र कर रहा है। आपके वंशधर जो कि आजकल महाराष्ट्र देश में जाकर बसे हैं उनकी दसवीं पीढ़ी में एक बालक जन्म लेगा। हमारी प्रेरणा से एक साधु उस बालक का सहायक होगा और काश्मीर में जाकर वह बालक मेरे शिष्यों से मिलेगा। इस प्रकार यह दोनों सूर्य चन्द्र वंश आपस में मिलकर यवन साम्राज्य को उच्छिन्न करेंगे। इतना भविष्य कहकर भगवान् हारीत मुनि के आश्रम में जाकर समाधिस्थ हुए और महाराणा प्रताप वहां से उदयपुर चले गये॥ ९०—९५॥

प्रसङ्गादित उत्थाय भगवानधिकप्रभः।
राजस्थानगतं योद्धपुरं सत्नरमभ्यगात् ॥९६॥
तत्रापि तत्पुराधीशमुपेत्य विजयोचितम्।
सर्वं निबोधयामास दिव्यमायोधनक्रमम् ॥९७॥
बीकानेरादिषु पुनः समीपनगरेष्वयम्।
भ्रमन्नवाप काश्मीरप्रदेशं भूसुरालयम् ॥९८॥
हरिदत्तसुतं तत्र कमलामनमागतम्।
शिष्यतामयमानीय कृतकृत्यमकल्पयत् ॥९९॥
अयमेव मुनेः शिष्यः काले बहुतिथेगते।
अलिमत्तपदं लेभे गुरुत्वं मुनिसत्कृतः ॥२००॥

कुछ समय के अनन्तर भगवान् यहां से जोधपुर गए। वहां जाकर सामयिक राजा से युद्ध सम्बन्धी विषयों में परामर्श करके बीकानेर पहुंचे। यहां के आस पास के नगरों में भ्रमण करते करते प्रभाव डालते हुए काश्मीर पहुंच गए। वहां पहुंचकर आपने पण्डित हरिदत्तजी के पुत्र कमलासन को विक्रम संवत् १६३१ में अपना शिष्य बनाया। इनका जन्म श्रीनगर में प्रभावती देवी की कुक्षि से हुआ था। यही कमलासन बहुत समय बीतने पर अलिमत्त मुनि के नाम से प्रख्यात हुआ। [भगवान् ने इनको प्रसन्न होकर वर दिया कि भविष्य में जाकर तुम

इस सम्प्रदाय के प्रधान पुरुष तथा विजयी होंगे और तुम्हारे शिष्यों को समस्त सिद्धियां प्राप्त हुआ करेंगी] ॥ ९६—२०० ॥

अस्यानुजो बालकृष्णः सतीर्थ्योऽस्य मुनेः पुरा ।
प्रासादादपतद्भूमौ कालेन कवलीकृतः ॥२०१॥
तमादाय मृतं सर्वे मुनेरस्य पुरो भुवि ।
विन्यस्य बहुदुःखार्ता रुरुदुः सहपाठिनः ॥ २ ॥
पुरोगतमिमं वीक्ष्य गतप्राणं दयाकुलः ।
मुनिराह न मन्येऽहमेनं मृतमुपस्थितम् ॥ ३ ॥
बालोयं भवतां वाचमाकर्ण्य बहु विस्मितः ।
हसतीव जनाः सर्वे पश्यन्तु नवजीवनम् ॥ ४ ॥
निशम्य भगवद्वाक्यमेवं विधमुपद्रुताः ।
जनाः सर्वे पुनः प्राप्तजीवन बहु मेनिरे ॥ ५ ॥
मातास्य बालकृष्णस्य मरणाद्बहुदुःखिताः ।
मुनेः प्रसादतः प्राप्तजीवनं तमुपागमत् ॥ ६ ॥
तवायं न ममेत्युक्त्वा तमिमं प्राप्तजीवनम् ।
मुनेरुपान्ते विन्यस्य मुनिमाह नतानना ॥ ७ ॥
दासमेनं भवानेव शिष्यतां नयतु प्रभुः ।
भवत्कृते मयालब्धः पुत्रोयं यमसादनात् ॥ ८ ॥
अभ्यर्थनां बान्धवानामङ्गीकृत्य मुनीश्वरः ।
बालकृष्णमिमं बालहासतामनयत्क्षणात् ॥ ९ ॥

कमलासन के सहोदर भाई एक पण्डित बालकृष्ण जी थे जो भगवान् के साथ पढ़ने के कारण सतीर्थ्य भी थे। वह विद्यालय मे ही छत से गिर कर मर गये थे। उनको सहपाठियों ने आपके समक्ष में रखकर दुःख प्रकट किया। आपने उनको दयार्द्र दृष्टि से देखकर सहपाठियों से कहा कि यह तो बालक की तरह हस रहे हैं इनको आप लोग मरा न समझिये। इनको जाकर देखिये ये

जीवित हैं। आपकी इस कौतूहल पूर्ण बात को सुनकर सब लोग चकित हुये और बालकृष्ण को फिर उन्होंने जीवित पाया। माता प्रभावती ने जब यह संवाद सुना तब वह आपके पास आकर कहने लगी कि अब यह बालक आपका ही है आपने ही इसको नवजीवन प्रदान किया है इसलिये आप इसको अपना शिष्य बनाइये, माता का आग्रह देखकर आपने उसको अपना शिष्य बनाया और बालहास के नाम से उसको सर्वत्र प्रख्यात कर दिया ॥ १—९ ॥

कालान्तरे मुनिवरं काश्मीरविषयस्थितम्।
समाकर्ण्य समायातो जयदेवः प्रतापवान् ॥१०॥
मुनेः सविधमागत्य सभार्यः स सुतद्वयम्।
अनपत्योऽर्थयामास वंशक्षयभयाकुलः ॥११॥
मुनिस्तद्वासनामीक्ष्य निदानं सुतयोर्द्वयोः।
वरन्ददौ तत्प्रभावादस्यापत्यमभूद्द्वयम् ॥१२॥
तयोर्ज्येष्ठं स्वमनसा जननी दातुमुद्यता।
कनिष्ठं तत्पिता दातुं मुनये समुपागमत् ॥१३॥
एवमन्योन्यसद्भावफलतस्तावुभौ सुतौ।
मुनेरस्य तदा तत्र सत्वरं शिष्यतां गतौ ॥१४॥
आद्यो गोविन्ददेवोभूत्पुष्पदेवस्तदुत्तरः।
उभावपि मुनेः शिष्यौ विश्रुतौ भुवनत्रये ॥१५॥
द्वयोरप्यनयोः शिष्यपारम्पर्यक्रमाद्भुवि।
बहवो मुनयः सिद्धा रामदेवादयोऽभवन् ॥१६॥

कुछ समय बीतने पर भगवान को काश्मीर में आया हुआ सुन कर अपनी धर्मपत्नी सुभद्रा देवी के साथ जयदेव जी आपके पास पहुंचे, पहुंच कर आप से दो पुत्र होने का वरदान मांगा। आपने भी उनकी सच्ची वासना देख कर दो पुत्र होने का वरदान दिया। वरदान के प्रभाव से जयदेव जी के दो पुत्र हुये। उन दोनों में बड़े पुत्र को माता ने और कनिष्ठ पुत्र को पिता ने अपने अपने मन में भगवान् को अर्पण करने के लिये सङ्कल्प कर लिया था दैवयोग से दोनों पुत्रों को

लेकर दोनों महानुभाव भगवान् के पास पहुंच कर अपना अपना सङ्कल्प कहने लगे उनकी प्रार्थना स्वीकार करके भगवान् ने उन दोनों पुत्रों को अपना शिष्य बनाया जिनमें एक का नाम गोविन्ददेव और दूसरे का नाम पुष्पदेव है। यह दोनों भगवान् के शिष्य ससार में सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। इन दोनों की शिष्य परम्परा में रामदेव आदि अनेक सिद्ध मुनि हुये जिनका कार्यक्रम आज तक भारत में अविरत रूप से चल रहा है। कार्य क्रम का विस्तृत विवरण इस महा काव्य के अन्तिम सर्ग में मिलेगा ॥ १०—१६ ॥

भगवानत्र काश्मीरविषये कतिचित्समाः।
अलौकिकचमत्कारैर्यापयामास दैवतः ॥१७॥
एकदा ध्यानमग्नोयं दिव्यदृष्ट्या विलोकयन्।
निमग्नं विपदां सिन्धौ सिन्धुदेशं दयानिधिः ॥१८॥
तदुद्धाराय सन्त्यज्य काश्मीरविषयं जवात्।
तदेवनगरं प्राप सिन्धौ यत्र पुरावसत् ॥१९॥
निहिताग्निः स पञ्चाग्निमध्यगः समुपागतम्।
जनव्रातं विलोक्यादौ पप्रच्छ कुशलं सताम् ॥२०॥
ते विलोक्य मुनिं तत्र रुरुदुर्बहुपीडिताः।
यवनैः पापनिरतैः कदाचारप्रवर्तिभिः ॥२१॥
दशामेवंविधां वीक्ष्य तेषां मुनिरुपागतः।
सान्त्वयामास मधुरैर्वचनैरतिपीडितान् ॥२२॥
यदा ते सान्त्वनां प्राप्य मुनिदत्तां विशश्वसुः।
तदा मुनिस्तानवदद्धैर्यमालम्ब्यतां जनैः ॥२३॥

भगवान् काश्मीर में कुछ दिन ठहर कर इसी प्रकार के अनेक चमत्कारों से जगत् को चमत्कृत करते रहे। एक दिन अकस्मात् आपने समाधिकाल में सिन्ध की दुर्दशा का निरीक्षण किया था इस कारण समाधि से निवृत्त होते ही आप उसके पुनरुद्धार के लिये काश्मीर छोड़ कर सिन्ध के नगर ठट्ठा में पहुंचे। वहां पहुंच कर आपने उसी स्थल पर धूनी लगाई जहां कि पहिली बार आकर लगा

चुके थे। पञ्चाग्नियों की मध्यस्थली में पद्मासन जमा कर आपने अपना कार्य क्रम चलाते हुये आगत सज्जनों से कुशल पूछा उन्होंने आपके समक्ष यवनों का त्रास कहते कहते दीन भाव से रुदन करना आरम्भ किया भगवान् ने उनकी यह दयनीय दशा देखकर उनको सान्त्वना दी और बहुत कुछ समझा कर शान्त किया जब वे शान्त हुये तब आपने आजस्वी शब्दों में उनको कुछ उपदेश दिया जिसका उपक्रम इस प्रकार है ॥ १७—२३ ॥

नायं वैक्लव्यसमयः सज्जा भवत सज्जनाः ।
परीक्षासमयः प्राप्तो भवतां धर्मनिर्णये ॥२४॥
धर्मः प्राणपणेनापि रक्षणीयः प्रयत्नतः ।
प्राणाधिको यतः प्रोक्तो धर्मः पूर्वजसज्जनैः ॥२५॥
धर्मं विहाय सहजं यदि जीवितुमिच्छथ ।
वृथैव जीवनं तर्हि मन्मते भवतामिदम् ॥२६॥
भवद्विधा धर्मवीराः प्राणिनो धर्महेतवे ।
सर्वस्वमपि सन्त्यज्य धर्मं रक्षन्ति संततम् ॥२७॥
बलिवेदीमधिष्ठाय मृत्युमाह्वयत स्वयम् ।
यद्भयेन निजं धर्मं नाशयन्तीह कातराः ॥२८॥
अवश्यम्भावि मरणं मत्वा भवत सज्जनाः ।
स्वधर्मरक्षणे सज्जाः समयोयमुपागतः ॥२९॥
मन्दिराणि समुद्घाट्य देवपूजा विधीयताम् ।
घण्टाघोषः प्रतिदिनं मन्दिरेषु निवेश्यताम् ॥३०॥
आयान्तिचेत्तं निरोद्धुं शत्रवः केपि दुर्मदाः ।
सद्यो बलिप्रदानेन प्रेष्यन्तां ते सुरालयम् ॥३१॥
धर्मयुद्धे मरिष्यन्ति ये जना मम शासनात् ।
तेषामहं समुद्धर्ता भविष्यामि न संशयः ॥३२॥

एवं बहुविधैर्वाक्यैर्बोधयन्नुपसङ्गतान्।
गृहेषु प्रेषयामास शाम्भवोऽग्निरिवासहः ॥३३॥

आपने कहा सज्जनो !! यह समय धैर्यावलम्बन का है घबराहट का नहीं, इस लिये हर प्रकार का कष्ट सहन करने के लिये तैयार होजाओ धर्मरक्षा के लिये यह समय आपकी परीक्षा लेने के लिये आया है प्राणों की बाजी लगाकर इस समय धर्म की रक्षा करनी होगी। क्योंकि प्राणों के मूल्य से धर्म अधिक मूल्यवान् है। धर्म को छोड़कर यदि आप अपने जीवन की इच्छा रखते हों तो मेरी अनुमति से जीवन रखना व्यर्थ है। आप जैसे धर्मवीर धर्म के लिये सर्वस्व देकर भी पूर्वकाल से धर्म की रक्षा करते चले आ रहे हैं। आप लोग धर्म रक्षा के लिये बलिवेदी पर चढ़कर स्वयं मृत्यु का आवाहन करें, जिस मृत्यु के भय से कातर जन अपना धर्म छोड़ देते हैं, मरण अवश्यम्भावी है ऐसा समझकर अपने धर्म की रक्षा के लिये सन्नद्ध हो जाओ। परीक्षा का समय निकट आ गया है। अपने अपने मन्दिर खोलकर देवताओं की पूजा आरम्भ करो। मन्दिरों में प्रति दिन घण्टा घोष करो उसके रोकने के लिये यदि आपके शत्रु आवें तो आप उनको बलिदान देकर शीघ्र सुरपुर भेजें। जो सज्जन धर्म युद्ध में मेरे कथन से मृत्यु को प्राप्त होंगे उनका उद्धार मैं स्वयं करूंगा। इस प्रकार उनको उपदेश देकर आपने उन आगत जनों को अपने अपने घर भेज दिया ॥२४—३३॥

गृहेषु ते वीरवरा धर्मयुद्धमभीप्सवः।
भेरीपटहशङ्खोत्थैर्निनादैः खमपूरयन् ॥३४॥
आकर्ण्य यवनास्तत्र निनादं घोरनिःस्वनम्।
चुक्षुभुश्चुक्रुशुः पापाः पराभवपदं गताः ॥३५॥
ते मन्दिरोदरगतानाहूय बहुमञ्जुलान्।
कथयामासुरादेशात्कस्येयं क्रियते कृतिः ॥३६॥
तेऽवदन्निदमागत्य मन्दिरेभ्यः पुरोगतान्।
मुनेर्धर्मगुरोराज्ञावर्ततेताहशी शिवा ॥३७॥
समाकर्ण्य वचस्तेषामेवंविधमुपद्रुताः।
यवनास्तेऽवदन्यस्य बलमालम्ब्य निर्भयाः ॥३८॥

भवन्तः प्राणदण्डार्हमेतत्कुर्वन्ति सोऽधुना ।
विक्षिप्तएव भवतां नाशाय समुपस्थितः ॥३६॥
एवंविधं वचस्तेषां यवनानां निशम्य सः ।
मुनिराह क्षणादेव ज्ञातमेतद्भविष्यति ॥४०॥
अहमस्मि भवन्तो वा विक्षिप्ता इति निर्दिशन् ।
हुङ्कारमकरोत्तीव्रं दहन्निव जगत्त्रयम् ॥४१॥
तेन हुङ्कारमात्रेण सद्यस्तद्देशशासकः ।
निजाघातगतप्राणो विक्षिप्तो यवनोऽभवत् ॥४२॥
आश्चर्यमिदमालोक्य सद्यो जातं गतासवः ।
अभूवन्यवनाः प्रायो मुनेरस्य महात्मनः ॥४३॥
एवामत्रत्ययवनप्रभावं बहु मर्दयन् ।
मुनिः पञ्चाग्निमध्यस्थो निजधर्ममवर्धयत् ॥४४॥

घरों में जाकर उन उत्तप्त हिन्दू वीरों ने अपने अपने देव मन्दिर खोलकर भेरी पटह शङ्ख आदि वाद्य घोषों से जमीन और आसमान को एक कर दिया। उसको सुनकर हिन्दू द्रोही यवन बहुत क्षुब्ध हुए और मन्दिरों के मालिकों को बुलाकर कहने लगे कि आप लोग किसकी प्रेरणा से ऐसा कार्य कर रहे हैं? यवनों की बात सुनकर हिन्दू सज्जनों ने कहा कि आजकल हमारे धर्म गुरु यहां पर आये हुए हैं। उनकी ही आज्ञा से हम यह कार्य कर रहे हैं। हिन्दुओं की ऐसी निर्भय बात सुनकर वे यवन कहने लगे कि जिनके बल पर निर्भर रह कर आप प्राणदण्ड योग्य यह कार्य कर रहे हैं वे आपके धर्मगुरु पागल हैं और आप लोगों के नाश के लिये यहां पर आये हुए हैं। यवनों की ऐसी उत्तप्त बात सुनकर भगवान् कहने लगे कि जरा ठहरो! अभी मालूम हो जायगा कि पागल कौन है? ऐसा कहकर भगवान् ने एक ऐसा तीव्र हुंकार किया जिससे उस देशका शासक मिरजा सद्यः पागल होगया और अपनी कटारी से अपने को मारकर उसने अपने पापमय जीवन का स्वयं अन्त कर दिया। यह घटना विक्रम संवत् १६४२ में हुई। भगवान् की यह आश्चर्यमयी घटना देखकर सिन्ध के समस्त यवन भयभीत हुए और गतप्राण जैसे होकर इधर-उधर भाग गए। इस प्रकार अपने

प्रभाव से सिन्ध में यवनों के प्रभाव को घटाकर भगवान् फिर पञ्चाग्नि मध्यगत होकर अपना कार्य करने लगे ॥ ३४—४४ ॥

सिन्धुदेशमनुप्राप्तं मुनिमाकर्ण्य भूमिपः ।
प्रतापसिंहो मेवाडभूमितो मुनिमन्वगात् ॥४५॥
अतिक्रम्य निजं देशं मरुसीमानमागतः ।
प्रतापो यावदभवद् व्याकुलः सह सैनिकैः ॥४६॥
तावन्मुनिर्ध्यानदृशा तमायान्तं विलोकयन् ।
मध्येमार्गमदात्स्वप्ने दर्शनं हर्षवर्धनः ॥४७॥
तस्य प्रभावतो नष्ट गमनागमनव्यथः ।
प्रतापस्तत्र शिविरं योजयामास सर्वतः ॥४८॥
शिविरे कृतविश्रामं प्रतापममितप्रभम् ।
अमात्योऽवददागत्य भामहः स्वप्नचेष्टितम् ॥४९॥
भगवन्नद्य शयने शयानं मां प्रबोधयन् ।
अवधूतोऽवदत्स्वप्ने मामिदं यन्निवेद्यते ॥५०॥

इस विचित्र घटना के अनन्तर एक और घटना सुनिये । भगवान् को सिन्ध में आया हुआ सुनकर मेवाड़ से महाराणा प्रताप भगवान् के दर्शनार्थ सिन्ध की ओर आरहे थे । वे मेवाड़ भूमि का अतिक्रमण कर जैसे ही मारवाड़ की सीमा पर पहुंचे वैसे ही उनका समस्त बल समाप्त हो गया । यहां तक आते आते उनके बहुत से सैनिक मुगलों के हाथों से मारे गये । कुछ बचे हुये सैनिकों को साथ लेकर महाराणा भगवान् के पास जाने को उद्यत हुये । इतने ही में ध्यानयोग से भगवान् ने उनको आता हुआ देखकर बीच मार्ग में ही उनको स्वप्नमें दर्शन दिया दर्शन पाते ही महाराणा ने आगे जाना बंद कर वहीं कैम्प डाल दिया । उसी कैम्प में विश्राम करने के समय उनके मन्त्री भामाशाह ने प्रताप के पास आकर अपने स्वप्नका वृत्तान्त कहना आरम्भ किया। आपने कहा-महाराज ! आज शयन में हमको एक अवधूत ने स्वप्न में जगाकर हमसे कुछ बात कही, जो मैं आपके समक्ष इस समय कहता हूं । आप उसे ध्यान पूर्वक सुनिये ! ॥४५-५०॥

अद्यावधि निजं धर्ममनुसृत्य यदर्जितम् ।
तत्सर्वं देशरक्षायै प्रतापाय प्रदीयताम् ॥५१॥
अर्जनं वणिजां धर्मः कथ्यते धर्मकोविदैः ।
धनोपयोगो धर्माय क्रियते धर्मतत्परैः ॥५२॥
भवता धर्ममास्थाय यद्धनं बहु सञ्चितम् ।
देशरक्षामनुस्मृत्य तद्व्ययः प्रविधीयताम् ॥५३॥
एकादश समाः शूरः प्रतापो यवनासुरैः ।
सह मेवाड़विषये घोरं जन्यमयोजयत् ॥५४॥
तत्र तत्कोप निहितं सर्वं धनमुपार्जितम् ।
तत्पूर्वजैः क्षयं प्राप्तं प्रतापस्तेनपीडितः ॥५५॥
अतुला धनसम्पत्तिस्तव कोषे विलोक्यते ।
मया समाधियोगेन भवता सा प्रदीयताम् ॥५६॥
अवाप्य बहु तत्सर्वं प्रतापः परवीरहा ।
यवनासुरनाशाय भविष्यति महद्बलः ॥५७॥
तदिदं तन्निदेशेन मयाद्य भवतां पुरः ।
स्थाप्यते देशरक्षायै तद्गृहाण यथोचितम् ॥५८॥
एवमात्मगतं भावं स्वप्नदृष्टंनिवेदयत् ।
अमात्यो भामहः सर्वं प्रतापाय न्यवेदयत् ॥५९॥
प्रतापोपि तदादाय सर्वं भामहदर्शितम् ।
निजमध्यस्य पुरतः स्वप्नमाह विलोकितम् ॥६०॥

स्वप्न में अवधूत जी मेरे से कहते हैं कि—शाह जी ! आपने अब तक अपने धर्म का पालन करते हुये जो धन कमाया है वह सब देश-रक्षा के लिये महाराणा को दे दीजिये ! धन कमाना वैश्य का धर्म है, उसका उपयोग धर्मरक्षा के लिये होना आवश्यक है। आपने धर्म से जो धन कमाया है, उसका उपयोग इस समय देश की रक्षा के लिये आपको करना चाहिये। ग्यारह वर्ष तक बराबर यवनों के

के साथ युद्ध करते करते महाराणा जी अपने पूर्वजों का कमाया हुआ कोषगत सब धन अन्न तक व्यय कर चुके हैं इसलिये आजकल बहुत चिन्तित हैं। आपके कोष में अतुल सम्पत्ति है-जिसको मैं समाधि में देख रहा हूं आप उसे देने के लिये शीघ्र उद्यत हूजिये ? आपके उस धन को प्राप्त होकर प्रतापी प्रताप यवनों के नाश के लिये समर्थ हो जावेंगे। यह मेरे लिये उनका स्वप्न सन्दिष्ट आदेश है। इस लिये अब आप कृपा करके मेरी इस तुच्छ सम्पत्ति को अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये ग्रहण कीजिये ऐसा कहकर शाहजी ने अपना सब धन महाराणा को दे दिया महाराणा ने भी धन्यवाद पूर्वक उस धन को लेकर अपना स्वमदृष्ट वृत्तान्त शाहजी के समक्ष कहना आरम्भ किया जिसका उपक्रम इस प्रकार है॥ ५१-६०॥

यथाद्य भवताद्दष्टः स्वप्नो निशि तथा मया।
शयने विनिविष्टेन वीक्षितोऽद्भुतकल्पनः॥६१॥
एकलिङ्गे पुराद्दष्टः स योगी शङ्करप्रभः।
मामुपेत्य यथाकालं कथयामास ह्यद्भुतम्॥६२॥
मम पार्श्वे समागत्य किं करिष्यसि भामहः।
मत्प्रेरितो बहु धनं प्रदास्यति पथि स्थितः॥६३॥
तदादाय ममादेशाद्धनमात्मपराक्रमैः।
निपातय बलं सर्वं यवनानां दुरात्मनाम्॥६४॥
त्वादृशाः क्षत्रिया लोके देशरक्षासमुद्यताः।
मयान्येऽपि यथाकालं देशे देशे नियोजिताः॥६५॥
केऽपि पञ्चनदे देशे केऽपि बङ्गेषु दुर्जयाः।
विहारदेशे केऽप्यङ्गे कलिङ्गे केऽपि भूभुजः॥६६॥
मर्दयन्ति बलं सर्वं यवनानां दुरात्मनाम्।
नानाप्रहरणैर्दिव्यैरुपेताः शक्तिशालिनः॥६७॥
त्वमपि प्राप्तसम्पत्तिर्भामहात्रिजदेशजान्।
विमर्दय मृधे शत्रून्विभज्य बलं द्विषाम्॥६८॥

यातायातव्यथाकष्टमतिवाह्य ममाज्ञया ।
मार्गादेव निवर्तस्व कुरु कार्यं मयोदितम् ॥६९॥
एवमादिश्य मां स्वप्ने स योगी मनसि स्थितम् ।
विहायमा समगमत्सिन्धुदेशं शिवप्रभः ॥७०॥

शाहजी ! जिस प्रकार आपने अपने स्वप्न का वृत्तान्त हमको सुनाया है ठीक उसी प्रकार का एक स्वप्न आज रात्रि में हमने देखा है सुनिये !! एकलिङ्ग महादेव के प्राङ्गण में जो योगिराज पहले मिले थे वे स्वप्न में मुझे जगाकर कहने लगे कि मेरे पास आकर तुम क्या करोगे मेरे कथन में भामाशाह मार्ग में ही आपको बहुत सा धन देंगे उसको लेकर आप मेरी आज्ञा से यवनों का समस्त बल नष्ट कीजिये आप जैसे देश रक्षक वीर क्षत्रिय योद्धा हमने अन्य देशों में भी इस समय लगा दिये है कोई पजाब में, कोई बगाल मे, कोई विहार में, कोई अङ्ग और बङ्ग में, कोई कलिङ्ग में यवनों का दर्प दलन कर रहे हैं। आप भी भामाशाह से धन लेकर अपने देश के यवन शत्रुओं का नष्ट कीजिये और उनकी सेनाओं को उच्छिन्न कर देश को निष्कण्टक बनाइये। यहां तक आने का कष्ट न उठाकर मार्ग से ही अपने मेवाड़ को वापिस लौट जाइये और मेरे आदेश का पालन कीजिये ऐसा स्वप्न में हमसे कहकर शिवस्वरूप यह योगी आकाश मार्ग से सिन्ध की ओर चले गये यही हमारा स्वप्न दृष्ट वृत्तान्त है ॥ ६९—७० ॥

तदेहि तन्निदेशेनप्राप्तमेतद्धनं मृधे ।
नियोज्य यवनव्रातं मर्दयावः समागतम् ॥७१॥
इत्यामन्त्र्य महीपालः प्रतापो भामहार्पितम् ।
धनमादाय मेवाड़प्रदेशं पुनरन्वगात् ॥७२॥
तत्र सामन्तभूपालैरनेकैः कृतसत्कृतिः ।
प्रतापः क्षत्रियकुलं युद्धाय समयोजयत् ॥७३॥
विमर्दितरिपुव्रातस्तत्र मेवाड़भूमिपः ।
पुनर्दिदीपे भगवान्भास्वानिव घनोद्गतः ॥७४॥
सेनासन्नाहनिपुणैर्निजसेनाधिपैः सह ।
अवातरद्युद्धभूमिं प्रतापः सिंहविक्रमः ॥७५॥

केषाञ्चित्पातयामास शिरांसि यवनद्विपाम् ।
केषाञ्चिच्चूर्णयामास गदाघातैः स वाहिनीम् ॥७६॥
निकृत्तसेनापतयो यवनाः शरणार्थिनः ।
द्रुतमाहवमुत्सृज्य विविशुर्गिरिगह्वरम् ॥७७॥
उत्खातयवनव्रातः प्रतापो निजविक्रमैः ।
द्वात्रिंशद्दुर्गभूभागान्यवनेभ्यः समाहरत् ॥७८॥
एवमस्य प्रतापेन प्रतापः प्राप्य सत्वरम् ।
मुनेर्विजयमातेने स्वराज्यं पुनरागतम् ॥७९॥
उभयत्र विनिर्गत्य यवनानेवमात्मवान् ।
मुनिः स्वतपसा सिन्धुं कृपासिन्धुरमूमुचत् ॥८०॥

इसलिये अब चलिये उस योगी के आदेश से प्राप्त यह धन युद्ध कार्य में लगा कर हम दोनों यवन साम्राज्य को नष्ट करें ऐसा कहकर महाराणा प्रताप शाहजी का धन लेकर फिर मेवाड़ को वापिस चले गये वहां पहुँच कर आपने झाला जैसे स्वामि भक्त सामन्त सैनिकों से सत्कृत होकर अपने देश के वीर क्षत्रियों को युद्ध में लगा दिया। चारों ओर घमासान युद्ध छेड़ कर शत्रुओं पर निर्दय प्रहार करने वाले वीरवर प्रताप फिर सूर्य की तरह चमक उठे और अनेक प्रकार की व्यूह रचना करने वाले अपने सेनापतियों के साथ स्वयं युद्ध के मैदान मे उतरे, मैदान में उतरते ही प्रताप ने अनेक यवन सेनापतियों के शिर जमीन पर गिरा दिये और लाखों सैनिकों का बात की बात में संहार कर दिया। इस महा युद्ध में बहुत से यवन मैदान छोड़ कर भाग निकले और इधर उधर अपने प्राण बचाने के लिये पहाड़ों में जा छिपे। इस प्रकार यवन साम्राज्य उच्छिन्न कर महाराणा प्रताप ने भगवान् के आशीर्वाद से बत्तीस किले यवनों से छीने। यह सब प्रताप भगवान् का ही था जिसके प्रभाव से महाराणा ने युद्ध में विजय प्राप्त कर मेवाड़ को एक बार फिर स्वतन्त्र बना दिया [भामाशाह के धन से पचीस हजार सैनिक बारह वर्ष तक यवनों से लड़े यह बात इतिहास से स्पष्ट है]॥ आत्मबल सम्पन्न भगवान् इस प्रकार मेवाड़ और सिन्ध में एक साथ यवन

साम्राज्य को उच्छिन्न कर नगर ठट्टा को सर्वदा के लिये यवनों के चङ्गुल से बचा गये ॥ ७१—८० ॥

दुःखान्निवृत्ता भगवत्कृपया सिन्धुवासिनः ।
मुनिमेनममन्यन्त योगिराजं महेश्वरम् ॥८१॥
दिव्यदृष्टिरयं वीक्ष्य समाधौ दुःखकर्षितम् ।
काश्मीरदेशमगमत्तदुद्धाराय सत्वरम् ॥८२॥
तत्र श्रीनगरे श्रीमान् श्रीचन्द्रोयं श्रिया युतः ।
समित्समिद्धमाधाय निजाग्निं तपसि स्थितः ॥८३॥
समागतमिमं तत्र मुनिमाकर्ण्य भक्तितः ।
विष्णुकौलाभिधः कश्चिद्ब्राह्मणः पदमन्वगात् ॥८४॥
शोकाकुलं तमालोक्य ब्राह्मणं पदयोर्नतम् ।
मुनिः पप्रच्छ शोकस्य कारणं सोऽवदन्मुनिम् ॥८५॥
भगवन्नेकपुत्रेयं विधवा ब्राह्मणी सुतम् ।
मृतमादाय भजते श्मशानं पश्य तामिमाम् ॥८६॥
मुनिर्दीनार्तिशमनो विलोक्य विधवां पथि ।
तामुवाच मुधा वत्से किमयं नीयते शिशुः ॥८७॥
वृथा विलपनं मातस्त्यज्य पश्य निजं सुतम् ।
शयानं निद्रया नायं मृतः पश्य तदाननम् ॥८८॥
इत्थं मुनेर्वचस्तस्य समाकर्ण्य यदा सुतम् ।
साऽपश्यद्विधवा तावत्स जीवनमुपागतः ॥८९॥
श्मशानात्समुपादाय जीवितं बालकं यदा ।
गृहं विवेश विधवा तदा जनरवोऽभवत् ॥९०॥

सिन्ध के निवासी यवनों द्वारा प्राप्त हुए अनेक कष्टों से छूटने पर भगवान् को साक्षात् शङ्कर मानने लगे । इसी अवसर में आपने दिव्य दृष्टि से काश्मीर को विपद्ग्रस्त देखा । देखते ही आप उसके उद्धार के लिये नगर ठट्टा से चल

पड़े। [इस काश्मीर में शमसुद्दीन से लेकर याकूब तक तीस यवन शासक हुए। जिन्होंने तलवार के जोर से यहां के हिन्दुओं को मुसलमान बनाया था। केवल ग्यारह घर ही ब्राह्मणों के बाकी रह गए। जो यवनों के अत्याचारों को सहन करते रहे। जिस समय आप वहां पहुंचे उस समय वहां के ब्राह्मणों पर बार पर बार हो रहा था। आपने वहां जाते ही एक विचित्र युग उपस्थित कर दिया] शहर के बाहर धूनी लगाकर आप अपने कार्यक्रम में लग पड़े। आपको आया हुआ सुनकर एक विष्णुकौल नामक ब्राह्मण आपके समीप पहुँचा। आपने उसको शोकग्रस्त देखकर उससे शोक का कारण पूछा। पूछने पर उसने कहा भगवन्! हमारी जाति की एक यह विधवा अपने इकलौते मरे हुए पुत्र का शव लेकर मार्ग में जा रही है कृपया आप इसकी ओर जरा निहारिये। ब्राह्मण की यह दयनीय बात सुनकर भगवान् उस ब्राह्मणी को मार्ग में देखकर कहने लगे कि तुम इस बालक को व्यर्थ क्यों श्मशान ले जा रही हो? विलाप छोड़कर जरा इसकी ओर निहारो। यह नींद में सोया हुआ है, मरा नहीं है, इसका मुख तो खोलकर देखो। भगवान् की यह बात सुनकर उसने जैसे ही उसका मुंह खोल कर देखा वैसे ही वह बालक जी उठा। उस जीवित पुत्र को श्मशान से वापिस लेकर जैसे ही वह घर को ओर चली वैसे ही सर्वत्र शोर मच गया ॥८१—९०॥

अनुगृहीता विधवा मुनिनानेन या सुतम्।
जीवितं पुनरादाय गृहमेतदुपाविशत् ॥९१॥
सर्वैरयं मृतो दृष्टो बालको नगरस्थितैः।
कथं जीवनमापेदे मुनेः करुणया पुनः ॥९२॥
एवमुच्चावचैर्भावैर्नगरस्था महोदयाः।
मुनिमेनममन्यन्त साक्षादीश्वरमागतम् ॥९३॥
अस्मिन्नेवान्तरे तत्र शासको देशवासिनाम्।
याकूव इत्यभिधया प्रथितो यवनेश्वरः ॥९४॥
घटनामीदृशीं सद्यः समाकर्ण्य मुनेः पराम्।
समस्तं ब्राह्मणव्रातमादिदेश यथाबलम् ॥९५॥

भवन्तो मन्निदेशेन ममावासगृहे द्रुतम् ।
समायान्तु विचारोत्र कर्तव्यः कोपि साम्प्रतम् ॥९६॥
आदेशमिममाकर्ण्य तस्य शास्तुर्महोदयाः ।
विष्णुकौलं पुरस्कृत्य मुनिं शरणमागताः ॥९७॥
मुनिस्तानाह कृपया मा भयं भजत द्विजाः ।
ईश्वरादेशतः सर्वं शिवमेव भविष्यति ॥९८॥
सनातनमिमं धर्मं भगवत्परिरक्षितम् ।
न कोपि भुवि शक्नोति विमर्दयितुमुद्धतः ॥९९॥
स्वयमागत्य भगवान्निजं धर्मधनं बलात् ।
रक्षतेऽवतरँल्लोके नानारूपैरनारतम् ॥३००॥

शहर के सब लोग कहने लगे कि इस विधवा पर भगवान् ही ने अनुग्रह किया है जिसके कारण यह अपने मृत पुत्र को जीवितावस्था में लाकर घर आ रही है। हम सब नगरवासियों ने यह इसका पुत्र मरा हुआ देखा था परन्तु भगवान् की कृपा से यह दुबारा जीवन कैसे प्राप्त कर चुका यह हमारी बुद्धि में भी नहीं आता है। इस प्रकार के उच्चावच भावों से व्याप्त शहर के सज्जन भगवान् को साक्षात् ईश्वर समझने लगे। और भगवान् भी इस प्रकार के अनेक कौतूहलों से जनता को जागृत करते हुए अपने कर्तव्य के पालन में लग पड़े। इसी अवसर में इस प्रान्त का शासक याकूब भगवान् की इस अद्भुत घटना को सुनकर घबड़ा गया और शहर के समस्त ब्राह्मणों को बलपूर्वक अपने दरबार में बुलाने के लिये उसने एक आदेश पत्र निकाला। जिसमें लिखा था कि आप सब लोग विचार करने के लिये मेरे दरबार में अवश्य आवें। इस आदेश पत्र के निकलते ही सब ब्राह्मण पण्डित विष्णुकौल को अगाड़ी करके भगवान् के पास गये। भगवान् ने उन सबको देखकर कहा कि भय की कोई बात नहीं है। धैर्य धारण करो। भगवान् की कृपा से सब कल्याण होगा। भगवान् के द्वारा रक्षित इस सनातनधर्म को संसार में कोई नष्ट नहीं कर सकता है। धर्म रूपी अपने धन को भगवान् अनेक रूपों में स्वयं अवतीर्ण होकर अपने बल से सुरक्षित रखते हैं ॥९१—३००॥

विश्वासः क्रियतां सर्वैर्भगवत्यम्बिकापतौ ।
सएवासुरनाशाय समेष्यति पदे पदे ॥२०१॥
सर्वस्वमपि रक्षायै धर्मस्य यदि गच्छति ।
माहाभाग्यं तदा सर्वे जानन्तु पुरतःस्थितम् ॥ २ ॥
अत्याचारपरस्यास्य शासनं कतिचिद्दिनैः ।
लयं यास्यति मा शोकं यात गच्छत तद्गृहम् ॥ ३ ॥
गत्वा स वाच्यो यवनो धर्मस्य परिरक्षिता ।
गुरुरस्माकमायातः साम्प्रतं स भवेद्यदि ॥ ४ ॥
भवद्धर्मपरः सर्वे वयं तदनुगास्तदा ।
स्वयमेव भविष्यामो भवद्धर्मपरायणाः ॥ ५ ॥
एवमादिश्य भगवानागतान्भूसुराग्रगान् ।
प्रेषयामास बलवत्परीक्षायै पुरोगतान् ॥ ६ ॥
तेपि सर्वे गृहं तस्य समेत्य मुनिभाषितम् ।
सर्वं निवेदयामासुः पुरतस्तस्य सङ्गताः ॥ ७ ॥
निशम्य तेषां वचनममात्यमयमादिशत् ।
गच्छ तत्सविधे गत्वा तमानय मदाश्रयम् ॥ ८ ॥
आदेशमिममादाय गतोऽमात्यो मुनेः पुरः ।
न शशाक किमप्यस्य सविधे वक्तुमुत्तरम् ॥ ९ ॥
प्रणम्य पदयोस्तस्य निपत्य तदुपान्तगः ।
सर्वं विलोकयामास मुनेरस्य विचेष्टितम् ॥१०॥

आप लोग अम्बिकापति भगवान् शङ्कर में विश्वास करें वे शङ्कर ही असुरों के नाश के लिये पद पद पर आपकी रक्षा करेंगे । धर्म की रक्षा में यदि आपका सर्वस्व भी नष्ट होता हो तो आप अपना अहोभाग्य समझें । अत्याचार प्रवृत्त इस यावन का शासन कुछ दिनों में ही समाप्त होने वाला है इसलिये अब अधिक चिन्ता मत करो । निर्भय होकर उसके दरबार में जाओ और जाकर कहो कि

हमारे धर्म गुरु यहां पर आये हुये हैं वे यदि आपका धर्म स्वीकार करेंगे तो उनके पीछे हम भी आपका धर्मग्रहण करेंगे। इस प्रकार उन ब्राह्मणों को समझाकर भगवान् ने याकूब के दरबार में भेज दिया वहां जाकर उन ब्राह्मणों ने वही कहा जो उन्हें समझाया गया था। ब्राह्मणों की बात सुनकर याकूब ने अपने दीवान को भगवान् के पास उनको अपने दरबार में लाने के लिये भेजा। दरबार का हुकुम लेकर दीवान भगवान् के पास गया पर कुछ कहने के लिये उसको साहस न हुआ वह उनके चरणों में नतमस्तक होकर आपके पास ही बैठ गया। उसके बैठने पर भगवान् ने एक आश्चर्यमय घटना उपस्थित कर दी ॥ ३०१—३१० ॥

अस्मिन्नमात्यपदवीमुपयाते महोदये ।
मुनेः सविधमागत्य स्थिते दर्शयितुं बलम् ॥११॥
मुनिरभिगतं काष्ठमर्धदग्धं ज्वलन्मुखम् ।
समादाय पुरोस्यैव भूमिमुत्खन्य पार्श्वगाम् ॥१२॥
तस्यां निवेशयामास सत्वरं तद्भुवि स्थितम् ।
वृक्षतामगमच्चेन विलक्षः स पुरोभवत् ॥१३॥
तादृशं वीक्ष्य स मुनेश्चमत्कारं भयाकुलः ।
चित्रन्यस्तइवामात्यो बभूव बहुविस्मितः ॥१४॥
एवं कृतचमत्कारो मुनिर्याकूबदुःखदम् ।
शूलमुत्पादयामास जठरे तस्य कौतुकात् ॥१५॥
शूलवेदनयाक्रान्तः स सत्वरमितो गतम् ।
अमात्यमाह्वयामास सोपि तत्र गतोऽवदत् ॥१६॥
महाशक्तिरयं योगी दिधक्षति जगत्त्रयम् ।
प्रसादनीयः स जवादद्यैव भवता ततः ॥१७॥
अमात्येनैवमुक्तः स समागत्य मुनेः पदम् ।
दर्शनादेव शूलेन मुक्तोऽभवदनुग्रहात् ॥१८॥
विमुक्तशूलः स यदा प्रायश्चित्तं निजागमात् ।
अपृच्छद्यवनः शास्ता तदा मुनिरुवाच तम् ॥१९॥

अतिक्रान्तान्यमर्यादं भवदागः समुन्नतम् ।
नाधुनार्हति दैवेन प्रायश्चित्तमवस्थितम् ॥२०॥
असाध्यतामधिगतो यथारोगो महौषधैः ।
न शाम्यति तथा तेद्य महदागोपि न क्षमाम् ॥२१॥
न्यायालयेभगवतस्त्वेदं शासनं जवात् ।
विलयं प्रगतं यस्य परिणामोयमागनः ॥२२॥
नातः परमिदं राज्यं तत्र शासनमेष्यति ।
भविष्यत्यन्यएवास्य शास्ता भगवता कृतः ॥२३॥
एवं प्रदाय बलवच्छापं तस्मै मुनिद्रुतम् ।
समाधिमगमत्सोपि ममार मुनिशापतः ॥२४॥
समाधियोगे निर्वृत्ते मुनिः काश्मीरदेशतः ।
देशं पञ्चनदं गत्वा कादराबादमन्वगात् ॥२५॥

दीवान भगवान् की सब बातें देखता रहा ज्यों ही दीवान के मन में कुछ अहङ्कार अपने बल में हुआ त्योंही भगवान् ने अपनी धूनी से एक अधजली लकड़ी निकाल कर पास की जमीन में उसको गाड़ दिया। वह कुछ ही देर में हरी भरी होकर वृक्ष के रूप में परिणत होगई। इस आश्चर्य को देखकर दीवान बहुत विस्मित हुआ और भगवान् की ऐसी शक्ति देखकर मन में भय भीत हुआ इस प्रकार भगवान् ने दीवान को चित्र लिखित जैसा बनाकर याकूब के पेट में शूल उत्पन्न कर दिया, शूल के उत्पन्न होते ही याकूब ने दीवान को बुलवाया। उसने वहां जाकर याकूब से कहा कि ये योगिराज बड़े बलवान है। अपने बल से त्रिलोकी को दग्ध कर सकते हैं। इसलिये आप ही जाकर इनको प्रसन्न करना चाहिये। दीवान की ऐसी बात सुनकर याकूब तुरन्त भगवान् के पास गया, भगवान् के दर्शन करते ही याकूब का शूल शान्त हो गया। शूल शान्त होने पर याकूब ने भगवान् से अपने किये हुये पापों का प्रायश्चित्त जब पूछा, तब भगवान् ने याकूब से कहा कि आप पाप मर्यादा का उल्लङ्घन कर चुके हैं इसलिये आपका प्रायश्चित्त नहीं हो सकता है। असाध्य रूप में परिणत रोग जिस प्रकार औषधों से शान्त नहीं हो सकता है उसी प्रकार अब आपका पाप भी क्षमा से शान्त

नहीं हो सकता है, ईश्वर के दरबार में अब आपका शासन काल समाप्त हो गया है। उसका अब अन्त समय उपस्थित है। आपका शासन अब नहीं रहेगा। अब इसका शासक ईश्वर ने और ही नियत किया है। इस प्रकार याकूब को शाप देकर भगवान् समाधिस्थ हुए और याकूब थोड़े समय में मर गया इसी समय में [याकूब के राज्य पर अकबर की सेना ने आक्रमण करके उसके राज्य को दिल्ली में मिला लिया] समाधि से निवृत्त होने पर भगवान् काश्मीर से चलकर पञ्जाब के कादराबाद शहर में, आगये ॥ ११—२५

अत्रापि यवनाधीशो जहांगीरपदाभिधः ।
मुनेर्दर्शनमादातुमायातो लवपत्तनात् ॥२६॥
मुनेः पदाम्बुजं नत्वा बहुशो लवपत्तनम् ।
समानेतुमयं चक्रे मुनेर्नानाविधार्थनाः ॥२७॥
मुनिरप्यस्य सद्भावमधिगत्य तदिच्छया ।
जगाम नियते काले दिव्यं लवपुरं रसात् ॥२८॥
कमलासनमायातं मुनिः सह दिदृक्षया ।
जगाद मम कन्थेयं त्वया कोणे निधीयताम् ॥२९॥
मुनेरादेशतः कोणे कन्थां संस्थाप्य दुर्धराम् ।
आसीनोऽभवदेकत्र तदा स कमलासनः ॥३०॥
सिंहासने निवेश्यायं यवनो मुनिमादरात् ।
तदेकदेशे स्वयमप्याससाद नताननः ॥३१॥
आसीनस्य सुखं तत्र यवनेशस्य दैवतः ।
दृष्टिः पपात कन्थायां या तदाभूद्विलक्षणा ॥३२॥
कदापि सा समभवद्बृहती बहुकम्पिता ।
कदापि तस्य पुरतः संचुकोच यदृच्छया ॥३३॥
कदापि पुरुषाकारा कदापि गिरिशृङ्गवत् ।
समभूदुत्थिता तत्र जनविस्मयकारिणी ॥३४॥

कौतूहलाविष्टमना यवनेशो विलोक्य ताम् ।
मुनिं पप्रच्छ सभयः किमिदं समुपागतम् ॥३५॥
भयेन कम्पितं दृष्ट्वा यवनं मुनिरब्रवीत् ।
न त्वया विस्मयः कार्यो ममेयं वशवर्तिनी ॥३६॥
न किमप्यत्र भयदं कर्तुमर्हति कौतुकम् ।
मदादेशेन कुरुते सर्वमेतद्विलक्षणम् ॥३७॥
एवमुक्तो भगवता मुनिना स भयाकुलः ।
रहस्यमस्याः पप्रच्छ चलने जातकम्पनः ॥३८॥
मुनिस्तथा विधं तस्य कौतूहलमुपस्थितम् ।
विलोक्य मन्दस्मितया दृशा तमिदमब्रवीत् ॥३९॥
ममेयं सहजा कन्था वर्तते सिद्धिसङ्गता ।
मदादेशेन कुरुते सर्वमेतत्कृताकृतम् ॥४०॥

आप को कादराबाद में आया हुआ सुनकर लाहौर का बादशाह जहांगीर आपके दर्शनार्थ आया और आपको लाहौर ले जाने के लिये उसने आपसे बहुत कुछ प्रार्थना की, परन्तु आपने उस समय लाहौर जाना अस्वीकार किया। कुछ दिनों के बाद जहांगीर ने फिर दुबारा लाहौर जाने के लिये आग्रह किया अब की बार आपने उसको अधिक श्रद्धा देखकर जाना स्वीकार कर लिया और नियत समय पर आप लाहौर पहुंचे। बादशाह ने आपके आतिथ्य का सब प्रबन्ध करके एक दिन आपको अपने दरबार में बुलाकर अपने राज्य सिंहासन पर बिठाया और आप दरबारियों के साथ नीचे बैठ गया। आप के साथ कमलासन भी दरबार देखने के लिये गया हुआ था आप ने उसको अपनी गुदड़ी देकर कहा कि तुम इसको किसी कोने में रख दो उसने आप की आज्ञा से उस को एक तरफ रख दिया और आप भी वहीं बैठ गया। जब सिंहासन पर भगवान् बैठ गये तब बादशाह की नजर एकाएक उस गुदड़ी पर पड़ी जो उस समय अनेक प्रकार के दृश्य दिखा रही थी कभी वह विस्तृत होकर कांपने लगती थी कभी छोटी बन कर ऊपर को उड़ने लगती थी कभी पुरुषाकार होकर हिलती थी कभी पर्वत के शृङ्ग

नहीं हो सकता है, ईश्वर के दरवार में अब आपका शासन काल समाप्त हो गया है। उसका अब अन्त समय उपस्थित है। आपका शासन अब नहीं रहेगा। अब इसका शासक ईश्वर ने और ही नियत किया है। इस प्रकार याक़ूब को शाप देकर भगवान् समाधिस्थ हुए और याक़ूब थोड़े समय में मर गया इसी समय में [याक़ूब के राज्य पर अकबर की सेना ने आक्रमण करके उसके राज्य को दिल्ली में मिला लिया] समाधि से निवृत्त होने पर भगवान् काश्मीर से चलकर पञ्जाब के कादरा-बाद शहर में आगये ॥ ११—२५

अत्रापि यवनाधीशो जहांगीरपदाभिधः ।
मुनेर्दर्शनमादातुमायातो लवपत्तनात् ॥२६॥
मुनेः पदाम्बुजं नत्वा बहुशो लवपत्तनम् ।
समानेतुमयं चक्रे मुनेर्नानाविधार्थनाः ॥२७॥
मुनिरप्यस्य सद्भावमधिगत्य तदिच्छया ।
जगाम नियते काले दिव्यं लवपुरं रसात् ॥२८॥
कमलासनमायातं मुनिः सह दिदृक्षया ।
जगाद मम कन्थेयं त्वया कोणे निधीयताम् ॥२९॥
मुनेरादेशतः कोणे कन्थां संस्थाप्य दुर्धराम् ।
आसीनोऽभवदेकत्र तदा स कमलासनः ॥३०॥
सिंहासने निवेश्यायं यवनो मुनिमादरात् ।
तदेकदेशे स्वयमप्याससाद नताननः ॥३१॥
आसीनस्य सुखं तत्र यवनेशस्य दैवतः ।
दृष्टिः पपात कन्थायां या तदाभूद्विलक्षणा ॥३२॥
कदापि सा समभवद्बृहती बहुकम्पिता ।
कदापि तस्य पुरतः संचुकोच यदृच्छया ॥३३॥
कदापि पुरुषाकारा कदापि गिरिशृङ्गवत् ।
समभूदुत्थिता तत्र जनविस्मयकारिणी ॥३४॥

कौतूहलाविष्टमना यवनेशो विलोक्य ताम् ।
मुनिं पप्रच्छ सभयः किमिदं समुपागतम् ॥३५॥
भयेन कम्पितं दृष्ट्वा यवनं मुनिरब्रवीत् ।
न त्वया विस्मयः कार्यो ममेयं वशवर्तिनी ॥३६॥
न किमप्यत्र भयदं कर्तुमर्हति कौतुकम् ।
मदादेशेन कुरुते सर्वमेतद्विलक्षणम् ॥३७॥
एवमुक्तो भगवता मुनिना स भयाकुलः ।
रहस्यमस्याः पप्रच्छ चलने जातकम्पनः ॥३८॥
मुनिस्तथा विधं तस्य कौतूहलमुपस्थितम् ।
विलोक्य मन्दस्मितया दृशा तमिदमब्रवीत् ॥३९॥
ममेयं सहजा कन्था वर्तते सिद्धिसङ्गता ।
मदादेशेन कुरुते सर्वमेतत्कृताकृतम् ॥४०॥

आप को कादराबाद में आया हुआ सुनकर लाहौर का बादशाह जहांगीर आपके दर्शनार्थ आया और आपको लाहौर ले जाने के लिये उसने आपसे बहुत कुछ प्रार्थना की, परन्तु आपने उस समय लाहौर जाना अस्वीकार किया। कुछ दिनों के बाद जहांगीर ने फिर दुबारा लाहौर जाने के लिये आग्रह किया अब की बार आपने उसकी अधिक श्रद्धा देखकर जाना स्वीकार कर लिया और नियत समय पर आप लाहौर पहुंचे। बादशाह ने आपके आतिथ्य का सब प्रबन्ध करके एक दिन आपको अपने दरबार में बुलाकर अपने राज्य सिंहासन पर बिठाया और आप दरबारियों के साथ नीचे बैठ गया। आप के साथ कमलासन भी दरबार देखने के लिये गया हुआ था आप ने उसको अपनी गुदड़ी देकर कहा कि तुम इसको किसी कोने में रख दो उसने आप की आज्ञा से उस को एक तरफ रख दिया और आप भी वहीं बैठ गया। जब सिंहासन पर भगवान् बैठ गये तब बादशाह की नजर एकाएक उस गुदड़ी पर पड़ी जो उस समय अनेक प्रकार के दृश्य दिखा रही थी कभी वह विस्तृत होकर कांपने लगती थी कभी छोटी बन कर ऊपर को उड़ने लगती थी कभी पुष्पाकार होकर हिलती थी कभी पर्वत के शृङ्ग

के समान बहुत ऊंची होजाती थी। उसको इस प्रकार अनेक विध प्रदर्शन दिखाती हुई को देख कर बादशाह को भय हुआ और उससे भयभीत होकर भगवान् से उसने कहा कि यह गुदड़ी ऐसा क्यों कर रही है? भगवान् ने कहा भय की कोई बात नहीं है बिना हमारी आज्ञा के यह कुछ कर नहीं सकती है। और हमारे कथन से यह सब कुछ कर सकती है। इस प्रकार भगवान् से सान्त्वना पाकर भयभीत बादशाह बोला कि इसके हिलने का कारण क्या है? भगवान् ने उत्तर दिया कि यह गुदड़ी अनादि काल से हमारे साथ है। इसमें अनेक प्रकार की सिद्धियां भरी हुई हैं। यह सर्वदा हमारे वश में रहती है और आदेश से असम्भव को भी सम्भव कर देती है॥ ३६—४०॥

अस्यां रौद्रोज्वरः सर्वं जगदेतच्चराचरम्।
भस्मीकर्तुं क्षमः शेते मन्निदेशेन निश्चलः॥४१॥
भूताः प्रेताः पिशाचास्ते यक्षगन्धर्वकिन्नराः।
सर्वएव वितिष्ठन्ति मदादेशेन निश्चलाः॥४२॥
यानहं यादृशं कर्तुं प्रहिणोमि यदृच्छया।
ते तादृशं तत्र कर्तुं यतन्ते मन्निदेशतः॥४३॥
एवं वदति योगीशे मुनौ तत्र व्यवस्थितः।
सङ्केतेन मुनेः कण्ठग्रहं सद्यश्चकार सः॥४४॥
तेन सद्यः प्रविष्टेन शरीरे तस्य सर्वतः।
यवनस्य कृतं सर्वं जर्जरं वपुरातुरम्॥४५॥
येन केन प्रकारेण स मुनेः पद्योर्लुठन्।
जगाद देहि मे सद्यः प्राणदानं मुने द्रुतम्॥४६॥
अन्यथा भवदादिष्टो ज्वरोयं रौद्रतां गतः।
गतासुं मां विधायैव गमिष्यति शरीरतः॥४७॥
एवं तस्य वचः श्रुत्वा यवनेशस्य सद्दयः।
मुनिः संकेतमकरोत्तेन तस्मात्स निर्गतः॥४८॥

विनिर्गते मुनेरिच्छावशतः सत्वरं ज्वरे ।
कथञ्चिद्यवनाधीशः संज्ञां लेभे सभाङ्गतः ॥४६॥
विलोक्य तादृशीं शक्तिं मुनेरस्य महात्मनः ।
चकम्पे यवनव्रातः सद्यएव भयाकुलः ॥५०॥

इसमें हमने रौद्रज्वर भरा है जो हमारी आज्ञा से चराचर को भस्म कर सकता है। इस समय हमने इसको रोक दिया है अलावा इसके भूत प्रेत पिशाच यक्ष गन्धर्व किन्नर सभी मेरे आदेश से निश्चल होकर इसमें रहते हैं। जिस काम के लिये उनको मैं कहता हूं उसी काम को वे करते हैं। इतना कह कर भगवान् मौन हुये, आप के मौन होते ही वह रौद्रज्वर आपका संकेत पाकर बादशाह के गले से चिपट गया। उसके चिपटते ही बादशाह जर्जर होगया जैसे तैसे भगवान् के चरण पकड़ कर वह कहने लगा कि महाराज मुझे आप इससे जल्दी बचाइये नहीं तो यह मुझे मार कर ही दम लेगा। आप ने उसकी यह बात सुनकर उसके शरीर से उसे अलग कर दिया उसके अलग होने पर बादशाह बहुत देर में सचेत हुआ। दरबार में भगवान् की यह अद्भुत शक्ति देखकर सारा यवन दल भय से कांपने लगा ॥ ४१—५० ॥

विलोक्य भयसन्त्रस्तं यवनव्रातमुत्त्वरः ।
मुनिं प्रसादयामास सभाध्यक्षः प्रभावितः ॥५१॥
प्रसन्नतामुपगतो मुनिस्तत्र मनोगतम् ।
भावमादाय सर्वेषामिदमाह शुचिस्मितः ॥५२॥
दैवीं शक्तिमुपाश्रित्य साधवः समदर्शिनः ।
समर्थाअपि वाञ्छन्ति न कस्यापि क्षतिं भुवि ॥५३॥
सर्वं मनोगतं भावं जानन्तोपि यदृच्छया ।
कदनं नाभिवाञ्छन्ति दुर्मदानां निसर्गतः ॥५४॥
एतावता न वोद्धव्या दुर्वलास्ते दुरात्मभिः ।
क्षणेन दग्धुमखिलं समर्थाः परमार्थतः ॥५५॥
भस्मनाच्छादितो वह्निर्यथालोकैर्न दृश्यते ।
तथा महात्मनामन्तर्निहितः शक्तिसञ्चयः ॥५६॥

एवं वदन्तमागत्य पुरतो यवनेश्वरः ।
मुनिं प्राह मम प्रश्नान्वद मे हृदि ये स्थिताः ॥५७॥
मुनिस्तस्येदृशं भावमधिगत्य यथाक्रमम् ।
प्रश्नानामुत्तरमदात्सर्वेषां हृदयेशयम् ॥५८॥

जहांगीर ने अपने दरबारियों की वह हालत देखकर भगवान् से प्रार्थना की कि आप कृपया अब इन लोगों का भय नष्ट कर दीजिये। भगवान् ने प्रसन्न होकर कहा कि हमने योगदृष्टि से आपके दरबारियों का बुरा भाव देखकर यह सारा कौतूहल किया था। अब इनका बुरा भाव जाता रहा इसलिये हमने भी अपनी शक्ति को उपसहृत कर लिया। समदर्शी साधु दैवी शक्ति का बल होने पर भी व्यर्थ किसी को नहीं सताते हैं। सबके मन की बात जानकर भी किसी का नाश करना नहीं चाहते। इतने से उनको कमजोर नहीं समझना चाहिये। वे क्षण भर में सब कुछ कर सकते हैं। भस्म से आच्छादित अग्नि जिस प्रकार सबको नहीं दीखता है उसी प्रकार साधुओं में विद्यमान दैवीशक्ति भी सबको नजर नहीं आती है। उसको विरले ही पहिचानते हैं। इस प्रकार भगवान् का आदेश सुनकर बादशाह उसी दरबार में भगवान् के प्रति कहने लगा कि यदि आप सबके मन की बात जानते हैं तो मेरे बिना पूछे इस समय मेरे मन में जो प्रश्न उठ रहे हैं उनका उत्तर दीजिये। भगवान् ने उसका यह भाव देखकर उसके हृद्गत प्रश्नों का जो उत्तर दिया उसका उपक्रम इस प्रकार है [यहां पर उत्तर से प्रश्नों का अनुसन्धान करना केवल क्रान्तदर्शियों का ही काम है] ॥५१—५८॥

मनुष्यजीवनोद्देश्यं भगवद्दर्शनं मतम् ।
न गृहासक्तता सातु सर्वेषामेव जायते ॥५९॥
हृदये विद्यते येषां सर्वभूतदया स्थिरा ।
तएव सर्वभुवने श्रेष्ठतामुपसङ्गताः ॥६०॥
व्यापको भगवानीशः सर्वत्र समवस्थितः ।
न चर्मचक्षुषा तस्य दर्शनं दिव्यया दृशा ॥६१॥

अनन्यभक्त्या भगवन्तिष्ठया सा प्रलभ्यते ।
दिव्यदृष्टिर्बहुज्ञाननिष्ठया भगवत्पदम् ॥६२॥
उदेति भक्तिर्लोकेऽत्र सत्सङ्गेन प्रवाहिणा ।
सत्सङ्गो ज्ञाननिष्ठानां हेतुरत्र सनातनः ॥६३॥
ईश्वरादतिरिक्तं यो न मानयति भूतले ।
सएव साधुरुदितो न लिङ्गी धर्मनिन्दकः ॥६४॥
भवद्विधानां लोकेऽत्र विज्ञिशानां प्रशासनम् ।
कर्तुमेव प्रसङ्गेन गमनागमने मम ॥६५॥
बलेन शासनं तेषां क्रियतेऽत्र भवादृशाम् ।
अपृष्ट्वेव प्रमत्तानां चिकित्सा भूतले मता ॥६६॥
इदमेव यथायोग्यमुत्तरं तव ये हृदि ।
विद्यन्ते बहवः प्रश्नाः परस्परविरोधिनः ॥६७॥
निर्भीकमुत्तरमिदं निशम्य यवनाधिपः ।
प्रसादमगमत्पश्चात्प्रशशंस मुनिं बहु ॥६८॥
निजानुरूपमतुलं रत्नादिसमलंकृतम् ।
उपायनमदादस्मै मुनये यवनेश्वरः ॥६९॥
मुनिस्तथाविधं तस्य द्रव्यराशिमवस्थितम् ।
नाङ्गीचकार पापेन यतस्तत्तेन सन्निभम् ॥७०॥
विहाय तद्धनं सर्वं तत्रैव यवनार्पितम् ।
सद्यो लवपुरादेष कादराबादमन्वगात् ॥७१॥

(१) भगवान् ने कहा—मनुष्य जीवन का उद्देश्य भगवत्प्राप्ति है गृह में आसक्त रहना नहीं है क्योंकि गृहासक्ति तो पशु पक्षि आदि अन्य योनियों में भी देखने में आती है।

(२) जिन के हृदय में शिव रूप से गर्भभूत दया रहती है वे ही समस्त संसार में सबसे उत्तम हैं।

(३) भगवान् सर्वव्यापक होने के कारण सर्वत्र रहते हैं। परन्तु व्यापक भाव में उनको देखना सबका काम नहीं है। दिव्य दृष्टि वाले ही उनको सर्वत्र देख सकते हैं।

(४) वह दिव्यदृष्टि भगवान् की अनन्य भक्ति से प्राप्त होती है और भगवान् का दर्शन विशुद्ध ज्ञान से होता है।

(५) भक्ति का उदय निरन्तर सत्सङ्ग से होता है और ज्ञान-निष्ठ पुरुषों का सङ्ग ही सत्सङ्ग कहलाता है।

(६) ईश्वर के अतिरिक्त जो अन्य किसी की परवाह न करता हो उसको साधु कहते हैं। धर्म निन्दक जिद्दी को साधु समझना केवल अज्ञान है।

(७) आप जैसे विक्षिप्त मनुष्यों को शासन करने के लिये ही साधु गृहस्थों के यहां आया जाया करते हैं अन्य उनका कोई लौकिक प्रयोजन नहीं है।

(८) यदि कोई प्रमत्त पुरुष अपनी इच्छा से अपनी चिकित्सा नहीं कराता है तो हम यत्नपूर्वक उसकी चिकित्सा करते हैं क्योंकि पागलों की चिकित्सा संसार में पूछकर कहीं भी नहीं की जाती है।

भगवान् ने इस प्रकार प्रश्नों का उत्तर देकर बादशाह से कहा कि इस समय आपके हृदय में यही प्रश्न विद्यमान थे जिसका समुचित उत्तर हमने दिया है भगवान् के कथन को सुनकर बादशाह ने भगवान् के मनोविज्ञान की बहुत प्रशंसा की और आपके योग्य उपायन भेंट किया परन्तु पाप सञ्चित उस उपायन को आपने अस्वीकृत कर छोड़ दिया और तुरन्त लाहौर से कादराबाद आगये। ॥ ५९—७१ ॥

अत्रापि मुनिमायातं मार्गमाणो वने वने ।
रत्नदेवीसुतः सद्यः समागादनुरागतः ॥७२॥
अनन्यश्रद्धमालोक्य मुनिरेनं पदस्थितम् ।
शिष्यतामनयत्प्रीतः सेवयास्य कृपानिधिः ॥७३॥
अस्यापि सेवकः कश्चिच्छिष्यतामुपसङ्गतः ।
सत्यश्मश्रुरितिख्यातः प्रीतिपात्रममून्मुनेः ॥७४॥
मुनिरेवं बहुविधैः समायातैः परीक्षणैः ।
परीक्ष्य सत्यसन्धत्वाच्छिष्यमेनमकल्पयत् ॥७५॥

गतानुगतिकैरस्य बहुभिः सज्जनैः कृतम् ।
देशे पञ्चनदे तत्र धर्मस्य परिरक्षणम् ॥७६॥
मुनिरत्र शिवादेशादागतः कतिचित्समाः ।
समाप्य दक्षिणं देशमगमद्दर्शनेच्छया ॥७७॥
रामेश्वरं महादेवं द्रष्टुमेष कृतोद्यमः ।
मार्गे मार्गे जनव्रातमायातं पर्यवेक्षयत् ॥७८॥
सद्यः पञ्चनदं देशं समतीत्य विहायसा ।
प्रपेदे प्रथमप्राप्तमिन्द्रप्रस्थं जयस्थलम् ॥७९॥
गिरेरुच्चतमे शृङ्गे तत्र सज्जनवन्दितः ।
निनाय कतिचिद्देवादहानि यमुनातटे ॥८०॥

कादराबाद में आपको दुबारा आया हुआ सुनकर बहुत काल से आपके ढूंढने में लगा हुआ रत्नदेवी का पुत्र कर्ताराय आपके पास आया इसके पिता का नाम राजाराम था । इन्होंने आपकी अनन्य भाव से सेवा की इस कारण आपने इनको अपना शिष्य बनाया इन कर्ताराय के एक सङ्गतदेव नामक शिष्य थे। जिनका दूसरा नाम सत्यश्मश्रु था ये फिरोजपुर के दरोली ग्राम में उप्पल जाति के क्षत्रिय विनयराय के घर उत्पन्न हुये । इनका पहिला नाम विजयराय था आपने इनकी अनेक बार परीक्षा की जिनमें वह सच्चे भक्त सिद्ध हुये इसलिये अन्त में इनको भी शिष्य बनाया । इनकी शिष्य प्रशिष्य परम्परा में अगाड़ी जाकर बहुत से ऐसे महात्मा हुए हैं जिनके द्वारा पञ्जाब में बहुत कुछ सनातनधर्म की रक्षा हुई । भगवान् के वरदान से ये ही सङ्गतदेव अन्त में उदासीन सम्प्रदाय की एक शाखा के सञ्चालक हुए । इस प्रकार भगवान् कादराबाद के जङ्गल में कुछ वर्ष बिताकर यहां से दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थित हुए । इस दिशा में आने का प्रधान कारण रामेश्वर का दर्शन था । भगवान् वहां से चलकर मार्ग में आए हुये अनेक जनों को आकाश मार्ग से देखते हुये पञ्जाब से देहली पहुंचे। वहां एक पर्वत के ऊंचे टीले पर आपने झण्डा गाड़ दिया । यह स्थान आज कल झण्डे वाले कूए के नाम से प्रसिद्ध है । यहां कुछ दिन ठहर कर आप मथुरा के लिये प्रस्थित हुए ॥ ७२—८० ॥

मध्येमार्गमतिक्रम्य समायातां मघोः पुरीम् ।
पश्यन्नयमगात्सद्यस्तदर्गलपुरं महत् ॥८१॥
तत्रापि यमुनातीरे कृतवासो निजेच्छया ।
भरतेन कृतावासमगमत्पुरमद्भुतम् ॥८२॥
सूर्यवंशीयभरतप्रतिष्ठापितमीदृशम् ।
पुरं विलोक्य तस्याभूत्कापि चेतसि कल्पना ॥८३॥
सूर्यवंशभवैर्भूपैरिदमत्र निवेशितम् ।
पुरमद्य दशां जीर्णामासाद्य विलयं गतम् ॥८४॥
यवनैरिदमाक्रान्तं पुरमालोक्य दुःखितः ।
ययौ वनमतिक्रम्य ततो धवलपत्तनम् ॥८५॥
चर्मण्वती नदी तीरे तत्र विश्रम्य सत्वरम् ।
ततोपि गिरिभिर्व्याप्तं गवालियरमन्वगात् ॥८६॥
महाराष्ट्रैरयं तत्र बहुधा कृतसत्कृतिः ।
तलितैः पदविन्यासैर्ललितं पुरमभ्यगात् ॥८७॥
नर्मदायां कृतस्नानो मुनिरेष ततः परम् ।
विदर्भभूसमासक्तं ययौ नागपुरं जवात् ॥८८॥
दिनानि कतिचित्तत्र विश्रम्य नगमूर्द्धनि ।
रामगिर्याश्रमं सद्यः प्रपेदे रामसेवितम् ॥८९॥
दण्डकारण्यभूभागमितः पश्यन्नवं नवन् ।
परीतो बहुभिः शिष्यैः पुण्यपत्तनमन्वगात् ॥९०॥
पुण्यपत्तनतः पश्चादागतं पथि विस्तृतम् ।
मद्रदेशमनुप्राप्य सद्यो मद्रपुरं ययौ ॥९१॥
मद्रे भद्रं व्यवस्थाप्य निजसिद्धान्तमुन्नतम् ।
भगवानयमापेदे रामेश्वरमनश्वरम् ॥९२॥

रामेश्वरमयं तत्र प्रणम्य निजपूर्वजैः ।
प्रपूजितं समुद्रस्य तटमाप लसत्कटम् ॥९३॥
सूर्यवंशीयभूपानां सेतुरूपेण संस्थिताम् ।
पताकां वीक्ष्य जलधौ मोदमाप मुनीश्वरः ॥९४॥
त्रिशङ्कुतिलकामेवं समाप्य दिशमुन्नताम् ।
नगैरयं नवघनैर्मण्डितां प्रत्यगागमत् ॥९५॥
कमलासननिर्दिष्टप्रत्यावर्तनपद्धतिम् ।
अनुव्रजन्नयं मार्गे किष्किन्धामप्यवीक्षयत् ॥९६॥
तदुपान्तगिरिस्थानि वनानि नगराणि सः ।
क्रमेण पश्यन्नापेदे मुनिर्नीलगिरिं शिवम् ॥९७॥
अवतीर्य ततः श्रीमानयं पञ्चवटीं प्रियाम् ।
गोदावरी परिसरे विचचार तपोधनः ॥९८॥
नासिकक्षेत्रमालोक्य त्र्यम्बकेश्वर दर्शनम् ।
कर्तुमेव ततः प्रागादुन्नतं हेमपर्वतम् ॥९९॥
तत्र गोदावरीधारामवतीर्णां नगादधः ।
पश्यन्ननुगतस्तस्माट्टाकलीग्राममद्भुतम् ॥४००॥

मार्ग में आई मथुरा को देखते हुए आप आगरा पहुंचे । वहां यमुना के तट पर कुछ दिन ठहर कर भरतपुर पहुंचे । भरत प्रतिष्ठापित इस राजधानी की गिरी हुई अवस्था देखकर आपके मन में बड़ा क्षोभ हुआ । यह भरतपुर प्राचीन समय के सूर्य्यवंशी राजाओं का निवास स्थान था जो आज इस अवस्था में पड़ा हुआ है । यवनों ने इस पर कई बार आक्रमण किया था । इसी कारण इसको देखकर आपको दुःख हुआ । यहां से आप करौली राज्य में विद्यमान देवी जी का दर्शन करके जङ्गलों में घूमते हुए धौलपुर पहुंचे । यहां आपने चर्मण्वती नदी के तट पर कुछ दिन विश्राम किया । यहां से आप चम्बल पार करके ग्वालियर पहुंचे । यहां महाराष्ट्र वंशज नरपति ने आपका बड़ा स्वागत किया ।

यहां से आप ललितपुर पहुंचे। ललितपुर से भूपाल होते हुए आप होशङ्गाबाद पहुँचे। यहां नर्मदा के तट पर कुछ दिन ठहर कर आप जबलपुर होते हुए नागपुर पहुंचे वहां कुछ दिन पर्वत के शिखर पर निवास कर आप रामगिरि के ऊंचे शिखर पर पहुंचे। यहां वनवास के समय भगवान् श्री रामचन्द्र जी ने आकर कुछ दिन निवास किया था इसी कारण इसका नाम रामगिर्याश्रम हुआ। यहां से आप दण्डकारण्य देखते हुए अनेक शिष्यों के साथ-साथ पुण्यपत्तन पहुंचे। यहां कुछ दिन विश्राम कर इस मान्त के मुख्य २ स्थानों को देखते हुए आप मद्रास पहुँचे। यहां मद्र में अपने भद्र सिद्धान्त का प्रचार कर आप उटकमण्ड होते हुए रामेश्वर पहुँचे। यहां अपने पूर्वजों द्वारा प्रपूजित रामेश्वर जी को प्रणाम कर आप समुद्र के तट पर लङ्का पहुंचे। वहां पर सूर्य्यवंशीय राजाओं का स्मारक सेतुबन्ध देखकर आप बड़े प्रसन्न हुए। इस प्रकार दक्षिण दिशा की यात्रा समाप्त कर आप वहां से वापिस लौटे। कमलासन के बतलाए हुए मार्ग से लौटते हुए आप मार्ग में किष्किन्धा पहुंचे यहां आस पास के पर्वत नगर और वनों को देखते हुए आप नीलगिरि पहुंचे। नीलगिरि से उतर कर आप गोदावरी तट-स्थित पञ्चवटी पहुंचे। आस पास के वनों में भ्रमण करते हुए आप नासिक होकर त्र्यम्बकेश्वर देखते हुए हेमपर्वत पर पहुंचे। वहां पर गोदावरी की धारा को देख कर आप टाकली ग्राम में पहुँचे ॥ ८१—४०० ॥

अत्रागतः स भगवन्नारायणमुपागतम् ।
कुमारमुग्रतपसं समीक्ष्य मुदितोऽभवत् ॥४०१॥
अष्टादशाब्ददेशीयं कुमारं पदयोः स्थितम् ।
मुनिः पप्रच्छ कुशलं मधुरस्निग्धया गिरा ॥ २ ॥
भावं मुनेरभिज्ञाय कुमारोपि मनोगतम् ।
किमपि प्रष्टुमभवद्विवक्षुः स्फुरिताधरः ॥ ३ ॥
ध्यानयोगेन तत्प्रश्नानुत्तरेण निवेदयन् ।
मुनिराह तमासीनं समाकर्णय हृद्गतम् ॥ ४ ॥
यदर्थमागतोसित्वमत्र विश्वेश्वरेच्छया ।
तदेव कुरु साफल्यमगाद्येन जनिस्तव ॥ ५ ॥

अभिन्नं जगतो रूपं विराजः कथ्यते बुधैः ।
जगदाराधनं तस्माद्विराजो भक्तिरुत्तमा ॥ ६ ॥
भारते यवनैरद्य महोत्पातपरम्पराः ।
प्रवर्त्यन्ते यथास्माकं सभ्यता नाशमाप्नुयात् ॥ ७ ॥
मन्दिराणि निपात्यन्ते रामकृष्णादिमूर्तयः ।
खण्ड्यन्ते निगमा वह्नौ ज्वाल्यन्ते प्रतिपत्तनम् ॥८॥
अयोध्या मथुरा काशी निदर्शनपथं गता ।
विद्यते पश्य तत्रत्यां दुर्दशां यवनैः कृताम् ॥ ९ ॥
समर्थो रामभक्तस्त्वं कर्तुमेतन्निवारणम् ।
अब्धेरुल्लङ्घने यद्वद्धनूमान्दासतां गतः ॥१०॥
समर्थोरामदासस्त्वं विपदुद्धरणक्षमम् ।
कमपि क्षत्रियमिह प्रवर्तय बलोर्जितम् ॥११॥
कुरुतीर्थाटनं पश्य पूर्वजानां कृतिस्थलम् ।
देशाटनप्रसङ्गेन पर्यालोचय दुर्दशाम् ॥१२॥
कमलासननिर्दिष्टं रामचन्द्रकुलोद्भवम् ।
अवेहि मामिहप्राप्तं तवोद्धाराय दैवतः ॥१३॥
कृतं कृत्यं मया सर्वं नान्यः कार्यक्रमो मम ।
शिवनेरपुरं गत्वा प्रतीक्षस्व शिवांशजम् ॥१४॥
क्रमेण तद्धृदिस्थानामेवमुत्तरमावदत् ।
प्रश्नानामादरात्तत्र मुनिः शान्तिमुपाययौ ॥१५॥
निशम्य सर्वप्रश्नानामुत्तरं योगमायया ।
समर्थोरामदासोभूद्विलक्षः पदयोः स्थितः ॥१६॥

यहां आकर आपने एक अठारह वर्ष की अवस्था वाले नारायण नामक तपस्वी ब्राह्मण कुमार को देख बड़ा हर्ष प्रकट किया और अपने चरणों में उपस्थित उस कुमार को देखकर आपने कुशल पूंछा कुमार ने भी आपके अभिप्राय को

समझ कर कुछ कहना चाहा परन्तु समाधियोग से उसके अद्दष्टव्य विषय को समझ कर आपने उसके बिना प्रश्न किये ही उत्तर देना आरम्भ किया॥ [इस उत्तर से कुमार के प्रश्नों का अनुमान अनायास ही हो सकता है]॥

(१) आपने कहा कि ईश्वर ने जिस कार्य के लिये आपको संसार में भेजा है वही आपका मुख्य कर्तव्य है।

(२) यह जगत् विराट् का अभिन्न रूप है। इस लिये जगत् का दुःख दूर करना ही भगवान् की सब से उत्तम भक्ति है।

(३) इस समय भारत में यवनों ने बड़े अत्याचार मचाये हैं, जिनसे हमारी सभ्यता नष्ट होरही है, मन्दिर गिराये जारहे हैं, देवमूर्तियां तोड़ी जारहीं हैं वेदों के पुस्तक जलाये जा रहे हैं, अयोध्या मथुरा और काशी इनके प्रत्यक्ष निदर्शन हैं वहां जाकर देखिये कि यवनों ने कैसे अत्याचार किये हैं। इससे बढ़कर हमारे लिये और क्या दुःख हो सकता है?

(४) आप रामभक्त होनेके कारण इस समय समर्थ हैं क्योंकि रामभक्त सदा से समर्थ होते आये हैं देखिये रामदास हनूमान ने किस प्रकार समुद्र का उल्लङ्घन किया है।

(५) आजसे आप समर्थ रामदास हैं आप सब कुछ कर सकते हैं किसी क्षत्रिय राजकुमारको इसके उद्धारकार्य में नियुक्त कर आप अपने कर्तव्य का पालन करें।

(६) आप इस समय तीर्थाटन करें, इसी बहाने से अपने पूर्वजोंके कार्यों का निरीक्षण करें। इसी प्रसंग से देश और जाति की दुर्दशा का अनुसन्धान करें। बिना देश भ्रमण के देश दशा का निरीक्षण नहीं हो सकता है॥

(७) मेरे शिष्य कमलासनके द्वारा जिसका विस्तृत विवरण आपको ज्ञात हो सकता है मैं उस सूर्य वंश का एक बालक हूँ मेरा जन्म पञ्चनदमें हुआ है निवास प्रायः काश्मीर में रहता है भगवान् राम के वंश में मेरा प्राकट्य हुआ है आपके उद्धार के लिये ही मैं इस समय यहां पर आया हूं।

(८) आठवें प्रश्नके उत्तरमें आपने केवल-'कृत-कृत्यम्' इतना ही उत्तर दिया, जिसको सुन कर कमलासन और समर्थ दोनों ही स्तब्ध होगए। भगवान् ने ऊपर की ओर देखकर कहा कि शिवनेर जा कर शिवांशज शिवाजी की प्रतीक्षा करो, इतना कहते कहते भगवान् मौन होगये, अपने समस्त प्रश्नों का उचित उत्तर सुन कर समर्थ रामदास आश्चर्य में मग्न होगये। नारायणके समस्त प्रश्नों का क्रमशः उत्तर देकर भगवान् भी अपने मन में प्रसन्न हुए॥ १—१६॥

योगमार्गं समादिश्य तस्मै तत्र मुनीश्वरः ।
प्रतस्थे टाकलीग्रामादिन्दौरनगरं महत् ॥१७॥
मध्येमार्गमनुप्राप्तं कोटानगरमीक्षयन् ।
क्रमेण मथुरामाप गोविन्दजननस्थलीम् ॥१८॥
अतीत्य मथुरामारादिन्द्रप्रस्थमुपस्थितम् ।
मार्गे पश्यन्ननापायं कुरुक्षेत्रमलक्षितः ॥१९॥
कुरुवंशीयभूपानां रुधिरेण परिप्लुताम् ।
भूमिमेनामतिक्रम्य पुनः श्रीनगरं ययौ ॥२०॥
दिनानि कतिचित्तत्र स्थित्वा पुनरितोद्रुतम् ।
वारठं ग्राममागत्य ददौ सन्देशमन्तिमम् ॥२१॥
आषाढीं पूर्णिमामाप्य दत्तसन्देशवाङ्मयः ।
मण्डलं स्थापयामास प्रचाराय यथोचितम् ॥२२॥
मुनेरादेशनस्तत्र भक्तो भक्तगिरिः क्रमात् ।
मण्डलाधिपतीनस्य शिष्यानेवमुपादिशत् ॥२३॥
प्रथमो मण्डलाध्यक्षः कमलासन एव सः ।
यो मुनेः कृपया लब्धमलिमत्तपदं ययौ ॥२४॥
द्वितीयो मण्डलाध्यक्षो बालहासपदाभिधः ।
यो लब्धवानस्य मुनेः कृपया जीवनं पुनः ॥२५॥
गोविन्ददेवनामास्य तृतीयो मण्डलेश्वरः ।
चतुर्थः पुष्पदेवोऽयं मण्डलाधिपतिर्मतः ॥२६॥
एते चत्वार आदिष्टा मुनिना मण्डलेश्वराः ।
प्रधानः पञ्चमस्तेषामुपास्यः शङ्करः स्वयम् ॥२७॥
पञ्चानामनुमत्यान्ये ये भविष्यन्ति तत्परम् ।
तेपि भूमण्डले भाविमण्डलेश्वरभाजनाः ॥२८॥

एवं भक्तगिरिद्वारा चतुरो मण्डलेश्वरान् ।
मुनिरादिश्य मुदितो गमनाय रुचिं व्यधात् ॥२६॥
वारठाग्रामतः श्रीमानयं चम्बाभिधं पुरम् ।
गन्तुमुत्कः क्रमप्रासान्ग्रामानन्यानवीक्षयत् ॥३०॥
मध्ये मार्गमनुप्राप्तं ममूनग्राममद्भुतम् ।
समेत्य तत्परिसरे शिश्रिये शुष्कपिप्पलम् ॥३१॥
मुनेस्तत्र निवासेन सद्यः स भगवद्द्रुमः ।
हरितोभूज्जनपदे योद्यापि परिलभ्यते ॥३२॥
मुनिर्ममूनमुत्सृज्य चम्बानगरमुत्तमम् ।
समेत्य तत्परिसरे समाधिमगमच्छिवाम् ॥३३॥
पञ्चाग्निमध्यमध्यास्य निराहारो निराश्रयः ।
समाधिमेव सविधे स्थापयामास नेतरम् ॥३४॥
अतीत्य कतिचिन्मासानेवमेव तपोधनः ।
ऐरावतीतटमटन्नवतस्थे शिलामयम् ॥३५॥

भगवान् ने कुछ दिन यहां पर ठहरकर समर्थ रामदास को योगाभ्यास करना सिखाया । फिर यहांसे चलकर आप इन्दौर पहुंचे । वहां से झालावाड़, कोटा, बूंदी आदि नगरोंको देखते हुये आप मथुरा पहुंचे, मथुरासे चलकर इन्द्रप्रस्थ होते हुये आप कुरुक्षेत्र पहुंचे । कुरुवंशीय राजाओं के रुधिरसे परिप्लुत इस कुरुक्षेत्रभूमि का अतिक्रमण कर आप पञ्जाब होते हुये श्रीनगर पहुँचे। वहां कुछ दिन ठहरकर आप वारठ ग्राममें पहुँचे, यहां पहुंचकर आपने अपने शिष्यों को अन्तिम सन्देश सुनाया जिसका उल्लेख इसी ग्रन्थमें अन्यत्र मिलेगा। अन्तिम सन्देश सुनकर आपने पञ्चपरमेश्वरकी स्थापना करने की अनुमति देदी । आपकी अनुमति से भक्त भगवान्ने सब शिष्यों को बुलाकर एक मण्डल स्थापित किया जिसके कमलासन बालहास गोविन्ददेव पुष्पदेव यह चार क्रमशः मण्डलपति निर्वाचित हुये इन चारों के अलावा पञ्चम उपास्यदेव सबके अग्रगण्य माने गये यही पांच पञ्च परमेश्वर के नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध हुये इन पञ्चों की अनुमति से भविष्य में जो अन्य सज्जन मुने जावेंगे

वे भी मण्डलपति करे जावेंगे ऐसा भक्तगिरि के द्वारा कहलवा कर भगवान् चम्बा की ओर चल पड़े। बीच में आये हुये अन्य अनेक ग्रामों में भ्रमण करते करते आप ममून पहुंचे। यहां पर एक सूखे पीपल के नीचे आपने आसन लगाया आपके आसन लगाते ही वह हरा भरा हो गया जो अब तक विद्यमान है। यहां से चल कर आप चम्बा पहुंचे, वहां पहुंच कर आपने नगर से बाहर धूनी लगाई पश्चाग्नियों के मध्य में बैठ कर आप समाधिस्थ हुये कुछ दिन इसी प्रकार निराहार निराश्रय भगवान् वन में समाधिस्थ रहे विक्रम सवत् १७०० में एक विचित्र घटना उपस्थित हुई भगवान् समाधि से उठकर अकस्मात् ऐरावती के तट पर घूमते घूमते एक शिला पर जाकर बैठ गये ॥ १७—३५ ॥

अध्यास्य विस्तृतशिलां सरित्पारदिदृक्षया।
घट्टप्रघट्टकमिदं मुनिराह यथोचितम् ॥३६॥
गन्तास्मि सरितः पारं भवान्नयतु मामितः।
पश्योपसं प्रमुदितां सर्वतः प्रसृतामिमाम् ॥३७॥
एवमादिशति क्षिप्रं मुनौ प्रातः समागतः।
मार्गमाणो मुनिपदं ब्रह्मकेतुर्दिदृक्षया ॥३८॥
अयं भूटानवास्तव्यो मुनेः शिष्यः पुरातनः।
बहोः कालान्मुनिं द्रष्टुमियेष परमादरात् ॥३९॥
दैवतः समनुप्राप्तः सोप्यत्र भगवत्पदम्।
विलोक्य कृतकृत्योभून्निरस्तबहुबन्धनः ॥४०॥
परं पारं जिगमिषुर्भवाम्भोधेरयं जनः।
भगवत्कृपयाऽपश्यद्भगवन्तं भवोद्भवम् ॥४१॥
मुक्तिदं समनुप्राप्य मुनिमेष महोदयः।
सेवामस्य यथाम्नायं चकार समुपस्थिताम् ॥४२॥
कैवर्तमयमाहूय ब्रह्मकेतुस्तमब्रवीत्।
विलम्बः क्रियते कस्मान्मुनेरिच्छानुगम्यताम् ॥४३॥

सोऽब्रवीदेकपुरुषं नेतुं नौका न विद्यते ।
बहवो यदि गन्तारस्तदा सा नीयते तरिः ॥४४॥
एवं वदन्तमाकर्ण्य कैवर्तं कोपि तद्गतः ।
प्राह साङ्केतिकैः शब्दैर्भगवन्तं शिलास्थितम् ॥४५॥
भगवन्नेवमधुना श्रुतमस्माभिरादरात् ।
भवान्वंशधरः श्रीमान्रामचन्द्रस्य भूभुजः ॥४६॥
सत्यमेतद्यदि मया श्रुतं तर्हि महानयम् ।
विस्मयो जायते चित्ते भवन्तं वीक्ष्य विस्तृतः ॥४७॥
येन रामेण जलधौ निबद्धः सेतुरद्भुतः ।
तस्य वंशे जनिं गत्वा भवान्नौकामपेक्षते ॥४८॥
गिरयो जलधौ येन निक्षिप्ताः समवातरन् ।
तद्वंशीयाः शिलामेकां नैव तारयितुं क्षमाः ॥४९॥
असम्भवमिदं मन्ये भवद्दर्शनतः स्थिरम् ।
रामस्य यज्जलनिधौ सेतोर्बन्धनमद्भुतम् ॥५०॥
एवमुच्चावचैः शब्दैः पूर्वजानपि विक्षिपन् ।
यदा स मुनिना दृष्टः पान्थः पथि तदा मुनिः ॥५१॥
असहन्पूर्वजाक्षेपं तस्यैव पुरतः स्थिताम् ।
शिलामाह विनिक्षिप्य तरीव तर सत्वरम् ॥५२॥
सा मुनेः कथनात्सद्यः शिला नौकेव सुन्दरी ।
ऐरावतीजले क्षिप्ता चचाल मुनिदर्शनात् ॥५३॥
दृष्ट्वा तथाद्भुतं तस्य मुनेः कर्म स्तिटथताः ।
सर्वेऽवदन्नयं सत्यं तस्यैव किल वंशजः ॥५४॥
यथा तेनाम्बुधौ क्षिप्ताः पर्वतास्तेरुरुन्नताः ।
तथानेन शिला क्षिप्ता ततार गहनं जलम् ॥५५॥

एवं निजतपःशक्तिं तत्र दर्शयताऽमुना ।
उभयं सत्यतां नीतं किमाश्चर्यमतः परम् ॥५६॥
अध्यास्य तामेवशिलां मुनिराश्चर्यतोयधिः ।
ऐरावती समुत्तीर्य विवेश गहनं वनम् ॥५७॥
अदर्शनं गते तत्र मुनौ तद्दर्शनेच्छया ।
ब्रह्मकेतुः समादाय नावं परमगात्तटम् ॥५८॥
यावता समयेनास्य नौका परतटं गता ।
तावता समयेनायं बहुदूरं गतोऽभवत् ॥५९॥
इतस्ततः समन्विष्य ब्रह्मकेतुमुनिं तदा ।
यदा न लेभे बहुशस्तदा सन्धामिमामगात् ॥६०॥

आप की इच्छा पार जाने की थी इसलिये आपने मल्लाह को बुलाकर नाव छोड़ने को कहा । इस समय कुछ अंधेरा था प्रकाश अच्छी तरह खिला नहीं था इसीलिये पार जाने वाले मनुष्य भी न आसके । परन्तु भगवान् पार जाना जरूर चाहते थे इस कारण बार बार मल्लाह से प्रेरणा कर रहे थे । इतने ही में प्रात काल भूटान का रहने वाला एक ब्रह्मकेतु नामक आपका प्राचीन शिष्य आपको ढूंढते ढूंढते वहीं पर आगया यह बहुत दिनों से आपको ढूंढ रहा था इसको दैवयोग से आप यहां पर मिल गये । इसने भी भगवान् की पार जाने की उत्कट इच्छा देखकर मल्लाह से नाव छोड़ने को कहा । परन्तु उसने मल्लाह कर कहा कि एक मनुष्य के लिये नाव नहीं छोड़ी जा सकती है । बहुत मनुष्य एकत्र होने पर ही नाव छोड़ी जायेगी । मल्लाह की यह बात सुनकर वहां बैठे एक मनुष्यने भगवान् से कहा । महाराज !! मैंने ऐसा सुना है कि आप श्री रामचन्द्र जी के वंशधर हैं यदि यह बात सत्य है तो आपको देखकर मेरे मन में बड़ा विस्मय होता है जिन रामचन्द्र ने पूर्व काल में समुद्र में पत्थरों से सेतु बांधा था उनके वंश में जन्म लेकर आप रावी उतरने के लिये नाव की प्रतीक्षा कर रहे हैं? जिनके फेंके हुये पर्वत आज तक समुद्र में तैर रहे हैं ? उनके वंशधर आज एक शिला नहीं तैरा सकते हैं इससे तो यही प्रतीत होता है कि पूर्व काल में रामचन्द्र ने भी समुद्र में सेतु नहीं बांधा होगा इस प्रकार पूर्वजों पर आक्षेप करते हुये उस वाक्य को देखकर उसका सहन न करते हुये

आपने उसके समक्ष ही अपनी शिला से कहा कि तू भी नाव की तरह जल में तैरती हुई उस पार चल। आपकी आज्ञा पाते ही वह शिला आपकी कृपा से नाव की तरह रावी में चलने लगी। इस आश्चर्य को देख कर उसके तट पर खड़े सब मनुष्य कहने लगे कि वास्तव में ये भगवान् श्रीराम के वंशधर अवश्य हैं। क्यों कि जिस प्रकार समुद्र में उनके फैंके हुये पर्वत तैर रहे हैं उसी प्रकार रावी में इनकी फेंकी हुई शिला भी प्रत्यक्ष में नाव की तरह तैर रही है। इस प्रकार तपोबल से वहां पर चमत्कार दिखा कर आपने दोनों अगली पिछली बातें सत्य सिद्ध कर दीं और उसी शिला पर बैठ कर आप रावी के उस पार चले गये। शिला से उतर कर आप एक जङ्गल की घाटी में प्रविष्ट होकर अदृश्य हो गये आपके अदृश्य होने पर ब्रह्मकेतु उनके दर्शन के लिये नाव पर चढ़ कर उस पार पहुंचे परन्तु इतने में समय अधिक लग जाने के कारण बहुत अन्तर हो गया। जितने समय में नाव धीरे धीरे दूसरे किनारे पर पहुंची उतने समय में भगवान् बहुत दूर निकल गये। ब्रह्मकेतु ने उस पार जाकर आपके ढूंढने के लिये बहुत कुछ प्रयत्न किया परन्तु जब आप न मिले तब ब्रह्मकेतु ने यह प्रतिज्ञा की ॥ ३६—६० ॥

यावन्मुनिर्न मे दृष्टिमागमिष्यति मद्गुरुः ।
तावदस्मादधिष्ठानान्नगमिष्यामि कुत्रचित् ॥६१॥
निराहारो जितश्वासः समाधिकृतचिन्तनः ।
जलमप्यात्मरक्षार्थे न ग्रहीष्यामि तत्परः ॥६२॥
एवंविधामयं सन्धां ब्रह्मकेतुरिह स्थितः ।
विधाय मुनिमेवान्नः सस्मार शिवरूपिणम् ॥६३॥
दिनद्वयमयं तत्र कृतसन्धः सरित्तटे ।
निराहारव्रतं तन्वन्नवतस्थे यथोत्तरम् ॥६४॥
योगदृष्ट्या मुनिस्तस्य सन्धां वीक्ष्य भयावहाम् ।
आविरासीत्परिसरे तस्यैव विलसज्जटः ॥६५॥
ध्रुवं तमात्मविपये ब्रह्मकेतुं विलोकयन् ।
करुणारुणया दृष्ट्या तमाह परिसान्त्वयन् ॥६६॥

नैवंविधस्त्वया कार्यो हठः कुत्रापि मत्कृते ।
अयमेवान्तिमः शब्दो मया तुभ्यमिहोच्यते ॥६७॥

एकान्तवासमिच्छामि बहुधाहमतः परम् ।
न वक्तुमन्यदिच्छामि सन्देशादपरं वचः ॥६८॥

एवमादिश्य तं सद्यो ब्रह्मकेतुं पदस्थितम् ।
मुनिरन्तिमसन्देशं दिदेश हृदयस्थितम् ॥६९॥

सोपि तं परमाराध्यगुरोः सन्देशमन्तिमम् ।
समाकर्ण्य समुत्तस्थौ ब्रह्मकेतुर्निजासनात् ॥७०॥

यावदस्य मुनेः पादौ ग्रहीतुमयमभ्यगात् ।
तावदेव तपोमूर्तिर्मुनिरन्तर्हितोभवत् ॥७१॥

तेन यद्यत्समादिष्टं तत्तद्वक्तुमयं ततः ।
शनैश्चम्पापुरमगात्ततः श्रीनगरं शिवम् ॥७२॥

तत्र गत्वा समाहूय सर्वानस्य प्रतिष्ठितान् ।
शिष्यानयं ब्रह्मकेतुर्यदाह गुरुणोदितम् ॥७३॥

तत्सर्वमपि सन्दिष्टं श्रोतुमिच्छास्तिचेद्धृदि ।
द्रष्टव्योस्य तदासर्वरूपान्त्यः सर्ग आदरात् ॥७४॥

एतावदत्र सन्दिश्य मुनेश्चरितमद्भुतम् ।
सर्वदिग्विजयावद्धः क्रमः परिसमाप्यते ॥७५॥

कृतदिग्विजयः श्रीमान्श्रीचन्द्रः श्रीमुखोद्गतम् ।
यद्यदाह महाकाव्ये तदग्रे वीक्षतां बुधैः ॥७६॥

सूचनामेवमादाय मृद्वीकामधुरैः पदैः ।
सर्गस्त्रयोदशः पूर्तिं नीयते विषयक्रमात् ॥७७॥

एतन्मुनेश्चरित्रं
विचित्रभावं विशुद्धमतयो ये।
द्रक्ष्यन्ति ते भवेस्मिन्
भवं न यास्यन्ति शङ्करादिष्टाः ॥४७८॥

जब तक मुझे भगवान् का दर्शन प्राप्त न होगा तब तक मैं यहा से कहीं नहीं जाऊगा। यहीं पर निराहार रहकर जल तक ग्रहण नहीं करूगा, यह दृढ़तर प्रतिज्ञा करके ब्रह्मकेतु ने शिव स्वरूप भगवान् का स्मरण किया। दो दिन बीतने पर जब आपने उसकी प्रतिज्ञा भयङ्कर देखी तब आप सद्यः वहीं पर प्रकट होगये और ब्रह्मकेतु की अपने में अनन्य श्रद्धा देखकर आपने कहा कि "ऐसा हठ अब भविष्य में कभी न करना अब हम एकान्तवास करना चाहते हैं। तुम ध्यानपूर्वक हमारा अन्तिम सन्देश सुनो। यह कहकर आपने अन्तिम सन्देश सुनाया। उसके अनन्तर आपने ब्रह्मकेतु से कहा, अब तुम हमारी आज्ञा से यहां से काश्मीर जाकर अपने गुरु भाइयों को हमारा अन्तिम सन्देश सुना दो।" यह कहते-कहते विक्रम सवत् १७०० पौष कृष्ण पञ्चमी के दिन आप अश्वत्थामा की तरह अदृश्य हो गए, आपका सन्देश सुनकर ब्रह्मकेतु भी अपने आसन से उठकर चम्बा होते हुये सवत् १७०१ की आषाढ शुक्ला पूर्णमासी के एक दिन पूर्व (अर्थात्) चतुर्दशी को श्री नगर पहुँचे वहा पूर्णिमा के दिन भगवान् के सब शिष्यों को एकत्र कर ब्रह्मकेतु ने श्री भगवान् का अन्तिम सन्देश सुनाया वह साङ्गोपाङ्ग इस महाकाव्य के अग्रिम सर्गों में मिलेगा इस सर्ग में भगवान् के सम्बन्ध में इतना ही लिखकर दिग्विजय सम्बन्धी आयोजन हम समाप्त करते हैं। दिग्विजय के अनन्तर भगवान् ने अनेक नगरों में जो अपने श्री मुख से सनातन-धर्म के मुख्य मुख्य अगों का विशद रूप में प्रतिपादन किया है वह आगे के सर्गों में लिखा गया है। इतनी सूचना देकर अब हम प्रसङ्गागत विषयानुपात के अनुरोध से इस सर्गको यहीं पर समाप्त करते हैं। इस सर्ग में कहे हुये भगवान् के अलौकिक चमत्कार पूर्ण चरित्रों को जो महानुभाव निश्छल भाव से पढ़ेंगे वे इस संसार में शङ्कर की कृपा से दुबारा जन्म प्राप्त नहीं करेंगे ॥४६१—४७८॥

इतिश्री सनाढ्यवंशोद्भव कविवर श्रीमदखिलानन्दशर्मप्रणीते
सतिलके जगद्गुरुश्रीचन्द्रदिग्विजये महाकाव्ये
सर्वदिग्विजयो नाम त्रयोदश सर्गः

श्री

साधुबेला तीर्थ के



महात्माओं की माला

SRI SADHBELLA TIRATH MAHATMA KAY HAR MALHA

चतुर्दशः सर्गः

अधिगतविजयो मुनीन्द्रवर्यः
सनकसनन्दननारदप्रदिष्टम् ।
मुनिमतमधुनाऽधिकं विवक्षु-
र्मधुमधुरां गिरमाह पुष्पिताग्राम् ॥ १ ॥

जगद्गुरु भगवान् श्रीचन्द्र जी ने दिग्विजय के अनन्तर अपने पूर्वज सनकादि मुनियों द्वारा प्रदिष्ट मुनिमत का विस्तृत रूप में वर्णन करने के लिये मधुर मधुर पुष्पिताग्रा वाणी से कुछ वैदिक रहस्य कहना आरम्भ किया ॥१॥

जगदिदमखिलं गुणप्रभेदा-
द्बहुविधरूपकलाभिरुद्धताभिः ।
सलिलजनववीचिवद्विभिन्नं
गतमतयः प्रवदन्ति भेदभाजः ॥ २ ॥

आपने कहा कि-प्रकृतिगत गुणत्रय भेद से उद्भूत अनेक विध रूप कलाओं से विचित्र इस जगत् को भेदवाद वादी मूढजन ब्रह्म से भिन्न मानते हैं ॥२॥

अधिगतपरमार्थदृष्टयो ये
निगमविदो मुनयः समाधियोगे ।
सकलमपि तदेतदात्मनिष्ठं
हृदि विमलेऽनुदिनं विभावयन्ति ॥ ३ ॥

परमार्थ दृष्टि से सम्बन्ध रखने वाले श्रौतमुनि तो समाधियोग से समस्त जगत् का आत्मनिष्ठ मानकर अपने हृदय में केवल अद्वैतब्रह्म का ही चिन्तन करते हैं ।३।

सकलमिदमुदेति यन्निदेशा-
त्पुनरवलम्ब्य यमेकमाभिभाति ।

१—पुष्पिताग्रावृत्तम् ।

विलयमपि तथैति यत्र देवं
हृदयतले तमलं निभालयन्तु ॥ ४ ॥

इसलिये आप सब लोक अपने हृदय में उसी ब्रह्म का चिन्तन करें, जिसके इच्छा मात्र से यह प्रतीयमान समस्त जगत् उद्भव-स्थिति-प्रलयादि भेद से विभिन्न होने पर भी अन्त में एकमात्र ब्रह्मरूप में ही लीन होकर रहता है ॥४॥

स भजति निजशक्तिसम्प्रयोगा-
त्सगुणतयानुगतः स्वरूपभेदैः ।
हरिहरविधितामनन्तभेदां
निगमविदो निगदन्ति यां यथावत् ॥ ५ ॥

अनेक विध शक्ति सम्पन्न वही ब्रह्म निर्गुण से सगुण रूप होकर आत्मनिष्ठ हरि हर आदि अनेक भेदों से अनेक रूप होता है ऐसा वेदज्ञ विद्वान् कहते हैं॥५॥

शतपथगतमन्त्रजातमत्र
प्रथितनिदर्शनमागमैकवेद्यम् ।
निगमपथपरा वदन्ति केचि-
द्विधिनियतं यदिहापि दर्शयन्ति ॥ ६ ॥

इस विषय में [एक वा इद विबभूव सर्वम्] (१) तत्सम्भूय भवत्येकमेव (२) इत्यादि वेदमन्त्र तथा शतपथ ब्राह्मण की अनेक कण्डिकायें प्रमाण रूप में प्रस्तुत हैं ॥ ६ ॥

प्रकृतिविकृतिमात्रमत्र तेन
स्वगुणवशेन समन्ततोऽनुगृह्य ।
नियमितमिदमप्रतीयमानं
कपिलमतेन यदादिशन्ति विज्ञाः ॥ ७ ॥

गुणभेद से विभिन्न प्रकृति का यावन्मात्र विकार सब ओर से अपने वश में करके इस अप्रतीयमान अव्यक्त जगत् को उस ब्रह्म ने अपने सदसद्विलक्षण रूप में धारण किया है ॥ ७ ॥

प्रलयमुपगतं जगत्समस्तं
पुनरुचितानुचितक्रमेण योऽत्र ।
प्रकटयति यतस्ततः स लोके
विधिरभिधीयत उत्तमो विधानात् ॥१२॥

प्रलय काल में समस्त जगत् को अपने स्वरूप में रखकर प्रलयान्त में उसको फिर प्रकट करने से वही ब्रह्म ब्रह्मा के नाम से कहा जाता है ॥ १२ ॥

रविशशिकलयाऽभितः प्रपश्य-
न्सकलमिदं परिपाति धातृसृष्टम् ।
निखिलमिदमनुप्रविश्य यस्मा-
त्तत इह सत्यमुदीर्यते स विष्णुः ॥१३॥

ब्रह्मा के द्वारा प्रकट हुए जगत् को सूर्य और चन्द्रमा के द्वारा बार बार देख कर उसका पालन करने से वही ब्रह्म विष्णु के नाम से सर्वत्र कहा जाता है ॥ १३ ॥

विधिनियतगुणानुगस्वशक्ति-
व्ययबहुलब्धपरिश्रमप्रशान्तम् ।
जगदिदमखिलं समाप्य शेते
यत उदितस्ततएव सोत्र शेषः ॥१४॥

विधि नियत शक्तियों के घटने पर कारण में लीन जगत् को प्रसुप्तावस्था में रख कर अन्त में शेष रूप से रहने के कारण वही ब्रह्म शेष शब्द से सम्बोधित किया जाता है । [शिष्यत इति शेषः] ॥ १४ ॥

समविषमविभागभेदभिन्नं
सकलमिदं गुणपारवश्यतोऽलम् ।
जगदवति यतस्ततः स लोके
रविरतमोमिति नामतोऽत्र गीतः ॥१५॥

गुणों की परवशता से सम विषम भावावस्थित इस जगत् का निरन्तर पालन करने से वही ब्रह्म ओम् शब्द से कहा जाता है। [अवतीति ओम्] ब्रह्म का यह सगुण नाम है। संसार में निर्गुण ब्रह्म का कोई नाम ही नहीं है। ॥ १५ ॥

प्रथममवतरन्महालयान्ते
निगमपदैः प्रथितः सहस्रनेत्रः।
स जगति भगवान्सहस्रपादः
पुरुषपदेन यजुर्भिरत्र गीतः ॥१६॥

महाप्रलय के अनन्तर सबसे प्रथम अवतीर्ण होने के कारण वही ब्रह्म पुरुषावतार के रूप में प्रकट होता है जिसका वर्णन यजुर्वेद के पुरुष सूक्त में आया है ॥ १६ ॥

चरमचरमिदं जगत्समस्तं
रविमधिरुह्य रथं यतः स पश्यन्।
सरति वियदुपेत्य गीयतेऽतः
स जगति सूर्यपदेन देवदेवः ॥१७॥

रथ पर अवस्थित होकर चराचर विश्व का अवलोकन करने से वही ब्रह्म आकाशगामी होने के कारण सूर्य पद से कहा जाता है [सरति आकाशे गच्छतीति सूर्यः] ॥ १७ ॥

निजनिजकृतिभिर्विभेदमाप्तं
प्रकृतिगणं गणयन्ननेकरूपम्।
यदवति ततएव वेदविद्भि-
र्गणपतिरित्यभिधीयते स देवः ॥१८॥

अपने अपने कार्य में परिणत होने के कारण अनेक रूपों में अवस्थित प्रकृतिके गण को परिगणित करने से वही ब्रह्म गणपति पद से व्यवहृत होता है [गण्यन्ते संख्या विषयी भूता भवन्ति ये ते गणाः। तेषाम्पतिर्गणपतिः] ॥१८॥

अधिगतबहुशक्तयो यथाव-
द्यत अधिगत्य बलं क्रियानुरूपम्।

दिविपद उदय प्रयान्ति काले
स जगति शक्तिरुदीर्यतेऽवतार ॥१९॥

अपने अपने कार्य के अनुरूप बल को प्राप्त होकर गण जिसके अवलम्ब पर संसार में काम करते हैं वही शक्ति मय ब्रह्म संसार में शक्ति पद से कहा जाता है ॥ १९ ॥

इति बहुविधनामरूपभेदै-
रिदमभित परिवीतमप्रमेय ।
प्रविशति किल य सएव विज्ञै-
र्जगति विराडिति गीयते महेश ॥२०॥

इस प्रकार अनेक नाम और गुणों के द्वारा समस्त विश्व को व्याप्त कर जो उस में ही प्रविष्ट रहता है उसी ब्रह्म को गुणज्ञ जन विराट पद से सम्बोधित करते हैं ॥ २० ॥

सकलमपि जगत्तदेव तस्मि-
न्नधिगतमित्युपनन्द्य य सपर्याम् ।
जगत इह करोत्यभेदबुध्या
भवति सएव महानभिन्नदृष्टि ॥२१॥

यह समस्त जगत् ब्रह्म ही है और ब्रह्म में ही अधिष्ठित है ऐसा समझ कर अभेद बुद्धि से जो जगत् की सेवा करता है वह महत्व को प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

प्रथममिह भवे विधातृसृष्टै
सनकसनन्दननारदादिमुख्यै ।
अनुमतमिदमेव तत्त्वबुध्या
जगदिदमीश महेश्वरादभिन्नम् ॥२२॥

इस सृष्टि में सर्व प्रथम ब्रह्मा के पुत्र सनकादि मुनियों ने इसी अभेद भाव को मन में रख कर अपना सिद्धान्त स्थिर किया था ॥ २२ ॥

अतिकठिनमिदं विभेदबुद्धि-
व्यवमितमीदृश समासतो मुनीशै ।

जगदुपकृतये मता समर्चा
प्रकृतिगतस्य विभोरनेकरूपैः ॥२३॥

ईश्वर और जगत् में भेद रखने वाले पुरुषों के लिये प्राचीन मुनियों ने दूसरा मार्ग उपासना का स्थित किया है जो सर्वोपकारक होने से सर्वत्र प्रचलित है ॥२३॥

निजरुचिवशतो जनैर्गुणाना-
मनुसृतिमेत्य गुणैर्विभिन्नरूपाः ।
हरिहररविशक्तिरूपभासा
बहुविधदेवगणाः समाद्रियन्ते ॥२४॥

संसार में गुणों की भिन्नता से मनुष्य अपनी रुचि के अनुसार भिन्न भिन्न गुण वाले शिवादि देव गणों का पूजन करते हैं। ॥ २४ ॥

अनुसरति जनः शमप्रधानं
पुरुषमजं बहुसत्वसम्प्रसूतः ।
शिरसि धृतसुरापगं यथाव-
ज्जगति न यत्र कदापि भेदबुद्धिः ॥२५॥

जो मनुष्य सत्व सम्पन्न होता है वह शम प्रधान शिव की उपासना करता है जिसमें कदापि वैषम्य देखने में नहीं आता है ॥ २५ ॥

रजसि निपतितो जनो निसर्गा-
द्भजति रजोगुणवन्तमेव देवम् ।
दशरथतनयं नयप्रधानं
गिरिवरधारिणमादरेण कृष्णम् ॥२६॥

रजोगुणी पुरुष स्वभाव से प्रायः रामकृष्णादि देवगणों का समर्चन करते हैं जिनमें नीति प्रधान जीवन देखने में आता है ॥ २६ ॥

तमसि निपतितस्तमःप्रधानं
परशुधरं नरसिंहमुग्ररूपम् ।
हलधरमथवा ततोऽधिकं वा
कमपि गुणानुगचित्तपारवश्यात् ॥२७॥

तमोगुण प्रधान पुरुष प्रायः तमोगुण प्रधान देव की ही उपासना करते हैं जिनमें परशुराम नृसिंह-बलराम आदि प्रधान माने गए हैं ॥ २७ ॥

निजनिजरुचितारतम्यभेदा-
स्त्वृयति जनः किल यां निजेष्टमूर्तिम् ।
तदुचितफलदानतो महेशः
स्वयमुपयाति तदीशतां प्रसन्नः ॥२८॥

मनुष्य अपनी भावना के अनुसार जिस जिस इष्टदेव की उपासना करता है उस उस के द्वारा व्यापक ईश्वर सबका अभीष्ट पूरा करता है । ॥ २८ ॥

अवतरति विभुर्यदाप्य लिङ्गं
गुणवशतः सगुणीभवञ्जगत्याम् ।
निजरुचिवशतस्तदेव लोके-
रनुदिनमादरतः समर्च्यतेऽस्य ॥२९॥

निर्गुण ब्रह्म सगुण होकर जिस रूप में प्रकट होता है उसी रूप को उपासक लोक अपना उपास्य समझ लेते हैं ॥ २९ ॥

रविशशिजलभूमरुद्विहायः-
प्रभृति यदत्र दृशोः पदं प्रयाति ।
सकलमपि तदेतदस्य लिङ्गं
निगमनिदर्शनतः समामनन्ति ॥३०॥

संसार में सूर्य चन्द्र जल वायु आदि जो जो पदार्थ देखने में आते हैं वे सब उसी निर्गुण ब्रह्म के लिङ्ग हैं ऐसा वेदों में लिखा है । ॥ ३० ॥

यमनियमपरा यदत्र सान्ध्यं-
विधिमधिकृत्य जलाञ्जलिं वहन्ति ।
रविरथमधिरुह्य तं प्रगृह्णन्
विभुरयमेव शिवः प्रसादमेति ॥३१॥

कर्मकाण्ड में निरत मनुष्य सन्ध्या के समय जिसको जलाञ्जलि अर्पित करते हैं वह सूर्य मण्डलगत ब्रह्म ही है ॥ ३१ ॥

विधिरचितविचित्रवह्निकुण्डे
निहितमनेकविधं हविः प्रपश्यन् ।
हुतवहधृतदिव्यलिङ्गरूपो
जगदवति प्रथितः सएव विष्णुः ॥३२॥

विधि पूर्वक वेदी बनाकर उसके अन्दर जो हवन किया जाता है वह भी अग्नि रूप लिङ्ग के द्वारा उसी ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

रविशशिनयनो द्युलोकमूर्धा
धरणिपदो दहनप्रसन्नवक्त्रः ।
विभुरयमखिलं जगत्समेत्य
श्रयाति विरडिति कल्पनामनन्ताम् ॥३३॥

जिस ब्रह्म के सूर्य और चन्द्रमा नेत्र हैं द्युलोक मूर्धा है पृथिवी चरण हैं और अग्नि मुख है वही ब्रह्म सर्वत्र व्यापक होकर विराट् के रूप में अवस्थित है ॥३३॥

जनिमगमदयं शशी कलावा–
नहह स यन्मनसो रविः प्रचण्डः ।
नयनत उदियाय मातरिश्वा
श्रवणयुगात्स कथं गताकृतिः स्यात् ॥३४॥

जिसके मन से चन्द्रमा नयन से सूर्य और श्रोत्र से वायु प्रकट होता है उस ब्रह्म को निराकार मानना सर्वथा असङ्गत है क्यों कि सर्व व्यापक होने के कारण ये सब उसी के आकार हैं ॥ ३४ ॥

यजुषि निगदितं तदस्य रूपं
बहुविधमन्त्रपदैर्यदस्त्यनन्तम् ।
जगति गुणवशेन तत्वविद्भिः
प्रतिपदमाद्रियते तदेव भक्तैः ॥३५॥

यजुर्वेद के पुरुष सूक्त में अनेक मन्त्रों से उस ब्रह्म का वर्णन मिलता है जो अनन्त होने पर भी उपासकों के द्वारा अनेक रूपों में पूजित होता है ॥३५॥

निगदितबहुभिन्नदिव्यलिङ्गे
भगवति ये निजतर्कपारवश्यात् ।
कुपथमनुगता वितर्कबुद्धिं
विदधति ते पशवो निरस्तशृङ्गाः ॥३६॥

वेद में जिस ब्रह्म के अनेक लिङ्ग कहे गये हैं उसको अपने तर्क बल से जो नहीं स्वीकार करते हैं वे वास्तव में निरस्त शृङ्ग पशु हैं ॥३६॥

अत इह जनिमेत्य कर्मयोगा–
ज्जगति गुणानुगमेन सर्वरूपः ।
सकलगुणमयो गुणप्रसूतिः
प्रतिदिनमादरतः समर्चनीयः ॥३७॥

इसलिये संसार में जन्म लेकर प्रत्येक पुरुष को उस सर्वव्यापक सर्वगुणमय सगुण ब्रह्म का प्रतिदिन पूजन करना चाहिये ॥ ३७ ॥

न जगति जनिमेत्य यैरनन्तः
सकलजगन्निलयो विभिन्नलिङ्गः ।
निजहृदि विमले समर्च्यते ते
हतविधिना हठतो हताः प्रमत्ताः ॥३८॥

जन्म लेकर अनन्त शक्ति सम्पन्न अनेक रूप जगन्निवास ब्रह्म का जो अपने हृदय में आदर नहीं करते हैं वे वास्तव में वञ्चित हैं ॥ ३८ ॥

प्रणमत शिवमेकमद्वितीयं
तत इह जन्मनि योऽष्टमूर्तिरुक्तः ।
सकलगुणमयोऽप्यथर्वमन्त्रे–
ऽगुण इव प्रतिभाति हृत्प्रतिष्ठः ॥३९॥

इसलिये अथर्ववेद में जिसको अष्टमूर्ति माना है उस अद्वितीय शिव का पूजन करो जो सगुण होने पर भी निर्गुण जैसा प्रतीत होता है ॥ ३९ ॥

अखिलभुवनरक्षणाय यात्र
प्रथितगुणा महिषासुरप्रहर्त्री ।

जगतिविजयते शिवा भजध्वं
परमसुखाय सुखेन तामुपास्याम् ॥४०॥

समस्त विश्व की रक्षा का भार जिस पर अवलम्बित है वह महिषमर्दिनी भगवती समस्त सुखों को देने वाली है इस कारण उसकी उपासना करो ॥४०॥

अधृत निजकनिष्ठिकाग्रभागे
शिशुरिव यो गिरिमप्रमेयशक्तिः।
दिविषदुपनतं तमेव राधापति-
मिह वेदकथं समाद्रियध्वम् ॥४१॥

कनिष्ठिका के ऊपर गोवर्धन गिरि को धारण कर जिसने व्रज की रक्षा की थी उस राधापति भगवान् का आदर पूर्वक अर्चन करो। [स्तोत्र राधानापते] इस ऋग्वेद के मन्त्र में राधापति की स्तुति का वैदिक आदेश विस्पष्ट है ॥४१॥

त्रिभिरिदमखिलं जगन्मिमीते
निजचरणैरलघुर्लघुस्वरूपः।
भजत तमिह वामनं विचित्र-
प्रथितगुणं गदितोस्ति यः श्रुतिभ्याम् ॥४२॥

तीन चरणों से समस्त जगत् को नापकर जो अनन्त होने पर भी लघु रूप प्रतीत होते हैं उन वामन का अर्चन करो [इदं विष्णुर्विचक्रमे (१) प्रतद्विष्णुस्तवते (२)] इन दो यजुर्वेद के मन्त्रों में वामन का विस्पष्ट वर्णन है ॥ ४२ ॥

निजजनकमिहाशु सत्यवाचं
जगति विधातुमपास्तराज्यसौख्यः।
वनमुपगतवान्य एकवीरः
प्रभुरवतात्स जगज्जनं ससीतः ॥४३॥

अपने पिता को सत्यवाक् सिद्ध करने के लिये जो राज्य छोड़ कर बन को गये वे भगवान् संसार की रक्षा करें ॥ ४३ ॥

बलविजितसमस्तशत्रुवर्गः
प्रथितबल· पुनरत्र यो युगान्ते।

जगदिदमविता सएव कल्की
हतयवनः शिवमातनोतु विष्णुः ॥४४॥

चार लाख बत्तीस हजार आयु वाले कलियुग के चतुर्थांश शेष रहने पर अवतार लेकर जो विश्व की रक्षा के लिये दुष्टों का संहार करेंगे वे कल्की सब का कल्याण करें ॥ ४४ ॥

बहुविधजनधारणाभिरस्मि-
ञ्जगति गतो बहुरूपतां य एकः ।
स भवतु जगतां शिवाय देवः
स्थितिलयसर्जनहेतुभूतलिङ्गः ॥४५॥

मनुष्यों की धारणाओं के अनुरूप जो अद्वितीय होने पर भी अनेक रूपों को धारण करते हैं वे सृष्टि स्थिति प्रलय कारण रूप भगवान् सब का कल्याण करें ॥४५॥

इति भगवदुपासनाविशिष्टं
निजकथनं विनिवेद्य भक्तवृन्दे ।
मुनिरयमवदत्प्रसिद्धतीर्थ-
स्थितिविषये मतमात्मचित्तनिष्ठम् ॥४६॥

इस प्रकार अपने शिष्यों के प्रति उपासना के विषय में अपना मत कहकर भगवान् श्रीचन्द्रजी तीर्थों के विषय में अपना मत प्रकट करने लगे ॥ ४६ ॥

तरति जनिमृतिप्रपञ्चदुःख-
व्रजमिह यत्परिसेवनेन सद्यः ।
गुरुपदयुगलं तदाद्यतीर्थं
विमलमनोऽपि समुच्यतेऽत्र तीर्थम् ॥४७॥

आपने कहा कि आवागमन रूपी चक्र से बचाने वाला पहिला तीर्थ गुरु का चरण युगल है और दूसरा तीर्थ विशुद्ध अपना मन है। इसीलिये [तीर्थं पर किं स्वमनो-विशुद्धम्] ऐसा श्री शङ्कराचार्य जी ने लिखा है ॥ ४७ ॥

विधिनिहितमहाध्वरप्रसङ्गै-
रुदयमियाय सुखेन यत्र देवः ।
सकलकलुषनाशनक्षमन्त-
द्धरणितलं जगतीह तीर्थभूतम् ॥४८॥

वेद विहित अनेक यज्ञों के करने से जहां पर भगवान् अवतीर्ण हुए हैं वह समस्त पाप क्षय कारक भू प्रदेश तीसरा तीर्थ है। इसमें वर्तमान समस्त तीर्थों का समावेश हो जाता है ॥ ४८ ॥

भगवत उरुगायपुण्यकीर्तेः
प्रथितगुणश्रवणेन यत्र कल्कम् ।
सपदि विलयमेति तन्मुनीनां
सदनमरण्यगतं वदन्ति तीर्थम् ॥४९॥

जहां पर भगवान् के गुणों का अहर्निश श्रवण होता है वह मुनियों का वन-गत आश्रम चौथा तीर्थ है। जहां पर जाने से मानसिक पाप नष्ट होते हैं ॥ ४९ ॥

हिमवत उदयं समेत्य ये ये
जलधिमवाप्य लयं प्रयान्ति ते ते ।
निजगुणवशतो जलप्रवाहा-
व्यवहृतये भुवि तीर्थतां प्रयान्ति ॥५०॥

हिमालय से अवतीर्ण होकर जो सागर तक प्रवाहित होकर भरत को पवित्र करते हैं वे गङ्गादि नदी प्रवाह भी संसार में तीर्थ कहे जाते हैं ॥ ५० ॥

कृतनिवसितिरेषु पुण्ययोगा-
न्मनुजः ऐति विशुद्धिमन्तरङ्गे ।
तदनु विमलबोधसम्भवेन
प्रशममुपैति निरस्तसर्वबन्धः ॥५१॥

इन तीर्थों में यथा समय निवास करने से मन शुद्ध होता है और शुद्ध मन में ज्ञान का उदय होने से मनुष्य बन्धन रहित और शान्त होता है ॥ ५१ ॥

न भवति किल मुक्तिरत्र लोके
विमलविबोधमृते कथञ्चनापि ।
निगदितमिदमेव वेदमन्त्रै-
र्यजुषि निरस्तसमस्तभिन्नमार्गम् ॥५२॥

संसार में विना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती है यह अटल वैदिक सिद्धान्त है इसी कारण [ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः (१) नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय] इत्यादि मन्त्र अन्य मार्ग का निराकरण करते हैं ॥ ५२ ॥

इति निगममतं समाधियोगा-
न्मुनिरयमाश्रितवत्सलो विलोक्य ।
हृदि विमलतरे पदाश्रितानां
शिवफलदं निजगाद सत्यसन्धः ॥५३॥

भगवान् श्रीचन्द्र ने समाधि में इस सिद्धान्त का मनन करके अपने आश्रित जनों के कल्याणार्थ इस प्रकार कथन किया है जो सनातनधर्म का पदे पदे पोषण करता हुआ मनुष्य को सर्वोन्नत बनाता है ॥ ५३ ॥

यदुदितमिह भक्तिमार्गनिष्ठै-
र्भगवदनुग्रहतोपि मुक्तिसौख्यम् ।
तदपि न निगमप्रदिष्टमार्गा-
नुगमविरोधि विचार्यतां विधिज्ञैः ॥५४॥

भक्ति का पक्ष लेकर जो मनुष्य भगवान् के अनुग्रह मात्र से मुक्ति का होना मानते हैं उनका कथन भी ज्ञान मार्ग का विरोधी नहीं है क्योंकि [भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते] इत्यादि वाक्य उनके मत में भी भक्ति से ज्ञान और ज्ञान से मुक्ति का होना बतलाते हैं । भक्ति भगवान् तक पहुंचाने वाली है परन्तु ज्ञान स्वरूप भगवान का तात्विक स्वरूप केवल ज्ञान वेद्य ही माना गया है ॥ ५४ ॥

यदवधि हृदयं न शुद्धिमेति
प्रकृतिमलेन समन्ततोऽनुविद्धम् ।
तदवधि समुदेति नैव भक्ति-
र्भगवति सर्वगुणाश्रये यथावत् ॥५५॥

प्राकृतिक मलों से सम्बद्ध मन जब तक शुद्ध नहीं होता है तब तक सर्वगुणाश्रय भगवान् में यथार्थ भक्ति नहीं होती है यह बात सर्वांश में सत्य है ॥ ५५ ॥

प्रकृतिविकृतयो मनस्युपेताः
प्रसभमुदस्य मनांसि रागभाजाम् ।
भगवदुदितमार्गतः स्वमार्गे
मनुजमियं विनिवेशयन्ति दृप्ताः ॥५६॥

मन में उठे हुए प्राकृतिक विचार सांसारिक जनों का मन हठ से अपनी ओर खींचकर भगवत्प्रदिष्ट मार्ग से मनुष्यों को हटाते हैं और अपने २ विषयानुसारी मार्गों में मनुष्य को हठात् आकृष्ट करके उनको अधोगति में ले जाते हैं ॥ ५६ ॥

सुपथकुपथभेदमत्र लोके
निगमनिबोधितमार्गतोऽवगत्य ।
सुपथमनुसरत्यपास्य जन्तुः
कुपथमलं भगवत्कृपावलम्बः ॥५७॥

जो मनुष्य भगवत्कृपा का अवलम्ब लेकर काम करता है वह सुमार्ग और कुमार्ग को वेद के द्वारा अलग अलग समझ कर कुमार्ग छोड़ कर सुमार्ग में प्रवृत्त होता है ॥ ५६ ॥

यदवधि विमले मनस्यनन्तः
समुदयमेति न बोधगम्य ईशः ।
तदवधि न भवत्युपासकानां
मनसि कदापि निरन्तरोऽनुरागः ॥५८॥

जब तक विमल हृदय में ज्ञानगम्य अनन्त ईश कला का उदय नहीं होता है तब तक उपासकों के मन में सतत अनुराग उत्पन्न नहीं होता है जो कि मनुष्य जन्म का निस्तारक और बन्धन का उच्छेदक माना गया है ॥ ५८ ॥

व्यभिचरणपरा मनुष्यभक्ति-
र्न भवति मुक्तिपथानुमोदयित्री ।
यदि भवतिकथञ्चिदाशु नाशं
व्रजति निराश्रयिणी लतेव साऽत्र ॥५६॥

भगवान् में व्यभिचारिणी भक्ति मनुष्य को मुक्ति की ओर नहीं लगा सकती है यदि कुछ समय तक वह उनकी ओर चलती भी है तो अन्त में वह निरालम्ब लता की तरह शीघ्र ही नीचे गिर जाती है ॥ ५९ ॥

दृढतरमवलम्ब्य तत्त्वबुध्या
निगमपथं भगवत्कृपैकलभ्यम् ।
मुनिमतमतएव शुद्धचित्ते
विमलधियोऽनुदिनं विभावयन्तु ॥६०॥

भगवत्कृपा से प्राप्य निगम मार्ग का तत्व बुद्धि से समझ कर जो पुरुष मुनि मत में चलते हैं वे ही ससार में आवागमन रूप चक्र का उच्छेद करके अन्त में मुक्त होते हैं ॥ ६० ॥

न भवति मुनिमार्गवञ्चकानां
भगवति भेदजुषां कदापि भक्तिः ।
तरलतरधियां भवे क्व मुक्ति–
र्भजत ततः शिवमेकमद्वितीयम् ॥६१॥

मुनिमार्ग निन्दक भेदवादी पुरुषों को भगवान् में कदापि भक्ति नहीं होती है उसके अभाव में मुक्ति का होना सर्वथा असम्भव है इसलिये मुनि मार्ग का अनुकरण अवश्य करना चाहिये ॥ ६१ ॥

निगमनिगदितं तदेव सोऽहं–
पदमधिगत्य निरस्य भेदबुद्धिम् ।
भगवति हृदयस्थिते नितान्तं
नयत मनो भगवत्कृपावलम्बाः ॥६२॥

वेद प्रोक्त सोऽहं पद का अवलम्ब लेकर भेदवाद को हृदय से दूर करके हृदय स्थित भगवान् में मन लगाकर मनुष्यों को अपना कल्याण करना चाहिये ॥ ६२ ॥

हृदयविनिहितोऽस्ति योयमात्मा
भवति स एव विवेकतः परात्मा ।
मतमिदमनुरागतो मुनीनां
हृदि विनिवेश्य लयं नयन्तु भेदम् ॥६३॥

हृदय में विद्यमान जो यह आत्मा है वही तात्त्विक दृष्टि से परमात्मा बन जाती है मुनियों के इस सिद्धान्त का हृदय में धरकर भेद को नष्ट करना चाहिये ॥ ६३ ॥

इदमधिगतमात्मतत्त्वमेकं
बहु विनिवेद्य भवत्सु भावुकेषु ।
कृतकृतिरधुनाहमस्मि देवा-
द्गुरुतरभारमुपस्य यद्वदीश· ॥६४॥

भगवान् कहते हैं कि हे प्रिय शिष्यो! इस तत्त्व को आप लोगों के समक्ष रख कर मैं इस समय कृत कृत्य बन गया हूं और बड़ा भारी भार उतार कर ईश्वर की तरह आनन्द सागर में निमग्न हो रहा हूं ॥ ६४ ॥

इति मुनिरुपदिश्य तीर्थतत्त्वं
निगमगवेषितमागमैर्विभक्तम् ।
भगवदुदितभक्तियोगगम्य-
क्रममपि तत्त्वदृशा बभूव तुष्ट ॥६५॥

इस प्रकार अपने प्रिय शिष्यों का सम्बोधित करके भगवान् श्रीचन्द्रजी ने जा अवतार तत्व और तीर्थतत्व वर्णन किया है उसका कर्त्तव्य बुद्धि से उपक्रमोपसंहार समझ कर भगवान् का अवतार सम्बन्धी समस्त कार्य सिद्ध हो जाता है इसीलिये भगवान् प्रसन्न होगए हैं ॥ ६५ ॥

मुनिगदितमिदं निशम्य सर्वे
चरणयुगार्पितवीक्षणा· समस्तम् ।
निजहृदयगतं निरस्य भेद
विगतभया विगतश्रमा बभूवु· ॥६६॥

भगवान् का उपदेश सुनकर आपके समस्त शिष्य भी द्वैतभाव से नष्टभय और गतश्रम हो गए ॥६६॥

इयमतिरुचिरा सुपुष्पिताग्रा
हृदयहरी मम मालतीलतेव ।

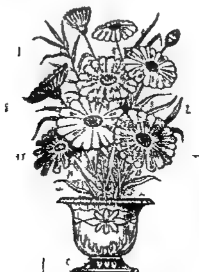
मदयतु मुनिमण्डलानि सद्य-
कृतिरधुनाऽशुरुवे प्रशस्तवाच ॥६७॥

इस विषय का वर्णन करने वाली अत्यन्त रुचिर मनोहारिणी पुष्पिताग्रा यह कृति भी मुनिमण्डल को आनन्द देती हुई मालती लता के समान सबको आनन्दित करे ॥६७॥

अवसितिमुपनीय शारदाया-
श्चरणसरोरुहवन्दनाय सर्गम् ।
कविरयमधुना निरस्तचिन्तः
स्मरति महेश्वरमेकमद्वितीयम् ॥६८॥

इतना कहकर अब इस विषय का उपसंहार करके नियमपूर्वक सरस्वती का वन्दन करने के लिये इस सर्ग को यहीं पर विश्राम देकर अपना चित्त उसी की ओर लगाते हैं ॥६८॥

इतिश्री सनाढ्यवंशोद्भव कविवर श्रीमदम्बिकानन्दशर्मप्रणीते
मतिलके जगद्गुरुश्रीचन्द्रदिग्विजय महाकाव्ये
देवोपासनाविषयकश्चतुर्दश सर्गः





परमपूज्य दर्शनरत्न मण्डलेश्वर स्वामि सर्वानन्द जी महाराज काशी ।

बी० एन० प्रेस इटावा

पञ्चदशः सर्गः



श्रीमानतःपरमुपस्थितबालहास–
श्रीपुष्पदेवकमलासनमुख्यशिष्यैः ।
पृष्टः प्रसन्नवदनः परलोकवृत्त–
मेवं क्रमेण निजगाद यथावकाशम् ॥ १ ॥

गत सर्ग में अवतार और तीर्थ विषय में अपना मत प्रकट कर इस सर्ग में भगवान् कमलासन बालहास पुष्पदेव आदि अपने मुख्य शिष्यों के प्रश्न करने पर परलोक के विषय में अपना मत अभिव्यक्त करते हैं ॥ १ ॥

लोकान्तरंप्रति गतस्य कृतानुगस्य
जीवस्य कर्मविषये यदहं भवद्भिः ।
पृष्टोस्मि तत्सकलमेव सनत्कुमारः
पूर्वं जगाद मुनये समुपागताय ॥ २ ॥

आप कहते हैं कि हे प्रिय शिष्यो ! आप लोगों ने इस समय परलोक के विषय में जो प्रश्न किया है वही प्रश्न प्राचीन समय में सनत्कुमार के समक्ष अन्य मुनियों ने भी किया था जिसका उत्तर उस समय सनत्कुमार जी ने दिया था ॥ २ ॥

तस्मादनुक्रमवशेन मया यदाप्तं
सद्वृत्तमत्र विषयेऽवितथं गुरुभ्यः ।
सर्वं तदेव निगमानुमतं भवद्भ्यः
सन्दिश्यस्ते सकललोकहिताय सद्यः ॥ ३ ॥

गुरु परम्परा प्राप्त वही उत्तर अपने गुरुवर्य से जो हमने अनुक्रमसे प्राप्त किया है आज आप लोगों के प्रश्न करने पर ससार के कल्याणार्थ इस समय कहता हूं आप इसको ध्यानपूर्वक श्रवण करें ॥ ३ ॥

जीवो विभुः कृतवशेन विहायलोकं
मर्त्यं यदैति परलोकमदृष्टमार्गम् ।

मार्गद्वयं निजगतागतहेतुभूतं
पश्यत्यचक्षुरपि बुद्धिबलेन दिव्यम् ॥ ४ ॥

जीव जिस समय अपने कर्मवश से इस लोक को छोड़ कर लोकान्तर के लिये प्रस्थित होता है उस समय उसके समक्ष दो मार्ग उपस्थित होते हैं। इसका निर्देश [द्वे सृती अशृणवम्] इस मन्त्र में मिलता है ॥ ४ ॥

आद्यस्तयोर्निगदितो निगमेन दैवः
पैत्रोऽपरः प्रथितलक्षणवाननन्तः ।
विश्वं समस्तमपि गर्भगतं समेति
याभ्यामिदं सुकृतदुष्कृतभावविद्धम् ॥ ५ ॥

उन दोनों मार्गों में पहिला देवयान और दूसरा पितृयान है। इन दोनों मार्गों से ही समस्त विश्व आता और जाता है जो कि माता और पिता के सहयोगसे अनेक योनियों में जीव को मिलता है ॥ ५ ॥

एकोत्तराः शतमिदं हृदयं प्रविष्टा
नाड्यः शरीरमधिगत्य शिरः प्रदेशम् ।
यातात्र कर्मपरिपाकवशेन तासा-
मेकाऽमृतत्त्वमिममापयति स्वभावात् ॥ ६ ॥

इस मानव शरीर में हृदय के अन्दर एकसौ एक नाड़ियों का सम्बन्ध है। उनमें एक नाड़ी शिरोभाग में जाकर ब्रह्मरन्ध्र से सम्बन्ध रखती है यदि जीव उसके द्वारा इस देह से निकल जाता है तो अमरत्व को प्राप्त होकर सर्वदा आनन्द भोगता है इस विषयका निर्देश [शतचैका हृदयस्य नाड्यः] इस मन्त्र में स्पष्ट है ॥ ६ ॥

अन्यासु यद्ययमुपेत्य गतिं समेति
नाडीषु कर्मवशतो गमनक्रमेण ।
नीचैः प्रयाति विविधार्तिमनुप्रविष्टो
जीवो गतिद्वयमिदं निगमप्रदिष्टम् ॥ ७ ॥

यदि जीव इसके अतिरिक्त अन्य नाडियों से निकलता है तो गमनानुक्रम से [illegible] जा[illegible] अनेक पशु पक्षि सरीसृप आदि निकृष्ट योनियों में

जाता है यही दो गतियां इस जीवके लिये वेदमें कही गई हैं जिनका निर्देश ऊपर के मन्त्र में दिखाया गया है ॥ ७ ॥

योगी गतिद्वयमिदं प्रविविच्य मूर्द्ध-
द्वारेण वायुमपसार्य विभिद्य सूर्यम् ।
प्राणं विधाय बलवत्तरमप्रमेयां
ब्रह्मस्थितिं समभियाति न यत्र पातः ॥ ८ ॥

योगी इन दोनों मार्गों का विवेचन करके अपने प्राण को ब्रह्मरन्ध्र से *निकालकर सूर्य मण्डल के द्वारा उस अप्रमेय ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है जहां* से कभी आवागमन चक्र में आना नहीं होता है ॥ ८ ॥

येषामियं भवति नैव गतिः स्वभावा-
त्ते चन्द्रमण्डलमुपेत्य मनोबलेन ।
तं पितृलोकमुपयान्ति न यत्र पापाः
सम्प्राप्नुवन्ति गतिमन्धतमिस्रयाताः ॥ ९ ॥

जिनकी यह गति प्राप्त नहीं होती हैं वे मनोबल से चन्द्रमण्डल का भेदन करके इस पितृलोकको प्राप्त होते हैं जहां पर पापी पुरुष कभी नहीं जा सकते हैं इसी का दूसरानाम स्वर्ग है ॥ ९ ॥

येषां न सूर्यगतिरत्र भवे जनानां
नापिद्विजेन्द्रगतिरेव भवत्यपास्य ।
ते मानवं वपुरनन्तगतागतेषु
दैवेन यान्ति निजकर्मफलेन बिद्धाः ॥१०॥

प्राणबल और मनोबल के अभाव में जिनको ऊपर कही हुई दोनों गति प्राप्त नहीं होती हैं वे मनुष्य शरीर को प्राप्त होकर ब्राह्मण से चाण्डालपर्यन्त अनेक उच्चावच योनियों में आते और जाते हैं ॥ १० ॥

भस्मान्तमेनदुदितं निगमे शरीरं
यद्वन्हिसाद्भवति नात्र गतः स जीवः ।

यः पितृलोकमधिगत्य जनैः प्रदत्तं
भुंक्ते फलं जगति बान्धवतामुपेतैः ॥११॥

वेद में शरीर को भस्मान्त कहा है आत्मा को नहीं, आत्मा अनादि अनन्त अजर और अमर है यही अजर अमर जीव ज्ञानवान् होने के कारण पितृलोक में पहुंचकर बान्धवों द्वारा प्रदत्त पदार्थों का अनुभव करता है ॥ ११ ॥

नैनं दहत्यनल एव न मातरिश्वा
जीवं विशोषयति नैव जलप्रपातः ।
संक्लेदयत्यतिशितं न छिनत्ति शस्त्रं
भिन्दन्ति नास्त्रनिचयाः परितो विसृष्टाः ॥१२॥

इस जीवन को अग्नि जला नहीं सकता, है वायु सुखा नहीं सकता है जल गला नहीं सकता है और शितधार शस्त्र काट नहीं सकता इतना ही नहीं इस जीव को मन्त्र प्रयुक्त आग्नेयादि अनेक अस्त्र भी किसी समय नहीं घेर सकते हैं ॥ १२ ॥

अत्यन्तसूक्ष्मकरणो मरणेन हीनो
जीवो न गर्भगमने मनुजैः कथञ्चित् ।
सन्दृश्यते न स विनिर्गत एव देहा-
त्त्रापराध्यति मते मम दृष्टिमान्द्यम् ॥१३॥

देह त्याग के अनन्तर अत्यन्त सूक्ष्म भाव में अवस्थित यह जीव न तो गर्भ में आता दीखता है और न किसी को शरीर छोड़ने के समय जाता दीखता है इस विषय में हमारी अनुमति में दृष्टि की मन्दता ही प्रधान कारण प्रतीत होती है ॥१३॥

विज्ञानवेद्यविषये नवकज्जुलाक्त-
नेत्रप्रवेशमपि ये निजबुद्धिदोषात् ।
पश्यन्ति ते शशक शृङ्गविनिर्मितेन
कस्मात्र दिव्यधनुषा प्रहरन्ति वातम् ॥१४॥

जो मनुष्य विज्ञान वेद्य विषय में अपनी कजराटी आंखों का भी सम्बन्ध रखना चाहते हैं वे अपनी मन्द बुद्धि की प्रखर नोकों से शशक शृङ्ग निर्मित

अलौकिक चाप से आकाश मरुत वायु पर क्यों आक्रमण नहीं करते हैं ? यह तो उनके लिये एक मामूली सी बात है ॥ १४ ॥

कूर्मावताररमणीकुचकुम्भनिर्य-
दुदुग्धाब्धिरोधसि निविश्य विमूकगीतम् ।
रागं कथं न निजकर्णपुटेषु कुर्यु-
र्ये सर्वमक्षियुगलैरिह वेत्तुमर्हाः ॥१५॥

जो मनुष्य प्रत्येक विषयको आंखों से देखना चाहते हैं वे कच्छपकी धर्मपत्नी के कुचकुम्भ से निकले हुए क्षीरसमुद्र के तटपर बैठकर मूकजनके गीत रागरागिणियों का श्रवण क्यों नहीं करते हैं ? ॥ १५ ॥

वन्ध्या वधूर्यदि सुतं जनयेज्जगत्यां
रागोऽष्टमस्वरभिदामपि यर्हि यायात् ।
वेश्या भवेद्यदि सती कथमप्यशङ्कं
मूढोऽपि तर्हि नयनैरिदमत्र पश्येत् ॥१६॥

ससार में यदि वन्ध्या स्त्री बालक को जन सकती हो ? राग यदि अष्टम स्वरसे गाया जा सकता हो ? वेश्या यदि सती बन सकती हो ? तो मूढजन भी अपनी आंखों से सब कुछ देख सकता है । यदि ये तीनों बातें असम्भव हैं तो विज्ञान येय विषय भी आंखों से नहीं देखा जा सकता है ॥ १६ ॥

अन्धो न पश्यति यदि स्थितमग्रदीपं
दीपस्य कोत्रविषये वत दोपलेशः ।
मूढो न वेत्ति यदि जीवमपास्तरूपं
जीवेन तत्र विषये किमिहापराद्धम् ॥१७॥

प्रत्यक्ष में विद्यमान प्रदीपको यदि अन्धा नहीं देख सकता है तो इसमें प्रदीप का क्या दोष है ? इसी प्रकार मूढजन यदि सूक्ष्मावस्था में अवस्थित जीव को नहीं देख सकता है तो इसमें जीवका क्या अपराध है ? ॥ १७ ॥

विश्वासमत्र विषये भगवद्वचोभिः
कृत्वास्तिकैः मङ्गलमाद्रियते विधानम् ।

श्रद्धावतां भगवतश्चरणे जनानां
नोदेति चेतसि कदापि वितर्कवादः ॥१८॥

जो विषय आँखों से नहीं देखा जा सकता है उसमें ईश्वरीय वेद वाक्य के आधार पर केवल विश्वास ही किया जा सकता है। जो आस्तिक भगवान् में अविचल विश्वास रखते हैं उनके चित्त में कभी तर्कवाद स्थान प्राप्त नहीं कर सकता है॥ १८ ॥

ये तर्कमेव भुवि विश्वसनीयमत्र
मत्वा न विश्वसितिमादरतो वहन्ति ।
वेदे वदन्तु किल ते निजतातपुत्राः
केन प्रमाणनिचयेन भवन्ति सिद्धाः ॥१९॥

जो मनुष्य केवल तर्क के बल पर वेदों पर अपना विश्वास नहीं करते हैं वे अपने पिता के पुत्र होने में कौनसा प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थित कर सकते हैं ? ॥१९॥

मातुर्वचांसि यदि तादृशपक्षसिध्यै
प्रामाण्यवादमुपयान्ति मतेन तेषाम् ।
निःश्वासभूतवचनानि जगन्नियन्तुः
प्रामाण्यमत्र विषयेपि तथास्तिकानाम् ॥२०॥

यदि वे इस अदृष्ट विषय में अपनी माता का कथन प्रमाण मानते हैं तो आस्तिक भी परलोक सिद्ध विषय में ईश्वर के निःश्वास रूप वेद को प्रमाण मानते हैं विश्वास उभयत्र समान है ॥ २० ॥

यस्मिन्नदृष्टविषये किमपि प्रमाणं
प्रत्यक्षदृष्टमथवा न तथानुमानम् ।
वेदस्तदादिशति सम्यगवस्थितार्थ-
प्रत्यायको विधिवशाद्विधिवद्विधिज्ञः ॥२१॥

जिस अदृष्ट विषय में प्रत्यक्ष अथवा अनुमान नहीं हो सकता है उस विषय को वेद अनायास ही बतलाने के लिये तयार रहता है इसी लिये वेद ही सर्वोत्तम साधन माना जाता है ॥ २१ ॥

एतत्समस्तमपि चेतसि संविभाव्य
श्रीमानुवाच भगवान्निगमागमज्ञः ।
पश्यन्ति मूढमतयो न गतागतानि
जीवस्य वेदनयनाः प्रविलोकयन्ति ॥२२॥

इस बात को हृदय में रखकर ही श्रीकृष्णने गीता में जीवका गमनागमन ज्ञान वेद्य कहा है चक्षुवेद्य नहीं कहा है इस विषय में [उत्क्रामन्त स्थितं वापि] यह भगवद्वाक्य सर्वोत्तम प्रमाण है ॥ २२ ॥

कर्मानुगो जगति यद्विशति प्रसह्य
जीवः शरीरमथवा विजहाति यद्यत् ।
गन्धानिवाशयगतानुपगृह्य याति
सर्वाणि वायुरिव कर्मवनप्रविष्टः ॥२३॥

जीव अपने कर्मों के फल से जिस शरीर में प्रविष्ट होता है अथवा जिस शरीर का छोड़ता है उससे अपना वासनात्मक वृत्तियों को साथ लेकर ही चलता है जैसे वहन शील वायु पुष्पों का गन्ध साथ लेकर चलता है इसमें [वायुर्गन्धानिवाशयात्] यह भगवद्वाक्य उपादेय है ॥ २३ ॥

यं भावमात्मनि विचार्य जहाति देहं
जीवः स्वकर्मपरिपाकवशेन सद्यः ।
तद्भावभावित उपैति तमेव भावं
वत्सो यथाऽनुगतिमान्निजमातृगन्धम् ॥२४॥

जीव देह छोड़ने के समय जिस भाव को हृदय में रखता है उसी के अनुरूप उसको वासनामय शरीर प्राप्त होता है इसमें माता का गन्ध लेकर नवीन वत्स का उसके पीछे पीछे चलना विस्पष्ट निदर्शन है ॥२४॥

एवं निवार्य हृदयस्थिततर्कवादं
श्रीवन्द्रप्प भगवानुचितप्रमाणैः ।
छान्दोग्यमन्त्रगतमद्भुतभावगर्भं
पञ्चाग्निमार्गमधिकृत्य रमादुवाच ॥२५॥

भगवान् श्रीचन्द्रजी इस प्रकार हृदय स्थित तर्क वाद को प्रमाणों से हटाकर अपने शिष्यों के प्रति इसके अनन्तर छान्दोग्य के आधारपर पश्चाग्नि विद्या का उपदेश करते हैं ॥ २५ ॥

अग्नौ निवेश्य करणं यदि चेतनावा-
ञ्जीवः प्रयाति परलोकमदृष्टमार्गम् ।
तस्मान्निवृत्य पुनरेति तमेव देवा-
दग्निं गतागतविधेरिह साक्षिभूतम् ॥२६॥

चेतना युक्त जीव अपना शरीर यदि अग्नि में छोड़ कर लोकान्तर को जाता है तो वहां से लौटने पर वह फिर अग्नि को ही अपना अवलम्ब बनाकर पृथ्वी पर आता है क्यों कि अग्नि जन्म और मरण दोनों का साक्षी है ॥ २६ ॥

अस्मिन्नदृष्टविषये जगति प्रमाणं
ऋग्वेद एव किल यत्र मनुद्वयेन ।
प्रश्नोत्तरक्रमपरम्परया प्रदिष्टं
जीवस्य भूमिगमनं मुनिभिः पुराणैः ॥२७॥

इस अदृश्य विषय में। [कस्य नूनं कतमस्यामृतानां (१) अग्नेर्वयंप्रथमस्यामृतानां (२)] यह ऋग्वेद के दो मन्त्र प्रमाण हैं जिनमें मरणोत्तर रूप से अग्नि के द्वारा जीव का भूमि पर आना सिद्ध है ॥२७॥

केचित्पुराणमुनयो निगमप्रदिष्ट-
मत्रेतिहासमिममेवमुदाहरन्ति ।
साहाय्यमादिशति यो गुरुशिष्यभाव-
मभ्यागतेषु मनुजेषु बहुप्रतिष्ठः ॥२८॥

इस विषय में प्राचीन मुनियों ने एक इतिहास उपस्थित किया है। जो छान्दोग्य में गुरु शिष्य सम्वाद का रूपक देकर लिखा गया है वह इतिहास इस प्रस्तुत विषय में अत्यन्त उपादेय प्रतीत होता है ॥२८॥

अभ्याजगाम गुरुगर्वभरः पुरात्र
कश्चिद्द्विजः परिव्रजाय स आरुणेयः ।

संघः प्रवाहणमुनेरधिवासमेको
य: श्वेतकेतुरिति विश्रुतनामधेयः ॥२९॥

इतिहास इस प्रकार है एक समय प्रवाहण मुनि के पास परिचय प्राप्त करने के लिये अत्यन्त अभिमानी एक ब्राह्मण कुमार आरुणेय श्वेतकेतु उनके आश्रम पर गया हुआ था ॥ २९ ॥

अभ्यागतं तमुपसङ्गतमीक्ष्य वादे-
सज्जं प्रवाहणमुनिर्निजगाद किन्त्वम् ।
वेत्सि प्रयान्ति कथमत्र भवे समेता
लोकान्तरं प्रकृनयो विनिपात्य देहम् ॥३०॥

उनको विवाद के लिये सन्नद्ध देखकर जैवलि प्रवाहण ने कहा कि यहां से मरकर जीव किस प्रकार अपना शरीर छोड़ कर लोकान्तर को जाता है ? क्या इस विषय को आप भली प्रकार जानते हैं ? ॥ ३० ॥

स्वर्गस्थिता निजनिजोचितकर्मबन्धै-
र्भोगानवाप्य बहुपुण्यफलाननेकान् ।
तस्मान्निवृत्य कथमत्र पुनर्भवन्ति
वेत्सि त्वमेतदपि किं भगवन्यथावत् ॥३१॥

जीव अपने कर्म फल से स्वर्ग को प्राप्त होकर वहां पर पुण्य लभ्य अनेक भोग भोगने के अनन्तर फिर किस प्रकार यहां आकर जन्म लेते हैं ? क्या आप इस विषय से परिचित हैं ? ॥ ३१ ॥

व्यावर्तनं जगति देवपथस्य केन
सम्प्राप्यते सुकृतिना वद वेत्सिचेत्त्वम् ।
केनाथवात्र परलोकगतेन तस्मा-
दागम्यते पितृपथः पुरुषोत्तमेन ॥३२॥

जीव यहां से जाने पर किस कर्म के फल में वहां से देवयान मार्ग से लौटता है ? और किस कर्म के फल से पितृयान मार्ग से लौटता है ? उस विषय में क्या आप कुछ कह सकते हैं ? ॥ ३२ ॥

पूर्तिं समेति न यथा किल पितृलोको
जीवैरितः प्रतिगतैर्नितरामनन्तैः ।
वेत्सि त्वमत्र विषये किमपि प्रशस्तं
यत्सूत्तरं भवितुमर्हति सभ्यवृन्दे ॥३३॥

यहां से गये हुये अनन्त जीवों से पितृ लोक भर क्यों नहीं जाता ? इस विषय में आप कृपा करके क्या कुछ कहने का साहस रखते हैं ? ॥ ३३ ॥

आपो यथा पुरुषतामुपयान्ति लोके
देवैर्हुताः प्रथितपञ्चमभावमेत्य ।
ब्रूहि त्वमत्र विषये यदि वेत्सि किञ्चि-
त्सर्वं यथोचितमनुक्रमतः प्रसादात् ॥३४॥

देव प्रदत्त जल यहां से किस प्रकार पञ्चम आहुतियों में जाकर पुरुष भाव को प्राप्त होते हैं ? इस विषय में आप क्या कुछ कह सकते हैं ? इन प्रश्नों का अनुक्रम से यदि आप उत्तर दे सकते हैं तो कृपया उपक्रमोपसंहार द्वारा उत्तर देना आरम्भ कीजिये ॥ ३४ ॥

प्रश्नानिमानुचितवाग्भिरुदारभावः
संस्थाप्य तस्य पुरतो विनयेन पञ्च ।
किंवक्ष्यतीति मुखमस्य मुनिर्विवक्षो-
रत्रागतस्य विहसन्निव साध्वपश्यत् ॥३५॥

उदार शब्दों में इन पांच प्रश्नों को आरुणेय श्वेतकेतु के समक्ष उपस्थित कर के जैवलि प्रवाहण उसके मुख की ओर देखते हुये उत्तर की प्रतीक्षा में काल यापन करने लगे ॥ ३५ ॥

मूकं तमेषु विषयेषु मुनिं विलोक्य
नष्टाभिमानमनवेक्षितलोकवृत्तम् ।
सद्यः प्रवाहण उवाच गृहं समेत्य
तातं वदस्व स वदिष्यति सूत्तरं त्वाम् ॥३६॥

बहुत देर तक मौन धारण किये हुये मुनि कुमार को देख कर प्रवाहण ने उनसे कहा कि आपसे इन प्रश्नों का उत्तर यदि न होता हो तो आप घर जाकर अपने पिता से इनका उत्तर पूछिये ॥ ३६ ॥

एवं प्रवाहणमुनेः कथनेन सद्यः
स श्वेतकेतुरधिगत्य पितुः समीपम् ।
सर्वं प्रवाहणमुनेः कथनं निवेद्य
तस्योत्तरं मुहुरपृच्छदनन्यचेष्टः ॥३७॥

इस प्रकार प्रवाहण से घर जाने की अनुमति मिलने पर श्वेतकेतु घर जाकर अपने पिता से समस्त वृत्तान्त कहने लगे और इन प्रश्नों का उत्तर पिता से पूछने के लिये उत्सुक थे ॥ ३७ ॥

सोपि प्रसन्नमनसा निजपुत्रमार्तं
प्रश्नैरनन्यगतिकैरवगत्य पृष्टैः ।
सद्यः प्रवाहणमुपेत्य जगाद नाहं
वक्तुं क्षमः किमपि तत्कथय त्वमेव ॥३८॥

पिता ने पुत्र को प्रश्नों के उत्तर न आने पर दुखी देख कर प्रवाहण के पास स्वयं जाना निश्चय किया और जाकर कहा कि मित्र ! मैं इन प्रश्नों का उत्तर इस को नहीं बतला सकता हूँ इस कारण आप ही इसे बतलाइये ॥ ३८ ॥

गर्वापहारकभवद्विधभव्यमूर्तेः
पुत्रोपदेशकरणक्षममीक्ष्य भावम् ।
गर्वोद्धतो निजसुतः प्रहितो मयैव
यस्त्वामुपेत्य गतसर्वमदो बभूव ॥३९॥

हमारा यह पुत्र बड़ा अभिमानी है इसका गर्व आपही दूर कर सकते हैं ऐसा समझ कर हमने इसको आपके पास भेजा था अब इसका गर्व दूर हो गया हम इसके लिये अत्यन्त आभारी हैं ॥ ३९ ॥

इत्थं निपीय परमादरतः समुक्तं
स श्वेतकेतुजनकस्य वचः प्रसन्नः ।

सद्यः प्रवाहणमुनिर्निजमित्रपुत्रं
प्राह प्रसन्नमनसा शृणु वत्स सर्वम् ॥४०॥

इस प्रकार अत्यन्त गौरवपूर्ण श्वेतकेतु के पिता की बात सुनकर प्रसन्न हुए प्रवाहण ने कहा कि वत्स ! तुम मेरे मित्र के पुत्र हो इस कारण अत्यन्त रहस्यपूर्ण इस विषय को मैं तुमसे कहता हू ॥ ४० ॥

लोकोयमग्निरुदितः समिधोऽत्र सूर्यो
धूमोस्य दिव्यकिरणाः सुदिनं प्रकाश. ।
अङ्गारको विधुरनेककलः प्रसिद्धो
विज्ञैरनन्तनिलया गदिताः स्फुलिङ्गाः ॥४१॥
तस्मिन्विचित्रविभवे नियमेन बन्हौ
देवा घृतं यदभिजुह्वति दिव्यकामाः ।
श्रद्धामयं भवति तेन नवीनसोमो
यः कारणं भवति जीवगतागतेषु ॥४२॥

अब सबसे पहिले तुम पञ्चम प्रश्न का उत्तर सुनो !!! यह लोक अग्नि है इसको प्रदीप्त करने वाला सूर्य ही उसकी समिधा है सूर्य की किरणें ही उसकी धूमराजि है दिन उसका प्रकाश है चन्द्रमा अङ्गार है नक्षत्र विस्फुलिङ्ग हैं । इस प्रकार की दिव्याग्नि में देवगण श्रद्धारूप जल का हवन करते हैं उससे सोम उत्पन्न होता है ॥ ४१—४२ ॥

पर्जन्य अग्निरुदितः समिदत्र वायु-
र्धूमोऽभ्रमस्य चपलैव वहुः प्रकाश. ।
अङ्गारकोऽशनिरनेकनिनादमूलो
ह्रादः स्फुलिङ्गनिचयो गगनप्रतिष्ठ. ॥४३॥
तस्मिन्ननेकविभवे नियमेन वह्नौ
देवा घृतं यदभिजुह्वति सोमरूपम् ।
तेनात्र वर्षणमलं भवति प्रशस्तं
यत्कारणं भवति जीवगतागतानाम् ॥४४॥

अब दूसरा अग्नि सुनो !!! पुरुष अग्नि है वायु उसकी समिधा है अभ्र धूम है विद्युत् प्रकाश है अशनि अङ्गार है और शब्द विस्फुलिङ्ग है। इस अग्नि में देवगण सोम का हवन करते हैं उससे वर्षा होती है। ॥४३—४४ ॥

भूलोक अग्निरुदितः समिदत्र वर्षो
धूमः खमेव रजनी किल तत्प्रकाशः।
अङ्गारका दिश इमा विदिशः स्फुलिङ्गा
दिव्योयमग्निरुदितो मुनिभिस्तृतीयः ॥४५॥

तस्मिन्ननन्त विभवे नियमेन वन्हौ
देवा घृतं यदभिजुह्वति वर्षरूपम्।
अन्नं भवत्यधिकमुद्गतमत्र तेन
यत्कारणं भवति जीवगतागतानाम् ॥४६॥

अब तीसरे अग्नि का वर्णन सुनो !!! पृथिवी अग्नि है सवत्सर उसकी समिधा है आकाश धूम है रात्रि प्रकाश है दिशा अङ्गार है और अवान्तर दिशा विस्फुलिङ्ग है इस अग्नि में देवगण वर्षारूप हवन करते हैं उससे अन्न उत्पन्न होता है॥ ४५—४६ ॥

मर्त्योयमग्निरुदितः समिदस्य वाणी
प्राणः स धूमनिचयो रसनं प्रकाशः।
अङ्गारका नयनमुद्गतविस्फुलिङ्गाः
श्रोत्रं चतुर्थ उदितोऽग्निरयं यथावत् ॥४७॥

तस्मिन्ननन्तविभवे नियमेन वन्हौ
देवा यदन्नमुपजुह्वति भिन्नभेदम्।
तेनात्र वीर्यमुपजायत उग्रवेगं
यत्कारणं भवति गर्भगतो जनानाम् ॥४८॥

अब चौथे अग्नि का उपक्रम सुनो !!! पुरुष अग्नि है वाणी उसकी समिधा है प्राण धूम है जिह्वा अर्चि है नेत्र अङ्गारक है और श्रोत्र विस्फुलिङ्ग है। इस अग्नि में देवगण अन्न का हवन करते हैं उससे वीर्य बन कर तयार हो जाता है॥ ४७—४८ ॥

योपेयमग्निरबला तदुपस्थमेव
दिव्या समित्तदभिमन्त्रणमुग्रधूमः ।
योनिः प्रकाश उदितो मिथुनं प्रशस्त-
मङ्गारकः सुखकला इह विस्फुलिङ्गाः ॥४६॥
तस्मिन्नलंकृतपदे नियमेन वन्हौ
वीर्यं हविर्यदभिजुह्वति देवसङ्घाः ।
तेनात्र सम्भवति गर्भ उदीर्णरागो
यः कारणं जगति जीवगतागतानाम् ॥५०॥

अब पञ्चम अग्नि का उद्भव सुनो !!! स्त्री अग्नि हैं उसके पास रहना समिधा हैं उससे बात करना ही धूम है योनि उसका प्रकाश है शिश्न उसका अङ्गार है और आनन्द मासि ही विस्फुलिङ्ग है । इस अग्नि में देवगण वीर्य का हवन करते हैं उससे गर्भ बनता है । इन पांच अग्नियों का यथार्थ ज्ञान ही पञ्चाग्नि विद्या के नाम से प्रसिद्ध है । इस पञ्चम आहुति में जल पुरुषभाव को प्राप्त होता है यह एक प्रश्न का उत्तर है ॥ ४९–५० ॥

पञ्चाग्निभिर्जलमिदं गतिभेदमासं
पञ्चत्वमित्थमधिगत्य कलाविशेषैः ।
सूते जगत्पुरुषतां प्रगतं यथेदं
सन्दर्शितं तव तथाद्य मयापि यत्नात् ॥५१॥
गर्भाद्बहिः स नवमे दशमेऽथवालं
निर्गत्य मासि नियतं निजमायुराप्य ।
यस्मादुदेति समयेन यथावकाशं
तत्रैव याति विलयं दहने यथावत् ॥५२॥

इन पांच अग्नियों से अनेक प्रकार की अवस्था को पहुँचा हुआ देवदत्त जल समस्त जगत् का मूलकारण बनकर पुरुष तक जीव को पहुंचा देता है । गर्भ में आया हुआ पुरुष नवम अथवा दशम मास में बाहर आकर अपनी नियमित आयु का उपभोग करके जिस अग्नि से उत्पन्न है उसी अग्नि में विलीन होता है यही जीव के आवागमन का प्रकाश है ॥ ५१—५२ ॥

एवं गतिं समवलोक्य भवे जनानां
योगी प्रकाशमवलम्ब्य दिनं प्रयाति ।
शुक्लं ततोपि निजयोगबलेन पक्षं
तस्मादुदग्गतिमुपैति रवेः क्रमेण ॥ ५३ ॥
संवत्सरं तत उपेत्य रविं ततोपि
चन्द्रं क्षणद्युतिमवाप्य ततः क्रमेण ।
ब्राह्मं पदं समभियाति यतो न भूयः
सम्भूतिमत्र भुवने लभते कदाचित् ॥ ५४ ॥

योगी इस प्रकार को अपने योग बल से समझ कर चिता से प्रकाशका अवलम्ब लेता हुआ क्रमशः दिन शुक्लपक्ष उत्तरायण संवत्सर आदित्य चन्द्र विद्युत् के अवलम्बसे ब्रह्मलोक में पहुंचता है इस मार्ग को ही देवयान कहते हैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

ये धूममार्गमवलम्ब्य निशामुपेताः
कृष्णं प्रयान्ति निजकर्मवशेन पक्षम् ।
ते दक्षिणायनमवाप्य ततः प्रयान्ति
तं पितृलोकमपि यत्र मृताः प्रयान्ति ॥५५॥
तस्मादवाप्य नियतेर्नियमेन दिव्य-
माकाशमण्डलमवाप्य ततोपि चन्द्रम् ।
तस्मादनुक्रमवशेन तमेव लोकं
यस्मिन्गतागतवशेन विशन्ति भूयः ॥५६॥

सामान्यजन इस मार्ग से न जाकर चिता से धूमका अवलम्ब लेकर क्रमशः रात्रि कृष्णपक्ष दक्षिणायन पितृलोक आकाश चन्द्रमा के अवलम्ब से मर्त्यलोक में पहुंचता है इसी मार्ग को पितृयान कहते हैं इन दो मार्गों से ही जीव आता है इनमें देवयान योगियों के लिये और पितृयान यज्ञादि कर्म करने वालों के लिये नियत है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

भुंक्ते यदत्र मुखजः स्वमुखेन दत्तं
पुत्रैर्हविस्तदभिवीक्ष्य स तुष्टिमाप्तः ।
सद्यः सुखं समभियाति ददाति शान्तिं
सर्वाणि पूरयति चेतसि मङ्गलानि ॥६५॥

श्राद्ध में पितरों के उद्देश्य से पुत्रों द्वारा प्रदत्त जो हविष्य ब्राह्मण भोजन करता है उसको देखकर प्रसन्नता को प्राप्त हुआ वह परलोक गत जीव यहाँ आकर सुख का अनुभव करता है और पुत्र के चित्त को शान्ति देता है और उसके समस्त मनोरथों को अपनी दिव्यशक्ति से पूर्ण करता है ॥ ६५ ॥

क्रव्यादमग्निमधिगत्य यमेन दृष्टा
ये केपि वन्हिजलभूमिगताः समन्तात् ।
तानग्निरानयति सर्वगतः क्रमेण
ये यत्र पूर्वमुषिताः पितरो गृहेषु ॥६६॥

क्रव्याद अग्नि में जलने के समय जिनको यमराज ने देखा है वे यदि अग्नि जल भूमि आदि में भी पहुँच गए हों तब भी अग्नि उनको श्राद्ध में लाकर उपस्थित कर ही देता है ॥ ६६ ॥

अस्मद्गतं निरवलम्बमवेक्ष्य जीवं
तातो यथास्मदुदयाय ददौ स्वरेतः ।
तोयात्मकं तदुदयाय तथा सुतोपि
तस्मै ददाति परलोकमुपागताय ॥६७॥

हमारे जन्म से पूर्व हमारे जीव का जिस प्रकार हमारे पिता ने वीर्य देकर सावलम्ब बनाया है उसी प्रकार पुत्र भी परलोकगत निरालम्ब अपने पिता को अवलम्ब देने के लिये यहाँ पर जल की तीन अञ्जलि देकर जल का बदला चुका देता है ॥६७

आनृण्यमेवमधिगत्य सुत. पितॄणां
तस्योदयाय बहुदत्तजल समान्ते ।
तातं स्मरत्यविरतं यत एव तस्मा-
दत्रागतस्तदवलम्बमुपेत्य जीव. ॥६८॥

इस प्रकार पुत्र पिताके ऋण से अनृण होकर वर्ष के अन्त में एक बार उसके आत्मा की अभिवृद्धि के लिये जल देकर उसका स्मरण करता है जिसने वीर्य-रूप जल का अवलम्ब देकर पुत्र को निरवलम्ब से सावलम्ब बनाया है ॥ ६८॥

एवं परस्परसमुन्नतिमीक्षमाण-
स्तातः सुतोपि निगमोक्तपथं वितन्वन् ।
संसारचक्रमिदमीश्वरशक्तिनद्धं
सम्वर्धयत्यवनिमाप्य तयावनद्धः ॥६९॥

इस प्रकार दोनों पिता पुत्र आपस में एक दूसरे को अवलम्ब देकर वैदिक मार्ग की रक्षा करते हुये उस ईश्वरीय चक्र को चलाते हैं जिसमें वे दोनों बंधे हुए हैं ॥ ६९ ॥

तस्मादिदं निगममन्त्रपदैःसमुक्तं
श्राद्धं यथोक्तविधिनाऽत्र सुतेन कार्यम् ।
यस्मादितः प्रतिगतः स पितास्य धन्यः
स्वर्गे निवासमुपयातु चिराय तृप्तः ॥७०॥

इसलिये इस वेद प्रतिपादित मृतक श्राद्ध को विधि पूर्वक यहां पर करना चाहिये जिससे स्वर्ग में पहुंचे हुये हमारे पितृगण चिरकाल तक वहां पर आनन्द पूर्वक रह सकें ॥ ७० ॥

ये वैदिकं मतमिदं निरपेक्षबुध्या
लोके निरस्य न भवन्त्यनृणाः पितॄणाम् ।
तेषां पतन्ति पितरो निरयेषु लुप्त-
प्रत्यक्षपिण्डजलदानकथाः प्रमादात् ॥७१॥

जो मनुष्य इस वैदिक सिद्धान्त की अवहेलना करके पितृऋण से अनृण नहीं होते हैं उनके पितृ गण श्राद्ध और तर्पण के अभाव में नरक में गिर कर चिर-काल तक दुःख का उपभोग करते हैं ॥ ७१ ॥

तेषामनुप्रपतनेन महान्ति सद्यो
नाशं प्रयान्ति सुकुलान्यपि नैव कश्चित् ।

तेषु प्रधानपुरुषः समुपैति भूर्ति
निःश्वासदग्धकुलतन्तुषु दृष्टमेतत् ॥७२॥

उनके नरक में गिरने पर बड़े बड़े समृद्ध कुल भी सर्वदा के लिये नष्ट होजाते हैं उनमें नाम लेवा पानी देवा कोई भी पुरुष पितरों के शाप से नहीं रहता है यह दशा सात पीढ़ी के बाद हो जाती है ॥ ७२ ॥

एवं विचिन्त्य हृदये कुलतन्तुरक्षा–
दक्षैर्यथाविधि समस्तमिदं विधिज्ञैः ।
कार्यं समस्तकरणं भरणं पितॄणा–
मैतिह्यसिद्धमनुविद्धमुदारकल्पैः ॥७३॥

इस बात को हृदय में विचार कर अपने कुलतन्तु की रक्षा करने के लिये यह मृतक श्राद्ध अवश्य करना चाहिये जिसके करने के लिये श्रुति स्मृति पुराण इतिहास सभी आदेश करते हैं ॥ ७३ ॥

ये केऽपि नास्तिकपथानुगताः पितॄणां
वाञ्छन्ति दर्शनमिह प्रसभं क्रमात्ते ।
देवव्रतेन विहितं निजतातपाद–
श्राद्धं प्रसिद्धमितिहासगतं पठन्तु ॥७४॥

जो मनुष्य नास्तिक मत के अनुगामी होकर श्राद्ध में मृत पितरों का प्रत्यक्ष में दर्शन करना चाहते हैं, वे महाभारत प्रोक्त भीष्मपितामह कृत शान्तनु श्राद्ध का अवलोकन करें जो हरिवंश पर्व में [१६ से २०] अध्याय तक मिलता है ॥७४॥

शोकातुरो दशरथः प्रविहाय देहं
यत्पितृलोकमधिगत्य जगाद तुष्टः ।
रामप्रदत्तमुपलभ्य निवापभागं
नाकर्णितं तदपि किं मनुजैर्यथावत् ॥७५॥

महाराजा दशरथ के मरने पर श्री रामचन्द्र जी ने चित्रकूट में अपने भाई से उनका निधन सुनकर जो श्राद्ध का आयोजन किया था उसका वर्णन वाल्मीकि रामायण के अयोध्या काण्ड में सर्ग १०२ के अन्दर देखना चाहिये ॥ ७५ ॥

सीता वनोदरगता समवाप्य यस्य
सन्दर्शनं दशरथस्य दिवं गतस्य ।
लीना बभूव विनतेषु लतागृहेषु
नाकर्णितः स मनुजैरिह किं महीपः ॥७६॥

एक वार श्री रामचन्द्र जी ने वनवास के समय श्राद्ध का आयोजन किया था उसमें निमन्त्रित ब्राह्मणों के साथ साथ दशरथ को आता देखकर सीता जी छिपकर अदृश्य हो गईं थीं यह आख्यान पद्म पुराण सृष्टि खण्ड अध्याय ३३ पद्य ७४ से ११० तक है ॥ ७३ ॥

ऐतिह्यसिद्धमपि ये मनुजाः स्वतर्कै-
रुल्लंघ्य वेदविहितं परलोककृत्यम् ।
कुर्वन्ति नैव यमएव ददातु तेभ्यो
दण्डं ससिद्धकरणः स्वकरेण चण्डम् ॥७७॥

वेद प्रतिपादित इतिहास सिद्ध इस श्राद्ध कृत्य को जो पुरुष नास्तिक मोक्ष तर्कों के आधार पर नहीं मानते हैं उनको यमालय में बुला कर यमराज ही अच्छे प्रकार से समझा सकता है ॥ ७७ ॥

एवं मुनौ वदति तत्र यथाक्रमेण
श्रीपुष्पदेवकमलासनवालहासाः ।
पप्रच्छुरानतधियः परलोकमार्गे
कस्याधिपत्यमिति तानिदमाह देवः ॥७८॥

इस प्रकार भगवान् श्रीचन्द्र जी के मुख से श्राद्ध का गूढ़ रहस्य सुनकर वालहास आदि भगवान् के शिष्यों ने प्रश्न किया कि उन पितरों पर किसका आधिपत्य बना रहता है ? ॥ ७८ ॥

मर्त्येषु य. प्रथममत्र ममार लोके
यश्चाप पितृसदनं प्रथमः स एव ।
वैवस्वतो मनुजसङ्गमनः समुक्तो
वेदेन पितृसदनाधिपतिर्यमाख्यः ॥७९॥

इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् कहते हैं कि मरणधर्मा जीवों में प्रथम ही मरकर यहां से जो पितृलोक पहुंचा है, उस वैवस्वत यम का ही उस पितृलोक में पूर्ण आधिपत्य है। इस पद्य का मूलाधार [यो ममार प्रथमो मर्त्यानां] यह अथर्व का मन्त्र है॥ ७९ ॥

तस्याधिपत्यमधिगत्य समस्तजीवाः
कर्मानुगेन फलभागजुषा कृतेन ।
स्वर्गं व्रजन्ति सुकृतेन परे यथावद्-
दुःखाकुलं निरयमात्मकृतेन पापाः ॥८०॥

उसी यमराज के अधिकार में यहां के समस्त जीव अपने अपने कर्मों के फल से पहुँच कर उनके विवेचनानुसार स्वर्ग में अथवा नरक में जाते हैं॥ ८० ॥

भीमाः प्रचण्डवचसो धृतहस्तदण्डाः
पाशाङ्कुशादिविविधायुधबद्धकक्षाः ।
दूता यमस्य विचरन्ति समस्तलोके
येऽसूत्रिगृह्य यमलोकमुपानयन्ति ॥८१॥

यमराज के प्रचण्ड दूत अपने हाथों में वारुणपाश और अन्य अनेक प्रकार के भयप्रद आयुध लेकर इस लोक में इधर उधर गुप्तरूप से घूमते हैं जो प्राणों को खींचकर यमलोक में पहुंचाते हैं॥ ८१ ॥

जीवेषु पुण्यपरिपाकवशेन येषां
स्वर्गस्थितिर्निगदिता मनुजाधिपेन ।
सत्कर्मणा जगति ते विविधाप्सरोभिः
क्रीडन्ति सार्धममराधिपतेर्वनेषु ॥८२॥

उन जीवों में जिनका पुण्यफल अधिक होता है वे यम के [आदेशानुसार स्वर्ग में जाकर नन्दन वन में सुन्दर सुन्दर अप्सराओं के साथ आमोद प्रमोद करते हैं। उन अप्सराओं के नाम मेनका पुञ्जिकस्थला आदि यजुर्वेद में लिखे हुए हैं॥ ८२ ॥

लोकान्तरानुगमने बहु यत्प्रदग्धं
कर्मानुगं करणमत्र धनञ्जयेन ।
भूयस्तदुत्तमतमं पुनराप्य देवा-
त्साङ्गाः प्रयान्ति पितरो दिवि दिव्यदेहाः ॥८३॥

लोकान्तर जाने के समय जो शरीर अग्नि ने जला दिया है वह दुबारा उत्तमरूप में फिर प्राप्त कर हमारे पितृगण सशरीर स्वर्ग में आनन्द करते हैं इसी लिए अथर्व में [साङ्गा स्वर्गे पितरो मादयध्वम्] ऐसा मन्त्र मिलता है इस मन्त्र का आरम्भ [यद्वो अग्निरदहादेकमङ्ग] इस चरण से होता है ॥ ८३ ॥

उद्दिश्य तानिह यथाविधि दीयमाना
धारा घृतोदकपयोदधिमाक्षिकाणाम् ।
सम्प्राप्य तानुचितमन्त्रपदैः क्रमेण
सम्वर्धयन्ति विविधश्रुतिजुष्टकृत्यान् ॥८४॥

उन पितरों के उद्देश्य से यहां पर जो-जो घृत-मधु दधि दुग्ध जल आदि द्रव्यों की धारायें दी जाती हैं उनको मन्त्रों के बल से प्राप्त कर वहां के पितृगण आप्यायित होते हैं इसका वर्णन [घृतह्रदा मधुकुल्याः सुरोदकाः] इस अथर्व के मन्त्र में मिलता है ॥ ८४ ॥

सूर्यांशुभिः सह समाहृतदिव्यभागा
भोगाः प्रविश्य यमलोकमुपागतानाम् ।
सद्यो मनांसि मदयन्ति विधिप्रदिष्टाः
सन्दर्शनेन नियमोयमिहस्थितानाम् ॥८५॥

वे हमारे दिये हुये पदार्थ सूर्य के किरणों द्वारा सूक्ष्मरूप होकर यमालयगत पितरों के मनको तुरन्त ही आनन्द देते हैं । यह आनन्द उनको केवल, दर्शन मात्र से प्राप्त होता है । इसीलिये [न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्ति एतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति] ऐसा छान्दोग्य [३ । ६ । १] में लिखा है ॥ ८५ ॥

येचेह न. पितर आगतभूमिभागा
येचान्तरिक्षगमना दिवि ये निविष्टाः ।

सर्वेऽपि ते हुतवहेन निरीक्ष्यमाणाः
सम्प्राप्नुवन्ति हुतमत्र न यात्र विघ्नः ॥८६॥

हमारे पितरों में जो यमालय से लौट कर यहां जन्म लेचुके हैं और जो अभी तक अन्तरिक्ष में हैं या जो स्वर्ग पहुंच गये हैं उनमें भी जिनको हम जानते हैं या नहीं जानते हैं उन सबको हमारा दिया हुआ पदार्थ अग्नि के द्वारा पहुंच जाता है ॥८६॥

वैश्वानरे यदिदमत्र हुतं हविष्यं
तद्वायुमण्डलमुपेत्य रविमयूखैः ।
जुष्टं ततं प्रतिविभर्ति ततामहं तं
वेदप्रदिष्टविधिना प्रततामहं द्राक् ॥८७॥

जिस पदार्थ को हम यहां पर अग्नि के द्वारा स्वर्ग को भेजते हैं वह वायु मण्डल के द्वारा सूर्य के किरणों में पहुंच कर तत ततामह प्रततामह इन तीनों को तृप्त करता है ततादिपद अथर्व में पिता आदि के अर्थ में प्रयुक्त हैं ॥ ८७ ॥

आदित्यरुद्रवसुतामधिगत्य ते ते
सर्वे ततादय उपेत्य नवीनभावान् ।
शुद्धाः शुचिं समभियान्ति नवीनलोकं
नैषां दहत्यनल आत्ममयं शरीरम् ॥८८॥

यहां से गये हुये हमारे पितृगण रुद्र, वसु, आदित्य के भावों को प्राप्त होकर नवीन नवीन रूपों में प्राप्त हुये सुन्दर सुन्दर शरीरों से स्वर्ग में पहुंचते हैं और उनका इन्द्रिय गण भी दिव्य रूप में उनके साथ ही रहता है यह बात [अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः] इस अथर्व के मन्त्र में विस्तार के साथ मिलती हैं ॥ ८८ ॥

भूमण्डलादुपरि यस्य विधिप्रदिष्टो
वासो हिमांशुपरिधिं समतीत्य दृष्टः ।
स्वर्गः स एव गदितो मुनिभिः सहस्र-
माश्वीनमेव किल यत्परिमाणमुक्तम् ॥८९॥

वेद में जिसका निवास अन्तरिक्ष में बताया गया है वह स्वर्ग यहां से एक हजार आश्वीन ऊंचा और चन्द्र मण्डल के ऊपर है । यह बात [सहस्राश्वीनो वा इतः स्वर्गो लोकः] इस कौषीतकि श्रुति में कही गई है ॥ ८९ ॥

ये सज्जनाः स्वकृतिभिर्निगमानुगाभि-
र्जुष्टा भवन्ति विधुमण्डलमेत्य ते तैः।
स्वर्गं प्रयान्ति विनिरुद्धपथास्तु भूमि-
मागत्य जन्ममृतिचक्रमिहाव्रजन्ति ॥६४॥

जो अपने २ कर्म के फल से स्वर्ग जाते हैं वे चन्द्रमण्डल के ऊपर जाकर आनन्द भोगते हैं और जो दरवाजे पर रोक लिये जाते हैं वे वहां से लौटकर पृथ्वी पर आते हैं और आवागमन रूपी चक्र में पड़कर जिस योग्य होते हैं वहीं पहुंचते हैं ॥९४॥

तस्मादिमौ विविधमार्गविहारदक्षौ
नानाविधान्नवलिभिर्नियमेन विज्ञैः ।
सर्वात्मभावमधिगत्य महालयेषु
भूमिस्थितैरहरहः क्रमशोऽर्हणीयौ ॥६५॥

इसलिये मनुष्यों को चाहिये कि बलि-वैश्वदेव के समय इन कुत्तों का भाग निकाल कर प्रतिदिन इनका सत्कार करें जिससे स्वर्गद्वार पर जाकर कोई रुकावट उत्पन्न न हो ॥ ९५ ॥

धानास्तिलैरनुगताः सयवाः स पुष्पा-
श्चान्द्रं सुवर्णमथ मन्त्रभृतः प्रयोगाः ।
गोदुग्धमाज्यमुदकं सकुशं सदूर्वं
सन्तर्पणार्हमुदितं निगमे पितॄणाम् ॥६६॥

अथर्व के मन्त्रों में तिल तण्डुल यव पुष्प सोना चांदी तथा मन्त्र प्रयुक्त अन्न, गौ का दुग्ध, घृत, जल, कुश, दूर्वा आदि द्रव्य स्वर्गस्थ पितरों के लिये तृप्तिप्रद होते हैं ॥९६॥

सर्वं तदेतदधिकृत्य विधिप्रदिष्टं
कन्याङ्गते सवितरि स्वगृहेषु सर्वैः ।
कार्यं परेतपरितर्पणकारि पुत्रैः
कृत्यं यथाविधि दिनेषु तदङ्कितेषु ॥६७॥

मन्त्र प्रतिपादित इन सब पदार्थों को एकत्र कर कन्या की सक्रान्ति में पुत्रों को चाहिये कि वे नियत तिथियों की स्मृति रखकर समस्त कार्य मृत पितरों के लिये करें ॥ ९० ॥

ये मासिकं निगममन्त्रपदैः प्रणीतं
श्राद्धं पितर्युपरते विदधत्यनन्ताम्।
ते साधयन्ति परितृप्तिमिति प्रदिष्टं
वेदेन तत्सहचरैरपि धर्मसूत्रैः ॥९८॥

जो पुरुष प्रत्येक मास की अमावस्या को मन्त्र प्रतिपादित श्राद्ध करते हैं वे पितरों की अनन्त तृप्ति के कारण होते हैं यह बात वेद और धर्म सूत्रों में स्पष्ट-रूप से कही है ॥ ९८ ॥

दैनन्दिनक्रममुपेत्य पितर्युपेते
लोकान्तरं सुतवराः किल येत्र लोके।
सन्तर्पयन्ति ततमुन्नतिमार्गभाज-
स्ते सम्भवन्ति सदुपार्जितभोगभाजः ॥९९॥

पिता के मरने पर जो पुत्र प्रतिदिन तर्पण के द्वारा मृत पिता की आत्मा को तुष्ट करते हैं वे संसार में हरप्रकार की उन्नति प्राप्त करते हैं ॥ ९९ ॥

अग्नौ यथाविधि हुतं मुखजेषु दत्तं
गङ्गादितोयनिहितं गवि सम्प्रयुक्तम्।
सङ्कल्पतो दिविगतानुपयाति दत्तं
पुत्रादिभिर्नियम एष विधिप्रदिष्टः ॥१००॥

विधि पूर्वक अग्नि में हुत, ब्राह्मणों को खिलाया हुआ, गङ्गा आदि में प्रवाहित, गोमुख में प्रदत्त, श्राद्ध प्रयुक्त समस्त द्रव्य सङ्कल्प पूर्वक यदि पितरों के उद्देश्य से दिया गया हो तो ईश्वरीय नियम से अवश्य पितृलोक गत जीवों को पहुँच जाता है, इसमें सन्देह करना आस्तिकों का काम नहीं है ॥ १०० ॥

सर्वं तदेतदपराह्णकृतं पितॄणां
कृत्यं विधेरनुगमेन सुतैरुपेतैः।
सम्वर्धयत्यमरतां दिवि सङ्गतानां
येनाप्नुवन्ति पितरः सुखमाश्वनन्तम् ॥१०१॥

श्राद्ध सम्बन्धी यह सब कार्य विधिके आदेश से अपराह्न में किया जाता है पुत्रों के द्वारा सम्पन्न यह कार्य स्वर्ग में अवस्थित पितरों के अमरत्व को बहुत काल तक नियत रख उन के लिये आनन्ददायक होता है ॥ १०१ ॥

एवं निवेद्य निजशिष्यवरेषु सद्यो
लोकान्तरस्थितिरहस्यमनुक्रमेण ।
हृष्टो बभूव मुनिरेष निरस्तशङ्कः
शिष्यव्रजोपि निगमानुगमेन तुष्टः ॥१०२॥

अपने शिष्यों के प्रति इस प्रकार श्राद्ध सम्बन्धी सब रहस्य अनुक्रम से कह कर भगवान् बहुत प्रसन्न हुये और आपके शिष्य गण भी इस वैदिक रहस्य को आप से सुनकर सर्व प्रकार शङ्का रहित हो गये । ॥ १०२ ॥

श्रद्धावतां मतिमतां विदुषां हिताय
सम्यग्विविच्य परलोकरहस्यमत्र ।
सर्गो निसर्गरमणीयसमस्तवृत्तः
केनाप्यचिन्त्यविभवेन मयापि बद्धः ॥१०३॥

इस सर्ग में श्रद्धावान् पुरुषों के लाभ के लिये परलोक सम्बन्धी समस्त रहस्य लिखकर इस विषय में हमभी अपने कर्तव्य भार से बहुत अंशों में सफल होकर यहीं पर इस प्रसङ्ग को विश्राम देते हैं ॥१०३॥

सोयं समस्तनिगमोदितमन्त्रभाग-
सम्बोधितक्रमकथः परलोकचिह्नैः ।
संवीक्ष्यतां मुनिभिरादरतः प्रसिद्धैः
सिद्धैरनुद्धतधिया विनयावनद्धैः ॥१०४॥

समस्त वेद मन्त्रों द्वारा प्रतिपादित इस विषय को देखकर विद्वान् परलोक गत समस्त विषयों में विश्वास रखकर अपने मन में अवश्य आनन्द का अनुभव करेंगे ऐसा हमारा विश्वास है ॥ १०४ ॥

एवं निवेद्य हृदयस्थितमुच्चभावं
सिंहोद्धतेन मधुरेण मनोहरेण ।

वृत्तेन पञ्चदशएप दिनावसाने
सम्पूर्यते विधिवशेन मनोज्ञसर्गः ॥१०५॥

अपने हृदय में विद्यमान इस उच्चभाव को मधुर तर सिंहोद्धत वृत्त से निबद्ध कर दिनान्त भाग में यह सर्ग समाप्त किया जा रहा है ॥ १०५ ॥

अस्मात्परं यदवशिष्टमुदारवृत्तं
श्रीचन्द्रमौलिगदितं विशदं चरित्रम् ।
तत्सर्वमेव मुनिभिः कृपयाग्रिमेषु
सर्गेषु वीक्ष्यमिदमत्र मया निवेद्यम् ॥१०६॥

इससे अवशिष्ट श्रीचन्द्र भगवान् के मुख से निकला हुआ जो वृत्तान्त, अभी आपको देखना अथवा सुनना बाकी है उसके लिये समस्त मुनिगण अग्रिम सर्गों का अवलोकन करें ॥ १०६ ॥

ये नास्तिकाः कुमतयो निजशुष्कतर्कैः
श्राद्धं निरस्य निगमोदितमुद्गिरन्ति ।
वेदं महेश्वरविनिश्वसितं यथाव-
त्ते सर्व एव मनसाद्य पठन्तु सर्गम् ॥१०७॥

जो नास्तिक अपने तर्क बल पर वेद प्रतिपादित श्राद्ध का उपहास करते हैं वे इस सर्ग का ध्यान पूर्वक अवलोकन करें ॥ १०७ ॥

अस्मिन्निबद्धमपि येद्य निसर्गसिद्धं
वेदप्रदिष्टमनुमोदितधर्मसूत्रम् ।
श्राद्धं न कर्तुमिह चेतसि बद्धभावा-
स्तेषां यमोस्तु शरणं धृतहस्तपाशः ॥१०८॥

इतने पर भी जिनके मन में श्राद्ध करने की इच्छा उत्पन्न न हो उनको पाशहस्त यमराज के सुपुर्द करके अपने कर्तव्य कार्य में प्रवृत्त होते हैं ॥ १०८ ॥

इतिश्री सनाढ्यवंशोद्भव कविवर श्रीमदखिलानन्दशर्मप्रणीते
मतिलके जगद्गुरुश्रीचन्द्रदिग्विजये महाकाव्ये
परलोकरहस्यविवेचननामपञ्चदशः सर्गः

षोडशः सर्गः



श्रीचन्द्रो भगवानथ
तुष्टस्वान्तः पुरोगतान्वीक्ष्य ।
निजशिष्यानिदमाह
प्रशस्तवाचा हृदिस्थितं वृत्तम् ॥ १ ॥

प्रसन्नचित्त भगवान श्रीचन्द्रजी ने इसके अनन्तर कमलासन आदि अपने शिष्यों को उपस्थित देखकर हृदय में विद्यमान वर्ण व्यवस्था सम्बन्धी रहस्य को इस प्रकार कहा ॥ १ ॥

धर्मः सनातनोयं
विभिन्नशाखः प्रवर्द्धितोस्माभिः ।
लोकानलङ्करिष्य-
त्यनन्तकालं भवादृशैः पुष्टः ॥ २ ॥

अनेक शाखाओं में प्रसृत जिस सनातनधर्म को मैं आप लोगों के समक्ष कह रहा हूं यह आप लोगों के द्वारा भविष्य में पुष्ट होकर अनन्तकाल तक मनुष्यों को सुमार्ग पर चलाएगा ॥ २ ॥

अस्याधिपत्यमाप्य
स्वभावसिद्धं महेश्वरः सिद्धः ।
किं किं न संविधत्ते
तदेकरक्षाप्रवर्धकं कृत्यम् ॥ ३ ॥

भगवान् इसके आधिपत्य को प्राप्त होकर इसकी रक्षा के लिये संसार में क्या २ आयोजन एकत्र नहीं करते हैं अर्थात् उनको हर प्रकार से इनकी रक्षा करनी पड़ती है ॥ ३ ॥

तस्य प्रधानमूलं
समस्तवेदादिशास्त्रतः सिद्धम् ।

वर्णव्यवस्थितिर्या
निसर्गसिद्धा गुणत्रयाबद्धा ॥ ४ ॥

इसका प्रधान मूल स्वभाव से गुणत्रय सम्बद्ध वर्णव्यवस्था है जिसका वर्णन वेदादि सत्य शास्त्रों में सर्वत्र मिलता है ॥ ४ ॥

सत्वादयः प्रसिद्धा
गुणास्त्रयोत्र प्रधानतामाप्ताः ।
नानाविधां प्रसूतिं
प्रवर्तयन्ति क्रमेण सर्वत्र ॥ ५ ॥

प्रकृति के सत्व आदि तीन गुण प्रधानरूप से इसमें कारण हैं जोकि सर्वत्र सर्वदा अनेक प्रकार की सृष्टि प्रकट करते हैं ॥५॥

भूगर्भजातवस्तु-
ष्ववस्थितास्ते विभिन्नरत्नानि ।
सम्भूतिमानयन्ति
प्रकाममन्तर्निविष्टतद्भेदाः ॥ ६ ॥

ये ही सत्व आदि तीन गुण जब भूगर्भ में जाकर अपना काम करते हैं तब उसमें अनेक प्रकार के रत्न प्रकट होते हैं ॥ ६ ॥

भेदोयमीक्षणाभ्यां-
न वेत्तुमर्हः समानरूपाणाम् ।
सूक्ष्मेक्षिकाभिरेषां
भिदा प्रसिद्धिं समेति सर्वत्र ॥ ७ ॥

इन रत्नों में आन्तरिक जो भेद हैं वह विज्ञान वेद्य हैं नेत्रों से उसकी पहिचान सर्वथा असम्भव है इनके भेद को जौहरी ही जान सकता है अन्य नहीं ॥ ७ ॥

एवं निसर्गसिद्धो
गुणानुगोयं क्रमागतो भेदः ।
वृक्षेष्ववस्थितोपि
प्रतीयते तद्विदाभिरन्वेष्यः ॥ ८ ॥

इसी प्रकार जब ये तीन गुण वृक्षों में जाकर अपना काम करते हैं तब उनमें भी अनेक प्रकार के भेद प्रकट होते हैं ॥ ८ ॥

देशक्रमेण कश्चि-
त्प्रतीयमानः प्रतिष्ठितो भेदः ।
कालर्तुभेदतोऽन्यो
रसायनज्ञैरवेद्यते विज्ञैः ॥ ९ ॥

उनमें कोई देश भेद से कोई काल भेद से कोई बीज भेद से प्रकट होता है जिसको रसायन शास्त्र जानने वाले जानते हैं ॥ ९ ॥

एकैव सोमवल्ली
कलाभिरिन्दोः समेधिता विज्ञान् ।
दैनन्दिनप्रविष्टं
निबोधयत्याशु पत्रगं भेदम् ॥१०॥

एक ही सोमवल्ली क्रमशः चन्द्रकलाओं के घटने और बढ़ने से अपने पत्रों में दैनन्दिन भेद को दिखाती है जिसको रसायनज्ञ जानते हैं ॥ १० ॥

बीजं स्वभावसिद्धं
विभेदमाप्तं ऋतुक्रमादेकम् ।
नानाविधं विधत्ते
फलं रसज्ञैरुपात्तबहुभेदम् ॥११॥

एक वृक्ष का एक ही बीज भिन्न भिन्न ऋतुओं में बोने कारण भिन्न २ पत्र पुष्प फल देता है जिसको विज्ञान वेत्ता जानते हैं ॥ ११ ॥

एवं विभेदमाप्ता
द्रुमेषु जातिः प्रतीयते यद्वत् ।
तद्वत्पशूनुपेता
समीक्ष्यते किन्न भूतले विज्ञैः ॥१२॥

अनेक भेदों में व्यवस्थित वृक्ष जाति जिस प्रकार देखने में आती है उसी प्रकार पशुओं में भी उसका विकास दृष्टि में आता है ॥ १२ ॥

एकैव गोरनेकं
विभेदमाप्य,प्रतिष्ठिता लोके ।
विज्ञैरुपात्तभेदैः
शतोदनावद्विविच्यते सद्यः ॥१३॥

एक ही गो जाति सत्वादि गुण भेद से संसार में अनेक विध देखने में आती है जिसका वेद में शतोदना आदि भेद उपलब्ध होता है ॥ १३ ॥

गृष्टिः सकृत्प्रसूता
धेनुर्गर्भोपघातिनी वेहत् ।
वन्ध्या वशा समुक्ता
विधिप्रदिष्टेन जातिभेदेन ॥१४॥

इसमें कोई गृष्टि के नाम से कोई वेहत् के नामसे कोई वशा के नाम से कोई धेनु और कामधेनु के नाम से संसार में प्रसिद्ध है ॥ १४ ॥

एताननेकभेदा-
न्विविच्य पाण्डोः सुतः प्रयत्नेन ।
प्रच्छन्नवेषगुप्तो
विराटभूपं निबोधयामास ॥१५॥

एक गो जाति गत इन अनेक भेदों को सहदेव ने विराट नगरी में जाकर द्रुपद राजा को बताया जिसका वर्णन महाभारत में विस्पष्ट रूपसे मिलता है ॥ १५ ॥

एवं विधाश्वजाति-
र्नितान्तगूढापि शालिहोत्रेण ।
शास्त्रोक्तलक्षणानां
विवेचनादेव लक्षिता सद्यः ॥१६॥

गोजाति के समान अश्वजाति में भी गुण भेद से इसी प्रकार अनेक जातियां देखने में आती है जो शालिहोत्र ने भिन्न २ रूप में कही है ॥ १६ ॥

आवर्तिनः समुक्ताः
सशुक्तिकाः केपि छिद्रगोसारः ।

सम्पन्नदेवमणयः
केपि तथाश्वाः स्वजातिभेदेन ॥१७॥

कोई अश्व आवर्ती होते हैं कोई देवमणि वाले होते हैं कोई शुक्तियुक्त होते हैं कोई छिद्रगोप होते हैं इनको सब नहीं जानते हैं लक्षण शास्त्र के जानने वाले ही पहिचानते हैं ॥ १७ ॥

भद्रोयमस्ति मन्दो
मृगोयमित्थं विविच्य शास्त्रेण ।
निजगाद पालकाप्यः
पुरा मुनीन्द्रो गजस्थितं भेदम् ॥१८॥

इसी प्रकार हस्तिजाति में भी कोई भद्र जाति का कोई मन्द जाति का कोई मृग जाति की हस्ती होता है जिसका लक्षण पालकाप्य मुनि ने हस्त्यायुर्वेद में लिखा है ॥ १८ ॥

एवं भितामुपेता
गवाश्वहस्तिप्रतिष्ठिता जातिः ।
सर्वत्र लोकमध्ये
तदेकविज्ञैरवेत्यते नान्यैः ॥१९॥

॥ इस प्रकार से भेद को प्राप्त हुई गौ अश्व हस्ती आदि पशु जाति समस्त लोक में व्याप्त है जिसको जानने वाले जानते हैं ॥ १९ ॥

आनन्त्यमेवमाप्तः
स जातिभेदः प्रतीयमानोपि ।
शास्त्रैकनेत्रवेद्यो
न चर्मचक्षूंष्यपेक्षते गूढः ॥२०॥

॥ संसार में इस प्रकार प्रतीयमान भी जातिभेद अत्यन्त गूढ़ होने के कारण केवल शास्त्र से ही ज्ञात होता है, उसके भेद जानने में नेत्र मात्र काम नहीं दे सकते हैं ॥ २० ॥

एकोत्र राजहंसः
परोपि भेदेन मल्लिकाद्योऽन्यः।
हंसेषु धार्तराष्ट्रो
विनैव शास्त्रं वदन्तु केनोक्तः ॥२१॥

पक्षियों में एक हंस जाति में भी राजहंस मल्लिकास धार्तराष्ट्र आदि भेद विद्यमान हैं जिनको शास्त्र के बिना अन्य कोई नहीं बता सकता है ॥२१॥

सर्पेषु काद्रवेया-
लगर्दगोनासशेषभेदोयम्।
केनात्र सम्प्रदिष्टो
महालयान्ते विनैव विज्ञानम् ॥२२॥

इसी प्रकार सर्प जाति में काद्रवेय, अलगर्द, गोनास, शेष, वासुकि आदि अनेक जातियां हैं जिनको आहितुण्डिक ही जानते हैं सर्वसाधारण नहीं ॥ २२ ॥

सौवर्णरौप्यताम्र-
प्रवाललोहाभ्रमौक्तिकादीनाम्।
केनापि नैव शक्यो
वक्तुं भस्मन्यवस्थितो भेदः ॥२३॥

सुवर्ण, रौप्य, ताम्र, प्रवाल, लोह, अभ्रक, मुक्ता, आदि द्रव्यों के फूंके हुये भस्म में जो भेद है उसका जानना सर्व साधारण के लिये अशक्य है केवल विज्ञ वैद्य ही जान सकता है ॥ २३ ॥

तस्मान्न वीक्षणाभ्यां
कदापि केनापि जातिजो भेदः।
शक्योऽत्र वोढुमस्माद्-
वृथैव तत्र प्रवर्त्यते वादः ॥ २४ ॥

इसलिये अन्त में यही सिद्ध हुआ कि जाति गत भेद का ज्ञान नेत्रों से नहीं हो सकता है इसलिये इस विषय में विवाद करना व्यर्थ है ॥ २४ ॥

ईशेन जन्मवादं
प्रकृत्य ये ये यथा यथा सृष्टाः ।
ते ते तथा तथास्मि-
न्नियोजनीयाः प्रवृत्तिभेदेन ॥ २५ ॥

ईश्वर ने जन्म से जिसको जैसा पैदा किया है उसको उसी के उपयुक्त कार्य में लगाना चाहिये इसी में संसार की परिस्थिति रह सकती है ॥ २५ ॥

जन्मान्तरागतो यः
प्रधानरूपेण सङ्गतो भावः ।
सोऽस्मिन्भवे यथाव-
न्निदानतामेति जातिभेदेषु ॥ २६ ॥

जन्मान्तर से आया हुआ जो संस्कार है वही इस जन्म में पैतृक भाव को लेकर जाति भेद का कारण बनता है जिसका कोई परिवर्त्तन नहीं कर सकता है ॥ २६ ॥

पूर्वत्र केन कीदृक्
कृतं शुभं वाऽशुभं मनुष्येण ।
कर्मेति निर्णयाय
स्वयं भवेऽस्मिन्स जायते भूयः ॥ २७ ॥

पूर्व जन्म में किसने कैसा कर्म किया है ? इसका यदि अन्दाज लगाना हो तो उसका वर्तमान जन्म देखना चाहिये जो कि पिछले कर्मों के फल में प्राप्त होता है। इसी लिये [सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः] ऐसा लिखा है ॥२७॥

स्वातन्त्र्यमस्ति कर्म-
ण्यवस्थितानां भवेत्र जीवानाम् ।
नो तत्फलोपभोग-
प्रकल्पने तन्नियामको देवः ॥ २८ ॥

संसार में समस्त जीवों को कर्म करने में पूरी स्वतन्त्रता है परन्तु उसके फल भोगने में उनको ईश्वरेच्छा का अनुगमन करना होता है ॥ २८ ॥

द्रव्याश्रिताः समस्ता
गुणा जडं कर्म नैव लोकेत्र ।
दातुं फलानि शक्तं
फलप्रदः कोऽन्य ईशतो भिन्नः ॥ २९ ॥

गुण द्रव्याश्रित होते हैं और कर्म जड़ होने के कारण स्वयं पङ्गु है इस कारण ईश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई फल नहीं दे सकता है ॥ २९ ॥

सर्वेपि नीचयोनौ
जनिं प्रयाताः स्वकर्मयोगेन ।
वाञ्छन्ति भावमुच्चं
नियामकस्तत्र कोभवेदन्यः ॥ ३० ॥

हरेक प्राणी नीच योनि से उच्च योनि में जाना चाहता है यदि इसमें कोई प्रबन्धक न हो तो जीवों के कर्मों की जांच किस प्रकार हो सकती है ? और बिना जांच किये फल देने का उचित नियन्त्रण नहीं बन सकता है ॥ ३० ॥

एकेन जन्मना ये
महोच्चजातिं प्रयातुमीहन्ते
तेषां कृताकृतानां
विवेचनं केन शक्यते कर्तुम् ॥ ३१ ॥

जो मनुष्य एक ही जन्म में नीच योनि से उच्चयोनि में जाना चाहते हैं उनके कर्मों का विवेचन ईश्वर के अतिरिक्त अन्य कौन कर सकता है ? ॥ ३१ ॥

अतएव तन्नियन्ता
महेश्वरस्तत्प्रदिष्टभावानाम्-
जन्मैव वक्तुमर्हं
फलाफलं नात्र विद्यते वादः ॥ ३२ ॥

इसलिये कर्मों का फैसला करने वाला ईश्वर है और उसके निर्णय का परिणाम इस जन्म के शरीर से प्रतीत होता है । इसमें कोई संशय नहीं है ॥३२॥

धारा द्विधा विभिन्ना
नवीनसृष्टौ गुणानुयोगेन।
या कल्पयत्यनन्तां
॥ जगत्प्रसूतिं स्वभावसंसिद्धाम् ॥३३॥

नवीन कल्प में सृष्टि की धारा दो प्रकार से चलती है जो सत्व आदि तीन गुणों के अनुगमन से अनन्त जगत की कल्पना करती है ॥ ३३ ॥

एका तमःसमुत्था
प्रयाति सत्वं गुणानुबन्धेन।
सत्वोत्थिता तदन्या
तमः प्रधानं स्वभावतः सृष्टा ॥३४॥

इनमें एक धारा तमोगुण से सत्व गुण की ओर चलती है और दूसरी सत्व गुण से तमो गुण की ओर चलती है यही इनका गमन क्रम है ॥ ३४ ॥

॥ एतत्समुत्थभावा-
वनद्धयोगा भिदाश्चतस्रोऽत्र।
सम्भूतिमानयन्ति
प्रकामसृष्टं चराचरं सर्वम् ॥३५॥

इन दोनों धाराओं के संयोग से सृष्टि में चार भेद उद्भूत होते हैं जो समस्त संसार में चराचर का सर्जन करते हैं ॥ ३५ ॥

॥ एका तमःसमुत्था
रजस्तमोभ्यां समुत्थिता मध्या।
सत्वप्रधानराजस-
भावावद्धा तृतीयसम्भूतिः ॥३६॥

उनमें सर्व प्रथम जीव केवल तामस दशा में प्रवेश करता है उसके अनन्तर तमो मिश्रित रजो गुण में और उसके अनन्तर रजो मिश्रित सत्व गुण में प्रविष्ट होकर रहता है ॥ ३६ ॥

केवलसत्वसमुत्था
॥भूमिः प्रकृतेस्तदन्तिमा मोक्ता ।
यासु विकासं प्राप्य
क्रमेण लोके भवन्ति ते वर्णाः ॥३७॥

सत्व के अन्त में जीव केवल सत्व में प्रविष्ट होकर अपना विकास करता है। यही चार भूमिका दो धाराओं में विभक्त होकर चलती है दूसरी धारा में सर्व प्रथम जीव केवल सत्व में प्रवेश करता है, उसके अनन्तर सत्व मिश्रित रज में उसके अनन्तर रजो मिश्रित तम में प्रवेश करता है, इस प्रकार एक धारा तम से सत्व की ओर और दूसरी सत्व से तम की ओर आती और जाती है ॥ ३७ ॥

सत्वसमुन्नतभूमे–
विकासतो याति सम्भवं विप्रः ।
केवलतामसभूमे–
र्जनिं समभ्येति जन्मतः शूद्रः ॥३८॥

इन चार धाराओं में विभक्त होकर मनुष्य चार वर्णों में विभाजित होता है, उनमें केवल सत्व के विकास में ब्राह्मण और केवल तम के विकास में शूद्र होता है॥ ३८ ॥

सत्वप्रधानराजस–
भूमेः सम्भूतिमेति राजन्यः ।
राजसतामसभूमे–
र्विकासमभ्येत्य जायते वैश्यः ॥३९॥

सत्व मिश्रित रजोगुण से क्षत्रिय और रजो मिश्रित तमोगुण से वैश्य होता है। इनके उलटे चलने में सङ्कर सृष्टि होती है और सीधे चलने में चार-वर्ण होते हैं॥ ३९॥

स्थावरजङ्गमभावं
प्राप्ता या भाति संसृतौ सृष्टिः ।

एतास्वेव चतसृषु
भूमिषु सालं विभाजिता भवति ॥४०॥

इसी प्रकार संसार में जितनी स्थावर जङ्गमात्मक सृष्टि देखने में आती है वह इन चारों विभागों में ही विभाजित होती है ॥ ४ ॥

एतामेव चतुर्विध-
भावावद्धां जगत्स्थितिं केचित्
चातुर्वर्ण्यपदेन
प्रकर्पमासां वदन्ति विद्वांसः ॥४१॥

इन चार शाखाओं में विभक्त सृष्टि क्रम को ही कोई सज्जन वर्णव्यवस्था के नाम से कहते हैं, जो सर्वत्र व्यवहार में देखने में आती है ॥ ४१ ॥

प्राकृतिकी वर्णभिदा
सेयं लोके नियन्तुरादेशात् ।
उद्भिज्जादिविभेदे-
श्चातुर्विध्यं यथाक्रमं प्राप्ता ॥४२॥

प्रकृति निष्ठ तथा स्वभाव सिद्ध यह वर्णव्यवस्था संसार में ईश्वरादिष्ट होने के कारण जरायुज, स्वेदज, उद्भिज तथा अण्डज इन चारों जातियों में अविरत रूप से प्रसृत रहती है ॥ ४२ ॥

मानवजातिविकासं
विलोक्य वेदेषु धर्मशास्त्रेषु ।
त्रिंशद्विधो विभागः
परस्परोत्थः प्रकीर्तितः प्राज्ञैः ॥४३॥

इनमें मानव जाति का ही विकास सर्वत्र प्रथम वेद तथा धर्म शास्त्रों में तीस प्रकार का लिखा है, जो कि परस्पर संयोग से प्रसृत होता है ॥ ४३ ॥

त्रिंशत्तमे विभागे
यजुष्यमीषां निसर्गजं कृत्यम् ।

वेदेन संविभक्तं
यदद्य लोकेषु विस्तृतं भाति ॥४४॥

यजुर्वेद के तीसवें अध्याय में वह तीस भेद चार वर्णों के अतिरिक्त उनके नियत कर्मों के साथ २ कहे हैं जोकि आज सर्वत्र देखने में आते हैं ॥ ४४ ॥

या कर्मणा विभक्ता
पूर्वाभ्यस्तेन साङ्करी जातिः ।
सात्रापि कर्मभेदं
श्रयत्यमन्दं तमेव वेदोक्तम् ॥४५॥

सृष्टि के आदि काल से जो जातियां पूर्व सृष्टि नियत कर्मों के कारण इस वर्तमान सृष्टि में विभक्त दीखतीं हैं वे पूर्वाभ्यस्त कर्म को यहां पर भी करती हुई देखने में आती हैं इसलिये यह कल्पित अथवा नवीन नहीं हैं । अनादिकाल से इनका अस्तित्व वेद सिद्ध कर रहा है । यदि यह जातियां कल्पित होतीं तो सृष्टि के आरम्भ में प्रवृत्त वेद में इनका सकर्मक निर्देश न मिलता ॥४५॥

सेयं विधिप्रदिष्टा
समस्तभेदापि मानवी जातिः ।
आर्यानार्यविभागा-
द्विधा विभक्ता प्रतीयते लोके ॥४६॥

इस लिये मानवजाति में यह जाति भेद ईश्वरकृत एवं अनादिकाल से प्रचलित है और इसमें आर्य अनार्य भेद भी अनादिकाल प्रचलित है ॥ ४६ ॥

ऋग्वेदमन्त्रमध्ये
स्फुटं प्रदिष्टाः क्रमेण ते सर्वे ।
आर्यास्त्रयस्ततोऽन्ये
समस्तभेदाहि दस्यवः सभ्यैः ॥४७॥

ऋग्वेद के [तिस्रः प्रजा आर्याः] इस मन्त्र में द्विजों को आर्य और द्विजेतरों को अनार्य अथवा दस्यु कहा है ॥ ४७ ॥

ये पामराः प्रमादा-
न्निजार्थहेतोः पदोद्भवानत्र ।
वेदं प्रबोधयन्ति
प्रभुः स तेषां यमोऽस्तु सर्वेषाम् ॥५५॥

जो मनुष्य अज्ञानवश अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये शूद्र आदि को वेद का उपदेश देते हैं हम उनसे कुछ न कहकर उनको यमराज के सुपुर्द करते हैं वे ही धर्मराज इस पाप के दण्ड का निर्णय देंगे ॥ ५५॥

ये कर्मणैव लोके
द्विजेषु सेवां प्रतन्वते सर्वे ।
ते कारवः समुक्ताः
समस्तवेदार्थचुञ्चुना मनुना ॥५६॥

जो जातियां संसार में जन्म लेकर केवल अपनी सेवा से द्विजों का उपकार करती हैं उनको मनु ने कारुपद से निर्दिष्ट किया है ॥ ५६ ॥

सर्वेऽपि कारवोऽस्मिन्
जगत्यनन्ते निजक्रियाऽऽबद्धाः ।
शिल्पं बहुप्रकारं
समाश्रयन्ति स्वभावतः सिद्धम् ॥५७॥

इस अनन्त संसार में यह सब कारु गण अपनी कुल परम्परा से अनुमास अनेक विध शिल्प लेकर अपना और पराया काम करते रहते हैं ॥ ५७ ॥

जातिर्निसर्गसिद्धा
सदैकरूपा न नाशमभ्येति ।
या ब्राह्मणादिभेदा-
न्विभर्ति सर्वत्र सर्वतोभावैः ॥५८॥

संसार में जाति स्वभाव सिद्ध और नित्य है उसका कदापि नाश नहीं होता है। ब्राह्मणादि भेदों में विभक्त होकर वही जाति समस्त विश्व में विस्तृत हो जाती है ॥ ५८ ॥

अतएव भाष्यकार–
रनेकवारं निदर्शितं भाष्ये ।
नित्यत्वमेवजाते–
विपर्ययस्तत्र नेष्यते विज्ञैः ॥५९॥

इसीलिये भाष्यकार ने इस जाति को कई बार अपने महाभाष्य में, नित्य बताकर जाति का नित्यत्व सिद्ध किया है जो यहां पर उपादेय है ॥ ५९ ॥

योऽयं स्वभाव उक्तः
स जातिमाश्रित्य सर्वतो व्याप्ताम् ।
नित्यत्वमेति लोके
निदर्शनं तस्य तद्गुणः स्वगतः ॥६०॥

इसी प्रकार जिसको हम स्वभाव पद से निर्दिष्ट करते हैं वह भी जाति के आश्रय से नित्य ही रहता है जिसका निदर्शन उसका स्वगत गुण संयोग है॥६०॥

लोके स्वभावसिद्धं
न वैरमायाति कर्हिचिच्छान्तिम् ।
अत्यन्तमुष्णमम्बु–
प्रशामयत्येव पावकं सद्यः ॥६१॥

संसार में स्वभाव सिद्ध जो वैर है उसका नाश कदापि नहीं होता है उदाहरणार्थ यहां पर जल को ही ले लीजिये। उसका अग्नि के साथ स्वभाव सिद्ध वैर है। जल कितना ही गरम क्यों न हो परन्तु अग्नि के बुझाने में वह सर्वदा समर्थ रहता है ॥ ६१ ॥

सर्वो जनः स्वभावं
प्रयाति, कस्तत्र निग्रहं कर्तुम् ।
शक्तो जनो जगत्यां
स्वभावसिद्धस्य निग्रहो नोक्तः ॥६२॥

संसार में सब प्राणी अपने प्रकृति जन्य स्वभाव का ही अनुगमन करते हैं उनका निरोध करने वाला संसार में कोई नहीं है ॥ ६२ ॥

प्राचीनकर्मबीजा-

ज्जनो जगत्यां प्रयाति तां जातिम् ।

भोगाननेकरूपा-

न्विचित्रमायुर्नियन्त्रितं भोगैः ॥६३॥

मनुष्य प्राचीन कर्मों के फलस्वरूप इस जन्म में जाति आयु और भोग प्राप्त करता है जिसका निर्देश [सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः] इस योग सूत्र में किया है ॥ ६३ ॥

एतत्त्रयं विधातु-

र्निर्देशलभ्यं न मानवः कश्चित् ।

केनापि कर्मणास्मिन्

विपर्ययं नेतुमीप्यते शक्तः ॥६४॥

जाति आयु और भोग इन तीनों को जो कि ईश्वर की तरफ से मनुष्य को प्राप्त होते हैं ससार में कोई अपने कर्म से बदल नहीं सकता है ॥ ६४ ॥

एतन्निबोधनाय-

प्रशस्तरीत्या मतङ्गसंवादम् ।

इन्द्रेण साकमारा-

ज्जगाद सूनुः पराशराज्जातः ॥६५॥

इसी बात को बतलाने के लिये व्यास मुनि ने महाभारत में मतङ्ग इन्द्र सवाद लिखा है जो महाभारत के अनुशासन पर्व में पूर्ण रूप से देखा जा सकता है ॥ ६५ ॥

किं न श्रुतं भवद्भि-

र्विधातृसूनोः पुरातनं वृत्तम् ।

यद् व्यासनारदाभ्यां

स्वयं समुक्तं मिथः प्रसङ्गेन ॥६६॥

क्या आपने श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध में नारद के प्राचीन इतिहास को नहीं देखा जो व्यास नारद संवाद के रूप में लिखा गया है ? ॥ ६६ ॥

सूतं कथां वदन्तं
विलोक्य सद्यः स नैमिषारण्ये ।
निजघान यन्निगद्य
स्वयं हली तद्विलोक्यतां विद्वैः ॥६७॥

इसी भागवत के द्वादश स्कन्ध में कथा कहते हुए सूत को नैमिषारण्य में जो बात कह कर बलराम जी ने मारा है क्या वह आपको स्मरण नहीं है ॥ ६७ ॥

तस्माद्विहाय सद्यो
विडम्बनामत्र सज्जनैः सर्वम् ।
कार्यं विधिप्रदिष्टं
यथा न पातः पुनर्भवे भूयात् ॥६८॥

इसलिये मनुष्यों को चाहिये कि वे विडम्बना छोड़कर संसार में सब कार्य शास्त्रों में कहे हुए आदेश के अनुसार ही करें जिससे उनको फिर दुबारा अधोगति प्राप्त न हो ॥ ६८ ॥

वेदागमो न जाते-
र्विपर्ययेऽत्र प्रमाणतामेति ।
रामार्जुनादिनाना-
वतारवृत्तं निदर्शनं यस्मात् ॥६९॥

केवल वेद पढ़ने मात्र से संसार में कोई जाति नहीं बदलती है क्योंकि वेदाध्ययन क्षत्रिय और वैश्य के लिये भी नियत है और राम, अर्जुन, द्रोण, अश्वत्थामा आदि अनेक इसमें उदाहरण हैं ॥ ६९ ॥

योनिः श्रुतं तपस्त-
त्त्रयं प्रधानं निसर्गतो यत्र ।
स ब्राह्मणोऽत्र मान्यः
समिद्धनव्याग्निसाम्यमायातः ॥७०॥

जिसमें तप श्रुत और योनि यह तीनों पूर्ण रूप से विद्यमान हैं वह प्रदीप्त

अग्नि के समान पूर्ण ब्राह्मण है। इसमें [तपः श्रुतं च योनिश्च] यह पतञ्जलि का कथन प्रमाण है ॥ ७० ॥

यस्मिन्न विद्यते स–
च्छ्रुतं तपो नापि विप्रयोनिः सः ।
जात्यैव विप्र इत्य–
प्यवोचि शेषेण विस्तृतं भाष्ये ॥७१॥

जिस ब्राह्मण में तप और विद्या का अभाव है वह केवल जाति ब्राह्मण है परन्तु जाति गत ब्राह्मण्य का उसमें अभाव नहीं है ॥ ७१ ॥

एतन्मतं विविच्य
प्रधानभावेन जन्मसंसिद्धम् ।
शर्मादि नाम सद्यः
प्रदीयते यत्प्रयुक्तमाचार्यैः ॥७२॥

इसी बात को लक्ष्य में रखकर संसार में बालक का जन्म से ग्यारहवें दिन में शर्मा वर्मा गुप्त आदि नाम धरा जाता है जिसका अनुमोदन गृह्यसूत्र करते हैं ॥७२

तस्यापि सत्कृतिर्या
निमित्तमुद्दिश्य दृश्यते लोके ।
साश्वत्थसौरभेयी–
समर्चनावच्छिवान्यलं सूते ॥७३॥

उस जन्म सिद्ध ब्राह्मण की जो सत्क्रिया निमित्त से लोक में की जाती है वह भी पिप्पल और गौ के अर्चना के समान पूजा करने वाले का कल्याण करती है सामान्य दृष्टि से पिप्पल वृक्ष और गौ पशु है परन्तु इनके सत्कार से यजमान का अभ्युदय अवश्य होता है ॥ ७३ ॥

कर्मापि जन्मवादं
प्रकृत्य वेदेन वर्णितं मन्ये ।
नोचेत्कथं चतुर्थी–
विभक्तिरुक्ता यजुर्गते मन्त्रे ॥७४॥

वेदादि सत्य शास्त्रों में जो वर्णों के लिये कर्मों का निर्देश मिलता है वह भी जन्म गत वर्ण व्यवस्था को लक्ष में रख कर ही लिखा गया है अदि ऐसा न होता तो [ब्रह्मणे ब्राह्मणं] इत्यादि वेद मंत्रों में चतुर्थी विभक्ति का निर्देश न होता ॥ ७४ ॥

हारीतधर्मसूत्रे
त्रयोदशाङ्गं यदुक्तमेकान्तम्
शीलं तदप्यशक्यं
जनिं समभ्येति जन्मतः सिद्धम् ॥७५॥

हारीत स्मृतिमें तेरह प्रकार का जो शील ब्राह्मण के लिये नियत किया गया है वह भी जन्म गत जाति मानने पर ही सिद्ध हो सकता है अन्यथा उसका होना असम्भव है ॥ ७५ ॥

कर्माणि धर्मशास्त्रे
मनुप्रदिष्टे यथाक्रमं यानि ।
गदितानि तानि विप्रै-
र्यदि क्रियन्ते तदा न सम्पातः ॥७६॥

मनुप्रोक्त धर्मशास्त्र में ब्राह्मण के लिये जिन कर्मोंका विधान है उन कर्मों का अनुष्ठान करने पर ब्राह्मण अपने पद से कभी गिर नहीं सकता है ॥ ७६ ॥

तेषु प्रतिग्रहो यो
मनौ समुक्तः स धार्मिकैर्विप्रैः ।
आपत्तिकाल एव
प्रधानरूपेण धर्मतो ग्राह्यः ॥७७॥

परन्तु उन कर्मों में जो प्रतिग्रह लेने का विधान है वह आपत्काल के अतिरिक्त अन्य समय में नहीं लेना चाहिये ॥ ७७ ॥

यस्मात्प्रतिग्रहेण
प्रयाति नाशं सहागतं तेजः ।

तस्मान्न तं ग्रहीतुं
कदापि यत्नो मुखोद्भवैः कार्यः ॥७८॥

प्रतिग्रह के लेने से ब्राह्मण का सहज ब्रह्म तेज नष्ट हो जाता है इस कारण उसके लेने के लिये ब्राह्मण को कभी इच्छा नहीं करनी चाहिये ॥ ७८ ॥

शूद्रान्नमप्यशङ्कं
विनाशयत्येव धार्मिकं तेजः ।
विप्रेषु यन्निसर्गा-
द्विलोक्यतेऽन्यैः स्वभावसंसिद्धम् ॥७९॥

शूद्र का अन्न लेने से भी ब्राह्मण का धार्मिक तेज नष्ट होता है इस कारण जहां तक बने वहा तक उससे ब्राह्मण को बचना चाहिये ॥ ७९ ॥

यैः कर्मभिः प्रपातो
भवत्यशङ्कं प्रयत्नतस्तानि ।
हेयानि विप्रवंश्यैः
प्रयत्नतोऽन्यानि सेवनीयानि ॥८०॥

जिन कर्मों के करने से ब्राह्मण अधोगति को प्राप्त होता है उन कर्मों का त्याग करके अच्छे कर्मों की ओर ब्राह्मण को जाना चाहिये ॥ ८० ॥

गृह्यानुमोदिताब्दे
द्विजातिभावोद्गमाय संस्कारः ।
कर्तव्यो विधिवाक्याद्-
द्विजन्मभिर्येन संस्कृतिर्भूयात् ॥८१॥

गृह्य सूत्रों में लिखे हुये नियत समय के अन्दर द्विजत्व देने वाला उपवीत संस्कार अवश्य करना चाहिये जिससे आत्मा का संस्कार हो जावे ॥ ८१ ॥

आषोडशाब्दमेवो-
पवीतसंस्कार उक्त आचार्यैः ।

मुखजेषु तत्परन्ते
भवन्ति लोकेषु निश्चितं व्रात्याः ॥८२॥

ब्राह्मण का उपवीत संस्कार सोलह वर्ष तक होता है उसके अनन्तर ब्राह्मण व्रात्य भाव को प्राप्त हो जाता है ॥ ८२ ॥

कात्यायनोक्तसूत्र-
क्रमानुसारेण संस्कृतिस्तेषाम् ।
कर्तव्या द्विजमुख्यै-
र्यथा न ते स्युः कदापि सन्त्याज्याः ॥८३॥

विद्वानों को चाहिये कि वे कात्यायन श्रौत सूत्र में लिखित व्रात्य स्तोम नामक यज्ञ के द्वारा उन व्रात्य ब्राह्मणों का प्रायश्चित्तीय संस्कार करके उन ब्राह्मणों को फिर यज्ञोपवीत देकर अपने दल में मिलावें जिससे वे कदापि त्याज्य न हों ॥ ८३ ॥

योयं व्रात्यस्तोमो
ऋषिप्रणीतेषु गृह्यसूत्रेषु ।
वेविद्यते स यत्नाद्-
व्रात्यव्राते यथाकर्म योज्यः ॥८४॥

यह जो व्रात्यस्तोम नामक यज्ञ प्राचीन आर्ष गृह्य सूत्रों में मिलता है उस का वर्तमान समय में व्रात्य द्विजों के लिये उपयोग करना अत्यावश्यक प्रतीत होता है क्यों कि इस समय व्रात्य द्विजों की संख्या अधिक है ॥ ८४ ॥

अयमेव वेदमूलो
व्रात्यस्तोमः पुरातने काले ।
गणशः कृतप्रयोगो
द्विजातिसंख्यामवर्धयद्वेगात् ॥८५॥

वेद मूलक इसी व्रात्य स्तोम यज्ञ के द्वारा प्राचीन समय में धार्मिक आचार्यों ने स्वधर्म भ्रष्ट द्विज गणों को पवित्र कर द्विजों की संख्या का ह्रास नहीं होने दिया जो इस समय हो रहा है ॥ ८५ ॥

पारस्करेण गृह्ये-
ऽनुमोदितोयं द्विजन्मनां भूत्यै ।
लाट्यायनेन सम्यक्
प्रवर्धितोयं यथोत्तरं मान्यः ॥८६॥

पारस्कर और लाट्यायन प्रणीत गृह्यादि सूत्रों में इन व्रात्य स्तोम का विधान बहुत सुन्दर रीति से प्राप्त हो रहा है जो वर्तमान समय में अत्यन्त उपादेय है ॥ ८६ ॥

ताण्ड्येपि तत्प्रयोगः
प्रलभ्यते य. सनातन. सत्य. ।
धर्माविरुद्धहेतो-
रयं प्रयोज्य. सुखेन विद्वद्भि. ॥८७॥

इस व्रात्य स्तोम का विधान ताण्ड्य ब्राह्मण में भी विस्तृत रूप से मिलता है इस कारण इस सनातन व्रात्य स्तोम का उपयोग वर्तमान काल में धर्म से अविरुद्ध होने के कारण वेदज्ञ विद्वानों का अवश्य करना चाहिये ॥ ८७ ॥

अज्ञानत. प्रमादा-
त्कुलेषु येषां द्विजातिजातानाम् ।
नाभूत्कदापि यज्ञो-
पवीतमेतेन ते पुनर्ग्राह्या. ॥८८॥

अज्ञान से अथवा प्रमाद से जिन द्विजों के कुलों में व्रात्यभाव आगया है उन कुलों का पुनरुत्थान करने के लिये इससे अधिक उपयोगी अन्य कोई उपाय नहीं है इसके द्वारा उनका अपने वर्ग में लेना इस समय नितान्त आवश्यक है ॥८८॥

पतनं स्वभावसिद्धं
तदुद्धृतिर्या सनातनी मापि ।
तस्मादियं विधिज्ञै-
र्विनिश्च्य यत्नेन भूतले स्थाप्या ॥८९॥

अपने धर्म से मनुष्य का पतन स्वभाव सिद्ध है और उसका उद्धार करना भी सनातन ही है इस कारण इस सनातनी पद्धति का स्थापन विद्वानों को अवश्य करना चाहिये ॥ ८९ ॥

ये बाहुजाः प्रमादा-
तथोरुजा ये क्रमेण सञ्जाताः ।
व्रात्यास्तदुद्धृतिस्त-
न्मतानुसारेण सर्वतः स्थाप्या ॥९०॥

वर्तमान समय में प्रमाद से जो क्षत्रिय और वैश्य व्रात्य हो गये हैं उनका इस व्रात्यस्तोम यज्ञ के द्वारा उद्धार यदि वे चाहें तो अवश्य करना चाहिये ॥ ९० ॥

व्रात्या बभूवुरादौ
न केपि सृष्टेरुपक्रमे, पश्चात् ।
सत्कर्मणां विलोपा-
द्बभूवुरेते द्विजन्मनां पुत्राः ॥९१॥

सृष्टि के आरम्भ में कोई व्रात्य उत्पन्न नहीं हुआ है, अपने कर्मोंके परित्याग से वे पीछे व्रात्य हुये हैं। उनमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ही प्रायः व्रात्य बनकर अधोगति की ओर अग्रसर हुए हैं क्यों कि शूद्र व्रात्य होते नहीं हैं व्रात्य संज्ञा तो उनकी होती है जिनका समय पर उपवीत न हो ॥ ९१ ॥

तेषाङ्कृते समुक्तो
व्रात्यस्तोमो द्विजन्मनां मुख्यैः ।
ग्रन्थेषु योऽद्य सम्यग्
विलोक्यतेऽतः स सम्प्रतं ग्राह्यः ॥९२॥

उन व्रात्यों के लिये कात्यायन आदि प्राचीन आचार्यों ने अपने अपने ग्रन्थों में व्रात्यस्तोम का उल्लेख किया है जो वर्तमान समय में भी मिलता है उसका इस समय प्रयोग अवश्य होना चाहिये ॥ ९२ ॥

एतन्मया समुक्तं
द्विजन्मनामेव भूतये यस्मात् ।

मा सन्तु वर्णबाह्या–
द्विजातिपुत्रा. कुलप्रणेतारः ॥९३॥

भगवान् श्रीचन्द्रजी कहते हैं कि इस व्रात्यस्तोम का प्रसङ्ग हमने द्विजों के उद्धार के लिये ही यहा पर प्रस्तुत किया है जिससे द्विजों के कुल वर्धक द्विज कुमार समयान्तर में वर्ण बाह्य न समझे जावें ऐसा होने पर वे अन्त में असवर्ण बनकर हिन्दू जाति से अलग हो सकते हैं ॥ ९३ ॥

येषां न वेदमध्ये
न धर्मशास्त्रेषु नामनिर्देशः ।
ते मन्मते यथावद्–
द्विजन्मजाताः समासतो व्रात्याः ॥९४॥

जिनका वेद और धर्मशास्त्रों में नाम निर्देश नहीं मिलता है और ऐसा होने पर भी जो द्विज प्रतीत होते हैं वे सब प्राचीन काल से व्रात्य भाव को प्राप्त हुये द्विजों के वंशधर हैं ॥ ९४ ॥

वर्णाः सवर्णजायां
विवाह्य धर्मेण तासु यान्पुत्रान् ।
उत्पादयन्ति ते ते
सवर्णजाता. सवर्णतां यान्ति ॥९५॥

चारों वर्ण अपनी अपनी सवर्ण स्त्री से विवाह करके उनमें जो सन्तान उत्पन्न करते हैं वे पुत्र अपनी अपनी जाति में सवर्ण कहलाते हैं ॥ ९५ ॥

तेषु द्विजन्मभावं
तएव संयान्ति ये यथाकालम् ।
उपवीतधारणान्ते
गुरुप्रदिष्टां पठन्ति गायत्रीम् ॥९६॥

उनमें यथा समय जिनको उपवीत होने पर गायत्री का उपदेश मिलता है वे द्विज बन जाते हैं और जो इन दोनों से वञ्चित रह जाते हैं वे केवल जाति से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य कहलाते हैं ॥ ९६ ॥

अस्मिन्द्वितीयजन्म-
न्यनन्तवीर्या क्रमेण गायत्री ।
माता भवत्यशङ्कं
पिता गुरुर्यो ददाति तां धर्मात् ॥९७॥

इस दूसरे जन्म में माता गायत्री और पिता आचार्य होता है जो उपवीत देकर समस्त कार्यों के करने का अधिकार दिलाता है ॥ ९७ ॥

वेदोपवेदवेत्ता
ददाति यां जातिमुत्तमामस्मै ।
सत्याऽजराऽमरा सा
समुच्यतेऽन्यैर्विविच्य सन्दत्ता ॥९८॥

वेदज्ञ ब्राह्मण इस द्वितीय जन्म में जिसको जिस जाति में मानकर उपवीत देता है वह उसकी जाति उसके लिये सर्वदा के लिये नित्य हो जाती है ॥ ९८ ॥

तस्मादवश्यमेषा
द्विजातिजातैः प्रयत्नतो ग्राह्या ।
गायत्री गुरुवर्या-
द्यया द्विजत्वं प्रयान्ति सम्भूताः ॥९९॥

इसलिये द्विज कुमारों को चाहिये कि वे ठीक समय पर वेदज्ञ विद्वान् को बुला कर उससे गायत्री मन्त्र का उपदेश ग्रहण करें जिसके ग्रहण करने पर वे वास्तव में द्विज बन जाते हैं ॥ ९९ ॥

धन्येयं गायत्री
यया द्विजत्वं प्रदीयते मधः ।
वेदेषु चाधिकारो
विभिन्नयज्ञेषु देवतार्चासु ॥१००॥

यह गायत्री धन्य है जिसके ग्रहण करने पर सत्य द्विजत्व प्राप्त होने पर मनुष्य यज्ञ वेदाध्ययन और देवपूजन का अधिकारी हो जाता है ॥ १०० ॥

किन्तैरनन्तमन्त्रै-
न ये द्विजत्वं प्रदातुमर्हन्ति ।
शतशो मुखेन गीताः
सहस्रशो ये गुरुभ्य आदत्ताः ॥१०१॥

उन अनन्त मन्त्रों से संसार का क्या भला हो सकता है, जो सौ बार मुख से कहने पर और हजार बार गुरुओं से लेने पर भी द्विजत्व प्राप्त कराने में समर्थ नहीं होते हैं ! ॥ १०१ ॥

एकैव सर्वमान्या
गायत्रीयं परःशतानन्यान् ।
मन्त्रान्निपात्य नीचैः
समस्तमूर्धन्यधन्यतामेति ॥१०२॥

सर्वमान्य यह एक गायत्री हजारों अन्य मन्त्रों को नीचे गिरा कर समस्त मन्त्रों के शिर पर बैठने का महत्व रखती है ॥ १०२ ॥

अस्या जपप्रभावाद्-
द्विजाः समस्तानि पापमूलानि ।
उच्छिद्य सर्वमान्यं
पदं प्रयान्ति क्रमेण सन्नद्धाः ॥१०३॥

इसके जप के प्रभाव से द्विज समस्त पापों के मूलों को उच्छिन्न कर सर्वमान्य ब्रह्म पद को प्राप्त करने के लिये सन्नद्ध हो जाते हैं ॥ १०३ ॥

एवं प्रशस्य वन्द्यां
धन्यां पुण्यां यशस्विनीं सेव्याम् ।
गायत्रीमयमेवं
श्रीचन्द्रः प्राह कर्मणां भेदम् ॥१०४॥

इस प्रकार वेदमाता गायत्री का महत्व वर्णन करने के अनन्तर भगवान् श्री चन्द्र जी अब वर्णों का कर्म निर्णय करते हैं ॥ १०४ ॥

ज्ञानं स्वभावसिद्धं
विलोक्यते येषु धर्मशास्त्रेण ।
ते ब्राह्मणाः समुक्ता-
श्चतुर्विधास्तेन कर्मणां भेदात् ॥१०५॥

जिनमें स्वभाव सिद्ध ज्ञान की मात्रा अत्यधिक होती है वे शमदमादि सम्पन्न ब्राह्मण चार प्रकार के होते हैं ॥ १०५ ॥

एके तपः प्रधानाः
परेऽत्र यज्ञादिकार्यकर्त्तारः ।
अन्ये श्रुतिप्रवीणाः
पुराणविज्ञास्ततोऽपरे लोके ॥१०६॥

एक तपः प्रधान, दूसरे यज्ञ करने और कराने वाले, तीसरे वेदज्ञान और चौथे पुराण विद्या जानने वाले पौराणिक ? ये ही चार कर्म ब्राह्मणों में प्रायः मिलते हैं ॥ १०६ ॥

एवं स्वभावसिद्धं
बलं विशिष्टं विलोक्यते येषु ।
ते क्षत्रियाः प्रशस्ता-
श्चतुर्विधाएव धर्मशास्त्रेण ॥१०७॥

इसी प्रकार जिनमें स्वभाव शील सिद्ध बल की मात्रा अधिक होती है वे शौर्यादि गुण सम्पन्न क्षत्रिय चार प्रकार के होते हैं ॥ १०७ ॥

एके बलप्रधानाः
परे धरित्रीपतित्वमापन्नाः ।
अन्ये महीपमान्याः
समस्तकर्मस्ववस्थितास्तुर्याः ॥१०८॥

एक बल प्रधान योद्धा, दूसरे पृथिवी पर अधिकार रखने वाले भूपति तीसरे राजमान्य बादशाह और चौथे सामान्य सब काम करने वाले ? ये ही चार भेद प्रायः क्षत्रियों में मिलते हैं ॥ १०८ ॥

एवं स्वभावसिद्धं
धनं विशिष्टं विलोक्यते येषु ।
वैश्यास्तएव लोके
चतुर्विधत्वं क्रमागतं तेषु ॥१०६॥

इसी प्रकार जिनमें स्वभाव सिद्ध धन और धन कमाने की व्यापार-शक्ति अधिक होती है वे वैश्य चार प्रकार के होते हैं ॥ १०९ ॥

एके धनप्रधाना
परे रसादिप्रवर्त्तने सक्ताः ।
अन्येन्नमात्रपण्याः
फलादिपण्येषु सङ्गतास्तुर्याः ॥११०॥

एक धन प्रधान व्यापारी, दूसरे घृत-तेल-दुग्ध आदि के बेचने वाले, तीसरे अन्न मात्र का काम करने वाले और चौथे फल मेवा वस्त्र आदि से लाभ उठाने वाले ? ये ही चार भेद प्रायः वैश्यों में मिलते हैं ॥ ११० ॥

एवं निसर्गसिद्धा
समस्तसेवैव येषु विन्यस्ता ।
शूद्रास्तएव लोके
चतुर्विधत्वं व्यवस्थितं तेषु ॥१११॥

इसी प्रकार जिनमें स्वभाव सिद्ध सेवा भाव और शिल्पकला व्यवस्थित रहती है वे शूद्र चार प्रकार के होते हैं ॥ १११ ॥

एकेऽत्र शिल्पदक्षाः
परे द्विजानामुपासने रक्ताः ।
अन्ये कृषिप्रधाना
निकृष्टमार्गानुगामिनस्तुर्याः ॥११२॥

एक शिल्प प्रधान कारीगर, दूसरे द्विजों की सेवा करने वाले नाई धीवर आदि, तीसरे खेती करने वाले और चौथे निकृष्ट काम करने वाले ? ये ही चार भेद प्रायः शूद्रों में मिलते हैं ॥ ११२ ॥

एभ्यश्चतुर्भ्य अन्ये
निदर्शिता ये निसर्गतो मन्त्रैः ।
सङ्कीर्णयोनयस्ते
विवर्णयोनिप्रसङ्गजाः सर्वे ॥११३॥

इन चार वर्णों के अतिरिक्त जो जातियां यजुर्वेद के तीसवें अध्याय में नामतः निर्दिष्ट की गई हैं वे सङ्कीर्ण मिश्रित जातियां हैं ॥ ११३ ॥

ये प्रातिलोम्यभावं
स्वभावसिद्धं क्रमेण सम्प्राप्ताः ।
ये चानुलोम्यमाप्ताः
प्रभुर्न तेषां विपर्यये मर्त्यः ॥११४॥

उनमें कोई प्रतिलोम और कोई अनुलोम भाव से संसार में व्यवस्थित हैं उनमें विपर्यय करना मनुष्य की शक्ति से बाहर है॥ ११४ ॥

जन्मान्तरे कृपातः
प्रभो कदाचित्कथञ्चिदेतेषु ।
वर्णानुपेतिकश्चि-
न्न जन्मनैकेन सद्गतिस्तेषाम् ॥११५॥

जन्मांतर में ईश्वर की कृपा से इनमें कोई क्रमशः वर्णों में जन्म ले सकता है परन्तु एक जन्म में इनका उठना असम्भव है ॥ ११५ ॥

मन्वत्रिगोतमानां
मतेन तेषां विपर्ययः कर्तुम् ।
शक्योत्र सप्तमे वा-
ऽथ पञ्चमे वापि जन्मनि प्रायः ॥११६॥

मनु अत्रि गौतम आदि मुनियों के मतमें पांचवें अथवा सातवें जन्म में इनका विपर्यय हो सकता है ॥ ११६ ॥

सद्यः समुद्धृतिं ये
वदन्ति तत्रापि वल्लभाचार्याः ।

सद्यः यदस्य जन्मा-
न्तरार्थमेवानुमोदयन्त्यत्र ॥११७॥

जो महानुभाव [श्वादोपि सद्यः सवनाय कल्पते] इत्यादि पद्यों में सद्यः पद का अर्थ न समझ कर अर्थ का अनर्थ करते हैं उनको श्री वल्लभाचार्य के मतानुसार जन्मान्तर परक ही अर्थ लगाना चाहिये। वे श्री सुबोधिनी में सद्यः पद का अर्थ [उत्तरजन्मनि] ऐसा करते हैं अनेक जन्म प्राप्य अर्थ का एक जन्म के बाद ही प्राप्त करना सद्यः पद के अर्थ में बहुत कुछ अर्थ रखता है जो भगवत्कृपा पर निर्भर है ॥११७॥

एते विवर्णजाताः
सवर्णजानां कुलेषु दैवेन।
यदि सङ्गमं प्रयाता-
स्तदा निपातः सवर्णजानां स्यात् ॥११८॥

विवर्ण प्रसूत ये सङ्कीर्ण वर्ग यदि कदाचित् सवर्णों के साथ सम्पर्क करेंगे तो सवर्णों का अधःपतन अन्त में अवश्य होगा ॥ ११८ ॥

एभ्यः सदार्यजातेः
कुलानि रक्ष्याणि यत्नतो विज्ञैः।
नोचेदिमे प्रमत्ताः
प्रपातयन्ति प्रसङ्गतः स्त्रीणाम् ॥११९॥

आर्यों को चाहिये कि वे इन अनार्य दस्युओं से अपने कुलों की अवश्य रक्षा करें, नहीं तो ये बलपूर्वक आर्य ललनाओं से संसर्ग कर उनके कुलों को नष्ट कर देंगे ॥ ११९ ॥

कामान्धतामुपेत्य
स्वभावतः कोपि कामिनो मर्त्याः।
संसर्गमेभिरेत्य
स्वयं विनाशं प्रयान्ति कालेन ॥१२०॥

कोई २ कामी पुरुष अनार्य स्त्रियों से सम्पर्क रख कर स्वय अपने कुलों में सङ्करता फैलाने का उद्योग करते हैं जिससे अन्त में जाकर उनके कुलों का सर्वापहारी लोप हो जाता है ॥ १२० ॥

एतन्मतं विवक्षु-
मनुः सवर्णासु वर्णजातानाम् ।
वैवाहिकं विधानं
निबोधयामास धर्मशास्त्रेण ॥१२१॥

इसी बात को लक्ष्य में रख कर मनु ने सवर्णों का विवाह सवर्ण कन्याओं के साथ करने का विधान किया है जिससे सवर्णों में विवर्ण जाति के उद्भव का कदापि भय न हो ॥ १२१ ॥

वर्णानां व्यभिचरणा-
द्विधवागमनात्स्वकर्मविभ्रंशात् ।
सङ्कीर्णयोनिजानां
समुद्भवोस्मिन्प्रजायते लोके ॥१२२॥

चारों वर्णों में आपस के व्यभिचार से विधवाओं के गमन से तथा अपने अपने कर्मों के त्याग से मनुष्यों में सङ्करता आ जाती है ॥ १२२ ॥

नरकाय सङ्करोयं
निबोधितस्तेन वासुदेवेन ।
गीतासु यत्प्रभावा-
त्पतन्ति सद्यो दिविस्थिताः पितरः ॥१२३॥

उत्तम कुलों में सङ्करता का होना गीताकार के मत में पितरों के नरक जाने में प्रधान रूप से कारण बनता है ॥१२३॥

शङ्कामिमां यथाव-
न्मनस्यवस्थाप्य सङ्करात्सद्यः ।
पाण्डोः सुतो महात्मा
निवृत्तिमेवान्वमंस्त यत्नेन ॥१२४॥

इसीके शङ्का उत्पन्न होने पर अर्जुन युद्ध से निवृत्त होकर भगवान् के पास आकर युद्ध से अपनी अनिच्छा प्रकट करने के लिये उद्यत हुआ था ॥१२४॥

अद्यत्वे भुविकेचि-
त्प्रचण्डपाखण्डमण्डने सक्ताः ।
विधवानां करपीडन-
मादरणीयं वदन्ति तर्केण ॥१२५॥

आजकल कोई २ महानुभाव शास्त्रों का मर्म न समझ कर केवल अपने तर्क से विधवाओं का विवाह प्रयोजनीय बतलाते हैं ॥ १२५ ॥

परमत्र वेदमन्त्र-
प्रमाणराहित्यमीदृशं तेषाम् ।
कर्म स्वभावनिन्द्यं
निर्बोधयत्येव नात्र सन्देहः ॥१२६॥

परन्तु इस विषय में किसी वेद मन्त्र का आदेश न मिलने से उनका यह कथन स्वय निन्दनीयता में आकर परिणत हो जाता है ॥ १२६ ॥

धर्मः सएव वक्तुं
शक्यो वेदेन धर्मशास्त्रेण ।
गृह्यैश्च धर्मसूत्रैः
समर्थनं यस्य लभ्यते लोके ॥१२७॥

धर्म उसी को कहा जा सकता है जिसका समर्थन वेद गृह्यसूत्र धर्मशास्त्र आदि से हो सकता हो ॥ १२७ ॥

मीमांसया न यस्य
प्रधानरूपेण साध्यतेऽस्तित्वम् ।
केनात्र तस्य सिद्धिः
प्रकल्पनीया प्रमाणवादेन ॥१२८॥

मीमांसा शास्त्र में प्रधान रूप से जिस सिद्धान्त का अस्तित्व नहीं मिलता है उसका किस प्रमाण से धार्मिकत्व सिद्ध किया जा सकता है ? ॥ १२८ ॥

शब्दानुपातमात्र-
प्रमाणमन्निष्य ये वदन्त्यर्थम् ।
ते नैव पण्डितेषु
प्रशस्तिपात्रीभवन्ति संसत्सु ॥१२९॥

पूर्वापर-प्रसङ्ग विरुद्ध किसी एक शब्द का अवलम्ब लेकर जो मनुष्य अपने मत का प्रतिपादन करते हैं वे पंडितों के समाज मान-मान नहीं कर सकते हैं ॥ १२९ ॥

ऐतिह्यगीतगाथा-
प्रसङ्गमुत्थाप्य मूढसंसत्सु ।
येऽर्थं प्रसाधयन्ति
प्रकाममज्ञास्त ईदृशे धर्मे ॥१३०॥

केवल ऐतिह्य सिद्ध गाथाओं के बल पर जो मनुष्य अपने मत का मूर्खों में बैठकर प्रतिपादन करते हैं वे धर्म का तत्व समझने में कदापि समर्थ नहीं हैं ॥ १३० ॥

रामो वनं जगाम
स्वतातपादानुमोदनात्सीनाम् ।
दर्पाज्जहार तस्मि-
न्दशाननोपि स्वभावतश्चण्डः ॥१३१

पिता के कथन से श्रीराम जी वन को प्रस्थित हुए और वहां पर दशानन ने भी जानकी जी का अपहरण किया ॥ १३१ ॥

ऐतिह्यसिद्धमेतद्-
द्वयं यथावत्प्रलभ्यते लोके ।
किन्तेन सर्वलोकाः-
परस्य दारान्नयन्तु यत्नेन ॥१३२॥

यह दोनों बातें इतिहास सिद्ध होने के कारण लोक में प्रचलित हैं यथा इतने से सब मनुष्य परस्त्री का अपहरण करें ? ॥ १३२ ॥

एवंविधप्रसङ्ग—
प्रवृत्तवादेषु मानवैः कार्यम् ।
विज्ञैस्तदेव यस्मि—
न्नधर्मबाधा समापतेद्भयः ॥१३३॥

ऐसे प्रसङ्ग उपस्थित होने पर विद्वानों को चाहिये कि वे उस पक्ष का समर्थन करें जिससे सनातन वैदिक मर्यादा का नाश उपस्थित न हो ॥ १३३ ॥

वेदाविरुद्धतर्क—
प्रतिष्ठितं यत्तदेव संग्राह्यम् ।
यच्छुष्कतर्कवेद्यं
न तत्कदापि प्रतिष्ठितं धर्मे ॥१३४॥

धर्म प्रतिपादन में वही तर्क उपादेय होता है जो वेदादि सत्य शास्त्रों के विरुद्ध न हो, जो वेद विरुद्ध शुष्क तर्क होता है वह धर्म प्रतिपादन में मान्य नहीं होता है ॥ १३४ ॥

धर्मः सनातनोयं
न तर्कवेद्यः कदापि केनापि ।
सिद्धस्य साधने किं
प्रमाणवादः करिष्यति प्राप्तः ॥१३५॥

अनादिकाल प्रचलित यह सनातन धर्म तर्क से किसी को ज्ञात नहीं हो सकता है और सिद्ध पदार्थ के साधन में प्रमाणवाद भी उपस्थित होकर क्या कर सकता है ? ॥ १३५ ॥

सूक्ष्मा गतिः समुक्ता
सनातनस्यास्य धर्ममार्गस्य ।
नात्र प्रमादचर्चा
कदापि केनापि विस्मयात्कार्या ॥१३६॥

धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म है इसमें किसी को प्रमाद से काम नहीं लेना चाहिये । प्रमाद से काम लेने पर इसमें अनेक आपत्तियां उपस्थित हो जाती हैं जो अन्त में अपने ही नाश का कारण बनती हैं ॥१३६॥

धर्मः समस्तवस्तु-
ष्ववस्थितोऽयं स्वरूपरक्षायाम् ।
शक्तः पदार्थरक्षां
सदा विधत्ते यथाक्रमं प्राप्तः ॥१३७॥

धर्म पदार्थ मात्र में रहकर सबके स्वरूपों की रक्षा करता है इसी कारण इसको वैदिक मुनिगण स्वरूप रक्षक मानते हैं। ॥ १३७ ॥

अतएव धर्मरक्षा-
समर्थकैरेष यत्नतः प्रायः ।
सम्वर्धितः स्वरक्त-
प्रदानतोपि प्रकाममुन्निद्रैः ॥१३८॥

स्वरूप रक्षक होने के कारण ही इसकी रक्षा करने में हमारे पूर्वजों ने अपना रक्त तक देकर इसको आज तक बचाया है ॥ १३८ ॥

निधनं वरं स्वधर्मे
परस्य धर्मो भयावहः प्रोक्तः ।
गीतासु योगिवर्यैः
समस्तविज्ञानरक्षकैः कृष्णैः ॥१३९॥

अपने धर्म में मरना तक अच्छा है परन्तु दूसरे के धर्म में जाकर सुख भोगना भी महापाप है इस बात को भगवद्गीता में श्री कृष्णचन्द्र जी स्वयं अपने श्री मुख से कह चुके हैं ॥ १३९ ॥

आत्यन्तिकीं समृद्धिं
परत्र मोक्षं ददाति यो धर्मः ।
कस्तस्य रक्षणेऽलं
प्रयत्नवान्न प्रकाममत्र स्यात् ॥१४०॥

जो आत्यन्तिक उन्नति के साथ-साथ अन्त में मोक्ष तक देने में समर्थ है उस धर्म के रक्षण में कौन मनुष्य प्रयत्न शील न होगा ? ॥ १४०

मीमांसकैः समुक्ता
प्रचोदनैवात्र धर्मरूपेण ।
या वेदमूलिकाऽलं
निवारयत्येव पापतो मर्त्यान् ॥१४१॥

मीमांसकों ने इस जगत् में प्रेरणात्मक ईश्वरीय सन्देश को धर्म पद से अनुमत किया है जो प्रेरणा वेद मूलक होने के कारण मनुष्यों को पाप करने से हटाती है ॥ १४१ ॥

नियमेन कार्यमेत–
न्न कार्यमित्येव चोदना वेदात् ।
सम्प्राप्यते ततोयं
समस्तवेदप्रचोदितो धर्मः ॥१४२॥

यह कार्य नियम से करना चाहिये और यह न करना चाहिये इस प्रकार की प्रेरणा वेद से ही प्राप्त हो सकती है इस कारण वेद ही समस्त प्रेरणाओं का मूल माना गया है ॥ १४२ ॥

धर्मोयमेव लोके
समस्तविश्वस्य धारको यस्मात् ।
तस्मादवोचदेवं
मुनीन्द्रवर्यः पुरातनो व्यासः ॥१४३॥

समस्त विश्व की धारण क्षमता इसमें देखकर मुनिवर व्यास ने जो इसका लक्षण किया है अब उस पर ध्यान दीजिये ॥ १४३ ॥

यं धारयन्ति सर्वे
जनाः प्रयत्नेन धारयत्यन्यान् ।
यः सर्वदा विनिद्रः
स धर्म इत्येव गीयते विज्ञैः ॥१४४॥

आप कहते हैं कि जिसको सब धारण करते हैं और जो सबके द्वारा धारण किया हुआ भी जो अपने बल से सबका धारण स्वयं करता हो उसीको धर्म कहा जा सकता है । ॥ १४४ ॥

यस्यात्र यत्स्वरूपं
विलोक्यते तत्तथैव येनालम् ।
संस्थाप्यते स धर्मः
स्वरूपरक्षात्मकः समादिष्टः ॥१४५॥

जिस पदार्थ का जो स्वरूप देखने में आता है उसको उसी स्वरूप में अव-स्थित रखना जिसका कर्तव्य हो वही स्वरूप रक्षक धर्म माना जाता है उसके विपरीत स्वरूप से गिराने वाला पातक कहा जाता है [पातयतीति पातकम्, धारयतीति धर्मः] ॥ १४५ ॥

देहात्मवादमात्रं
स्वरूपमात्मन्यवस्थितं येषाम् ।
शौद्धोदनादयस्ते
बभूवुरत्र प्रनिष्ठिताः पूर्वम् ॥१४६॥

अब स्वरूप शब्द के अर्थ पर विवेचन किया जाता है। जिनके मत में केवल शरीर मात्र ही अपना स्वरूप है वे बौद्ध अनीश्वर वादी नास्तिक कहे जाते हैं ॥ १४६ ॥

लोकोत्तरात्र कीर्तिः
स्वरूपशब्देन यैर्मता लोके ।
ते विक्रमादिभूपाः
समस्तलोकेषु विस्तृतात्मानः ॥१४७॥

इसके अतिरिक्त जिनके मत में अचल कीर्ति स्वरूप पद वाच्य है वे विक्रम, नल, भोज आदि लोकमान्य पुरुष संसार में आज भी कहे जाते हैं ॥ १४७ ॥

विश्वं समस्तमेत-
त्स्वरूपमेकान्तमुन्नतं येषाम् ।
जीमूतवाहनाद्या-
स्तएव लोकेत्र मन्यते मान्याः ॥१४८॥

इन दोनों के अतिरिक्त जिनके मत में समस्त विश्व अपना स्वरूप है वे जीमूतवाहन दधीचि आदि महानुभाव सर्वमान्य होते हैं ॥ १४८ ॥

एवं स्वरूपशब्द–
प्रदिष्टनानार्थबोधकं भावम् ।
सम्यग्विविच्य धर्म–
व्यवस्थितौ किञ्चिदुच्यते भूय. ॥१४६॥

इस प्रकार स्वरूप के सम्बन्ध में इतना विवेचन करके अब धर्म के विषय में कुछ कहते हैं ॥ १४९ ॥

दशभिः प्रदिष्टमङ्गैः
स्वरूपमेकान्तमञ्जुलं यस्य ।
साधारणः स धर्मो
मनुष्यमात्रव्यवस्थितो लोके ॥१५०॥

धृति क्षमा आदि मनु मोक्त दश अङ्ग जिस धर्म के लक्षण हैं ■■ सर्व साधारण धर्म सामान्य धर्म है ॥ १५० ॥

वेदेन यः समुक्तो
ऽनुमोदितोयोऽत्र धर्मशास्त्रेण ।
आचारतोपि सिद्धः
सएव धर्म. सनातनो मान्यः ॥१५१॥

अनादि काल सिद्ध वेद प्रतिपादित धर्मशास्त्रानुमोदित तथा सदाचार प्रतिष्ठित जो धर्म है वही आत्मोन्नति कारक विशेष धर्म है ॥ १५१ ॥

विज्ञानसिद्धमेत–
त्प्रशस्तधर्मप्रवर्धकं लिङ्गम् ।
यस्यास्ति लोकमध्ये
सएव धर्म. समुच्यते सद्भिः ॥१५२॥

जिसका विज्ञान सिद्ध आत्मोन्नति कारक विश्वव्यापी सर्वमान्य लक्षण ऊपर कहा गया है उसी को सज्जन गण धर्म कहते हैं ॥ १५२ ॥

नास्यादिरस्ति नान्तो
न मध्यमस्य प्रकामतो लभ्यम् ।
केनापि धर्मरक्षा-
समर्थकेन स्वभावसंसिद्धम् ॥१५३॥

इस धर्म का आज तक किसी महानुभाव ने आरम्भ दिन नहीं देखा फिर अन्त कौन देख सकता है, इसीलिये इसको सर्वदा एकसा रहने के कारण सनातन कहते हैं ॥ १५३ ॥

अस्यैव रक्षणार्थं
स रामभद्रो ययावरण्यानीम् ।
कृष्णोपि धर्मरक्षां
निजावतारप्रयोजनेष्वाह ॥१५४॥

इसी धर्म की रक्षा के लिये श्री रामचन्द्र जी राज्य छोड़ कर वन को गये और इसी को करने के लिये श्री कृष्णचन्द्र जी ने अवतार लिया ॥ १५४ ॥

एतन्निमित्तमेव
प्रकाममग्नौ जुहाव तं देहम् ।
सा पद्मिनी प्रशस्या
समस्तनारीषु याऽभवद्धन्या ॥१५५॥

इसी की रक्षा करने के लिये महारानी पद्मिनी ने अपना अनुपम सुन्दर शरीर धधकती हुई चिता में उपहार रूप रख दिया ॥ १५५ ॥

भूपः प्रतापसिंहो
महान्ति कष्टानि निर्जनेऽरण्ये ।
सेहेस्य रक्षणार्थे
मयैव धर्मे नियोजितः पूर्वम् ॥१५६॥

इसी की रक्षा के निमित्त वीरवर महाराणा प्रतापसिंह ने हमारे आदेशानुसार निर्जन वन में घोरातिघोर कष्ट सहन किये ॥ १५६ ॥

एवंविधाः महान्तः
परः सहस्राः स्वरक्तसेकेन ।
धर्मं सनातनं तं
प्रवर्धयामासुरार्यसम्भूताः ॥१५७॥

इसी प्रकार अनेक महा पुरुषों ने प्राचीन समय में इसकी रक्षा में अपना रक्त देकर इसकी रक्षा की ॥ १५७ ॥

ये धर्ममेनमज्ञा
वदन्ति विस्पष्टमुन्नतेः शत्रुम् ।
न ज्ञातमत्र मन्ये
महत्वमेतस्य तैरतत्त्वज्ञैः ॥१५८॥

जो मनुष्य अज्ञान वश इस धर्म को अपनी उन्नति का बाधक समझ कर इसकी अवहेलना करते हैं उन्होंने इसके महत्व को अभी तक समझा नहीं है ॥१५८॥

आजीवनं मनुष्यं
जहाति यो नैव सार्थरूपेण ।
लोकान्तरेपि यान्तं
प्रयाति कस्तं नरोत्तमो जह्यात् ॥१५९॥

जो धर्म जीवन भर मनुष्य के साथ रह कर मरने पर भी उसका साथ नहीं छोड़ता है उस सर्वदा रहने वाले अपने साथी को कौन भद्र पुरुष छोड़ने के लिये उद्यत होगा ? ॥ १५९ ॥

सर्वस्वं यदि नाशं
प्रयाति यातु प्रयान्तु ते प्राणाः ।
किन्त्वेकः सहपान्थो
न जातु यातु प्रतिष्ठितो धर्मः ॥१६०॥

इसकी रक्षा में यदि हमारा सर्वस्व नष्ट होता हो तो होने दो यदि प्राण भी जाते हों तो जाने दो । परन्तु सर्वदा साथ रहने वाला यह हमारा सनातनधर्म हमको छोड़कर न जाने पाये, ऐसा यत्न करो ॥१६०॥

धर्मावलम्बनेयं
मही नभस्तत्प्रतिष्ठितं तोयम् ।
दहनोऽथ मातरिश्वा
तमेकमाश्रित्य तिष्ठति श्रेष्ठम् ॥१६१॥

जरा विचार कर देखो यह पृथिवी धर्म के अवलम्ब पर ही स्थित है और आकाश, वायु, अग्नि, जल आदि तत्त्व इसीके अवलम्ब से ठहरे हुये हैं ॥१६१॥

धर्मेण विश्वमेत-
त्तनोति धाता दधाति तद्विष्णुः ।
धर्मेण शम्भुरन्ते
विनाशयत्याशु कारणे लीनम् ॥१६२॥

इसी के बल पर ब्रह्मा सर्जन करता है विष्णु पालन करता है और महेश इसी के नियमानुसार अन्त में संहार करता है ॥ १६२ ॥

अन्यैर्बहुप्रलापै-
रलं यदीशश्चराचरस्यास्य ।
अवलम्बमेत्य सोऽस्य
प्रतिष्ठते का पुनः कथान्येषाम् ॥१६३॥

अधिक कहा तक कहें समस्त विश्व का एकमात्र अध्यक्ष जो ईश्वर है वह भी इसी के बल पर ठहरा हुआ है औरों की तो फिर कथा ही क्या है ॥१६३॥

नानामतानि लोके
जनैर्निजेच्छावशेन यान्यत्र ।
सञ्चालितानि धर्म
कदापि नार्हन्ति यत्नतो गन्तुम् ॥१६४॥

आज कल संसार में मनुष्यों ने जितने मत चलाये हैं वे इस सनातन धर्म के मुकाबिले पर इसके पासङ्ग पर भी नहीं चढ़ सकते हैं ॥ १६४ ॥

भानावथान्धकारे
यदन्तरं तन्मतेषु सर्वेषु ।
वेविद्यते किमन्य-
त्कलापि धर्मस्य तेष नैकास्ति ॥१६५॥

सूर्य और अन्धकार में अनादि काल सिद्ध जितना अन्तर है उतना ही अन्तर धर्म और मतों के मध्य में है और तो क्या धर्म की एक कला भी उनके अन्दर नहीं झलकती है॥ १६५ ॥

अस्तङ्गतेऽत्र भानौ
तमिसमभ्येत्य दीपते यद्वत् ।
खद्योतपंक्तिरेवं
मतानि धर्मेऽवसानमायाते ॥१६६॥

सूर्य के अस्त होने पर अन्धकार में जिस प्रकार खद्योत चमकते हैं उसी प्रकार धर्म के तिरोहित होने पर मनुष्य कल्पित मतमतान्तर चमकते हैं॥१६६॥

अद्यापि येषु नाम
प्रलभ्यतेऽत्र प्रवर्तकानान्ते ।
वादा मनुष्यपोष्याः
कथं प्रयास्यन्ति भूतले साम्यम् ॥१६७॥

जिन मतों के साथ आज भी प्रवर्त्तकों का नाम लगे हुये दीखते हैं वे मनुष्य रचित मत-वाद सनातनधर्म की तुलना किस प्रकार कर सकते हैं ॥ १६७ ॥

सर्वोपभोगयोग्यः
समस्तविश्वोपकारकः कोऽन्यः ।
धर्माद्दते जगत्यां
मतप्रवादो वदन्त्वदो विज्ञाः ॥१६८॥

विश्व मात्र का कल्याण करने वाला सबके उपकार में समर्थ इस धर्म के अतिरिक्त और कौन मत है ? विद्वान् विचार कर इसका उत्तर दें ॥ १६८ ॥

अस्तित्वमेव यस्मि-
न्विपर्ययं याति तत्र किं तत्त्वम्।
वेविद्यते यदर्थं
मुधा विवादः प्रवर्त्यते मूढैः ॥१६९॥

जिन मतों में जाकर अपना स्वरूप ही नष्ट होता है उनमें क्या तत्व है? जिस के लिये मूढ़ जन व्यर्थ का विवाद बढ़ाकर लड़ते हैं॥ १६९॥

सत्वादिसद्गुणानां
प्रयोजकत्वेन लभ्यते यत्र।
भेदः सएव धर्मः
समस्तरक्षां विधातुमुत्कृष्टः ॥१७०॥

सत्व आदि गुणों के सहयोग से जिसमें भेद प्रतीत होता है वही सनातनधर्म सब की रक्षा करने के कारण सर्वोत्तम कहा जा सकता है॥ १७०॥

वैद्यो यथा निदानं
विधाय रोगप्रणाशने शक्तम्।
नानौषधप्रयोगं
करोति तद्वत्सनातनो धर्मः ॥१७१॥

सद्वैद्य जिस प्रकार निदान के अनन्तर रोग नाशक अनेक औषधों का प्रयोग करता है उसी प्रकार यह धर्म भी गुणानुरूप प्रकृति को देखकर मनुष्यों के लिये अनेक विध धर्माङ्गों का निरूपण करता है॥ १७१॥

वैद्यस्य नास्ति मैत्री
न तस्य वैरं कदापि रुग्णेषु।
अधिकारिभेद एव
प्रयोजकस्तत्र तादृशो भेदे ॥१७२॥

वैद्य की किसी रोगी के साथ न शत्रुता होती है न मित्रता होती है केवल अधिकारी भेद से बलाबल को देख कर वह अनुपान और पथ्य में भेद करता है॥ १७२॥

यो देशकालदोषा-
न्नवेत्ति रोगं निदानतो वैद्यः ।
यमदूतएव मन्ये
समागतः सोत्र रोगिणां शत्रुः ॥१७३॥

जो वैद्य देश काल दोष और रोग को न देख कर अपने मन से विना सोचे समझे इलाज करता है वह रोगियों के लिये प्रत्यक्ष यमदूत है ॥ १७३ ॥

दृष्टान्तमेनमात्म-
न्यलं विचार्य प्रयत्नतो विज्ञाः ।
पश्यन्तु धर्ममार्ग-
व्यवस्थितिं या पुरातनैर्दृष्टा ॥१७४॥

इसी दृष्टान्त को अपने हृदय में विचार कर विद्वान् धर्म का निर्णय करें जैसा कि प्राचीन समय मे हमारे पूर्वजों ने किया है ॥ १७४ ॥

सर्वे समानभावं
न जातु गच्छन्ति भूतले मर्त्याः ।
तस्माद्विभिन्नतेयं
प्रतीयतेस्मिन्सनातने धर्मे ॥१७५॥

संसार में सब मनुष्यों की प्रकृति एकसी नहीं होती है इसी कारण इस धर्म में भी विभिन्नता प्रतीत होती है ॥ १७५ ॥

गुणपारवश्यमेत-
द्विभिन्नतायाः प्रयोजकं धर्मे ।
नो भेदबुद्धिरेषां
समुन्नतौ याऽवरोप्यते मूढैः ॥१७६॥

सत्व आदि गुणों की परवशता से इस धर्म में विभिन्नता है भेद बुद्धि से या किसी की उन्नति रोकने के लिये नहीं, जैसा कि आज कल कुछ अदूरदर्शी मनुष्य कहने लगे हैं ॥१७६ ॥

अयमेव भेदवादो
गुणानुगो देवपूजने भेदम् ।
सन्दर्शयत्यनन्तः
प्रतिष्ठितोयोऽद्य लभ्यते लोके ॥१७७॥

गुणपरवश इसी भेद वाद को लेकर देवपूजनादि कार्यों भी तारतम्य प्रतीत होने लगा है जो संसार में सर्वत्र प्रचलित है ॥ १७७ ॥

यद्दर्शनेन दैवी
कला विनाशं प्रयाति ते शूद्राः ।
नो देवपूजनार्हाः
कदापि धर्मेऽत्र तत्तदादेशात् ॥१७८॥

जिनके दर्शन मात्र से दैवी कला नष्ट होती है वे शूद्रादि अन्त्यज वर्ग शास्त्रों के आदेशानुसार देव मन्दिर में प्रविष्ट नहीं हो सकते हैं ॥ १७८ ॥

तेषांकृते समुक्तं
प्रधानरूपेण धार्मिकग्रन्थे ।
शिखरध्वजादिलिङ्ग-
प्रदर्शनं यत्समानमर्चायाः ॥१७९॥

उन अन्त्यजों के लिये शास्त्रों में मन्दिर का शिखर और गोपुर देखने का विधान है उनको इसी से भगवद्दर्शन जन्य फल प्राप्त हो जाता है ॥ १७९ ॥

यस्मिन्निबन्धभागे
शिवादिदेवार्चनाविधिः प्रोक्तः ।
तत्रैव तद्व्यवस्था
प्रदर्शिता या कदापि नोल्लङ्घ्या ॥१८०॥

जिस ग्रन्थ में देव पूजन का विधान लिखा है उसी में उसकी व्यवस्था भी लिखी है जिसका पालन करना प्रत्येक आस्तिक का काम है ॥ १८० ॥

उल्लङ्घ्य तद्व्यवस्थां
नवीनतर्कैर्यदीश्वरस्यार्चा ।

क्रियते फलं तदा किं
तथाविधार्चासमर्थनाल्लभ्यम् ॥१८१॥

यदि तर्क से उसका उल्लङ्घन करके ईश्वर की पूजा की जायगी तो उसका अन्त में फल क्या होगा ? देवत्व के अभाव में देवपूजन निष्फल है ॥१८१॥

तस्माद्विविच्य शास्त्रं
यथाविधानं तदाज्ञया कार्यम् ।
सर्वं भवे भवेद्य-
त्समादरेण प्रयोजनं सिद्धम् ॥१८२॥

इसीलिये शास्त्र के आदेशानुसार सब को काम करना चाहिये जिससे अनायास अपना प्रयोजन सिद्ध हो ॥ १८२ ॥

अतएव वासुदेव-
स्तथाविधं प्राह तासु गीतासु ।
शास्त्रानुवर्त्तनं य-
त्फलानुबन्धाय भूतले भूयात् ॥१८३॥

इसीलिये भगवान् श्री कृष्ण ने अपनी गीता में शास्त्र मानने पर जोर देकर तदनुकूल कार्य करने का सबको आदेश दिया है जो सर्व मान्य है ॥१८३॥

शास्त्रोक्तधर्मरक्षा-
मनुष्ययोनेरनुत्तमं कृत्यम् ।
नैतद्विधीयते चे-
ज्जनुस्तदेदं गवादिभिस्तुल्यम् ॥१८४॥

संसार में मनुष्य का कर्त्तव्य शास्त्रीय व्यवस्था का पालन करना है यदि यह न किया गया तो यह जन्म भी पशुओं के समान ही समझना पड़ेगा ॥ १८४ ॥

अस्मिन्मनुष्यदेहे
समस्तमेवास्ति यत्परैस्तुल्यम् ।

स्वीयन्तु धर्ममार्गा-

नुवर्त्तनं यन्नलभ्यतेऽन्येषु ॥१८५॥

इस मनुष्य शरीर में सब कुछ औरों के समान है नाक तोते की नाक से, आँखें खञ्जन की आंख से, दांत अनारदानों से, कमर शेर की कमर से, मुख चन्द्रमा से, बाहु युगल शुण्ड से, ऊरु युगल कदली स्तम्भ से, केश मयूर पिच्छ से उपमित किये जाते हैं। सब से अधिक इसमें यदि कुछ है तो वह धर्म का अनुगमन है जो अन्यत्र नहीं मिलता है॥ १८५॥

एतत्समस्तमात्म-

न्यलं विचार्य प्रयत्नतो धर्मे।

सर्वैर्मनः प्रदेयं

मदीयशिष्यैरदोममाभीष्टम् ॥१८६॥

इन सब बातों को विचार कर हमारे अनुगामियों को धर्म में मन लगाना चाहिये यही हमारी आन्तरिक इच्छा है॥ १८५॥

धर्मस्य मूलभूता

वर्णानामेव संस्थितिः सेयम्।

मोदादिह प्रदिष्टा

भवद्विधानां मया प्रमोदाय ॥१८७॥

सनातन धर्म की मूल भित्ति वर्ण व्यवस्था है जिसका वर्णन आप जैसे पुरुषों के लिये हमने किया है॥ १८७॥

यावद्भुवि प्रतिष्ठा-

मियं समेष्यत्यनन्तसम्पत्तिः।

तावन्न भारतीय-

व्यवस्थितो कोपि संशयः प्रायः ॥१८८॥

जब तक भारत में इस वर्ण व्यवस्था का समुचित रूप से रक्षण रहेगा तब तक भारतीयों की मर्यादा उन्नत बनी रहेगी॥ १८८॥

दुर्गस्य सार्गलेयं
निबद्धमूलस्य भारतीयस्य ।
भेत्तुं न शक्यते या
पर. सहस्रैर्विरोधिनां व्रातैः ॥१८६॥

भारत में हिन्दुओं की रक्षा करने वाला वर्ण व्यवस्था रूपी यह अभेद्य दुर्ग है जिसकी अर्गला को तोड़ने के लिये हजारों विधर्मी समर्थ नहीं हो सकते हैं ॥ १८९ ॥

एनां महेश्वरेण
प्रदत्तवीर्यां बलेन ये केचित् ।
कर्षन्ति तेपि सद्य.
पतन्त्यधर्मेण नष्टसर्वस्वाः ॥१६०॥

ईश्वर निर्मित इस दुर्ग की अर्गला को जो बलपूर्वक खींच कर तोड़ना चाहते हैं वे भी इसके प्रभाव से नष्ट होकर अपना अस्तित्व खोदते हैं ॥ १९० ॥

बौद्धैरियं प्रमादा–
दनन्तवीर्यैरलं समाकृष्टा ।
तानेव सन्निपात्य
प्रभुत्वमात्मीयमुन्नतं धत्ते ॥१६१॥

प्राचीन काल में अपने प्रमाद से बौद्धों ने इसको नष्ट करना चाहा परन्तु वे इसको न तोड़ कर आप ही भारत से उजड़ गये ॥ १९१ ॥

तेभ्यः परं यथाव–
त्प्रचण्डमोहंमदीयमाघातम् ।
आयातमात्मनेयं
विमर्दयामास मर्दने दक्षा ॥१६२॥

इसके अनन्तर यवनों ने तलवार के जोर से इसको नष्ट करना चाहा परन्तु वे भी इसके नष्ट करने में सफल मनोरथ नहीं हुए ॥ १९२ ॥

अद्यापि दिव्यवीर्या
समागतं धर्मविप्लवं सद्यः ।
विद्राव्य भारतीया-
न्विभूषयिष्यत्यनन्तसम्पद्भिः ॥१६३॥

वर्तमान समय में भी जो धर्म विप्लव उपस्थित हुआ है उसको जल्दी हटा कर यह फिर भारतीयों को समृद्ध करेगी ॥ १९३ ॥

सेयं भवद्भिरन्य-
द्विहायसर्वं ममाज्ञया शिष्यैः ।
यत्नेन रक्षणीया
सदेति सम्बोध्य मौनमयमागात् ॥१६४॥

इसको आप सब लोग मेरी आज्ञा से और सब काम छोड़ कर यत्न से सुरक्षित रखना इतना अपने शिष्यों के प्रति कहकर भगवान् समाधिस्थ हो गये ॥ १९४ ॥

अस्माभिरप्यमन्दं
समस्तमानन्दमद्भुतं प्राप्य ।
सानन्दमेष सर्गो
दिनान्तभागेऽद्य नीयते पूर्तिम् ॥१६५॥

इसलिये अब हम भी उसके वर्णन से अनन्त आनन्द पाकर दिनान्त भाग में इस सर्ग को यहीं समाप्त करते हैं ॥ १९५ ॥

इतिश्री सनाढ्यवंशोद्भव कविरत्नश्रीमदखिलानन्दशर्मप्रणीते
मतिलके जगद्गुरुश्रीचन्द्रदिग्विजये महाकाव्ये
वरणव्यवस्थानिरूपणं नाम षोडशः सर्गः



सप्तदशः सर्गः

भगवानेवमादिश्य निजशिष्यानुपस्थितान् ।
धर्मतत्त्वं पुनः प्राह समयोचितमादरात् ॥ १ ॥
यद्यदावश्यकं तत्तद्वेदशास्त्रानुमोदितम् ।
भवद्भ्यः कथितं येन भवतामुदयो भवेत् ॥ २ ॥
इदानीमुपकाराय लोकानां किञ्चिदुच्यते ।
रहस्यं सर्वशास्त्राणां हृदये यत्प्रतिष्ठितम् ॥ ३ ॥

पहिले तीन सर्गों में धर्म का मर्म कह कर प्रस्तुत सर्ग में भगवान् श्रीचन्द्र अपने शिष्यों को सम्बोधित करके समयोचित धर्म तत्व का उपदेश करते हैं। आप कहते हैं कि मैंने आप लोगों के कल्याणार्थ जो २ धर्मशास्त्रानुमोदित धर्म का तत्व या उसका उपदेश दे दिया अब समस्त जगत् के कल्याणार्थ जो कुछ मेरे हृदय में भाव हैं उनका शास्त्रानुमोदित रहस्य आप लोगों के प्रति कह रहा हूं ॥ १—३ ॥

उपास्यः सर्वभूतानामेकएव महेश्वरः ।
यश्चराचरमाविश्य कुरुते समयोचितम् ॥ ४ ॥
हृदये तमुमाकान्तं निवेश्य जगतां पतिम् ।
भवद्भिः क्रियतां सर्वैर्धर्ममार्गानुवर्तनम् ॥ ५ ॥
भारते धर्मरक्षार्थे ममेयं जन्म सम्प्रति ।
समभूदिति विज्ञेयं भवद्भिः परमार्थतः ॥६॥
दैवतः शिष्यताम्प्राप्तैर्भवद्भिरपि यत्नतः ।
सएव धर्मः संसेव्यो यदर्थोयं ममश्रमः ॥ ७ ॥
धर्मसेवा जातिसेवा देशसेवा ततःपरम् ।
सर्वापि भगवत्प्रीत्यै कर्तव्या तदनुग्रहात् ॥ ८ ॥

सर्वासां धर्मसेवानां सएव जगतां पतिः ।
फलप्रदः कर्मयोगमादिशत्युपकारकम् ॥ ६ ॥

सबके लिये उपास्य देव एक भगवान श्री शङ्कर हैं उनको हृदय में रखकर ही आप सब लोग धर्मप्रचार करें । मेरा यह जन्म भारत में धर्म रक्षा के लिये हुआ है दैवयोग से आप लोग मेरे शिष्यभाव को प्राप्त हुए हैं, इसलिये आपलोग भी यत्न से इसकी रक्षा करें । देश सेवा, जाति सेवा, धर्म सेवा यह तीनों धर्म के ही अङ्ग हैं इनका भगवत्प्रीत्यर्थ पालन करना चाहिये । इन सब सेवाओं का फल एक भगवान् शङ्कर ही देते हैं ॥ ४—९ ॥

सेवा न सुलभा लोके दुर्लभा भगवद्गता ।
यामुपाश्रित्य मुनिभिर्लभ्यते भगवत्पदम् ॥१०॥
सर्वत्रावस्थितं मत्वा भगवन्तं महेश्वरम् ।
यः सेवते जगत्सर्वं सेवकः स निगद्यते ॥११॥
सेवाधर्मप्रतिष्ठायां योगिनोपि विचक्षणाः ।
मुह्यन्ति का कथान्येषां विवेकरहितात्मनाम् ॥१२॥
दम्भमास्थाय ये सेवावलम्बेन मनोगताम् ।
स्वार्थसिद्धिं समीहन्ते वञ्चकास्ते न सेवकाः ॥१३॥
अद्यत्वे बहवो लोकाः सेवाधर्मावलम्बिनः ।
वञ्चयन्ति नरानुग्रकर्माणः स्वार्थसाधकाः ॥१४॥
न तेषां सेवया कोपि देशस्यार्थः प्रसाध्यते ।
न जातेर्नैव धर्मस्य यतस्ते सर्ववञ्चकाः ॥१५॥
हारीतादिमुनिश्रेष्ठदर्शिताध्वा मनोहरः ।
पुरतो भवतामस्ति भवदाह्वानतत्परः ॥१६॥
यथास्मत्पूर्वजैः सेवा मुनिभिः परिदर्शिता ।
भवद्भिरपि यत्नेन सा तथैव विधीयताम् ॥१७॥

संसार में सेवा सुलभ नहीं है उसमें भी भगवत्सेवा अति कठिन है जिससे प्रसन्न होकर भगवान् अपना सायुज्य तक देते हैं। सर्वत्र भगवान् का निवास समझ कर जो जगत् की सेवा करता है उसको सेवक कहते हैं सेवा धर्म के पालन करने में योगी तक चूक जाते हैं, औरों की तो बात ही क्या? स्वार्थवश दम्भ से जो सेवा में प्रवृत्त होते हैं, वे सेवक नहीं वञ्चक हैं। आज कल ऐसे लोग बहुत हैं जो सेवा के बहाने से अपना काम करते हैं, ऐसे मनुष्यों से न देश की सेवा होती है और न धर्म की ही सेवा होती है वे देश और धर्म दोनों को ठगते हैं हारीत आदि मुनियों ने जो सेवा का मार्ग चलाया है वह आपको बुला रहा है और आपके समक्ष है। हमारे पूर्वजों ने जिस प्रकार धर्म की सेवा की है, उसी प्रकार आप भी इस समय अपनी सेवा प्रस्तुत करें॥ १०—१७॥

निरस्य भोगानादत्तं यदर्थं साधुजीवनम्।
तदेव मन्निदेशेन क्रियतां समयोचितम्॥१८॥
जलाञ्जलिमुदस्याशु विषयेभ्यः प्रयत्नतः।
अवाप्तं यत्कृते जन्म तदेवाशु विधीयताम्॥१९॥
समयः समुपायातो धर्मरक्षापरीक्षणे।
कार्यक्षेत्रमतः प्राप्तं भवद्भिरिदमुत्तमम्॥२०॥

आप लोगों ने मेरे कथन से भोगों पर लात मार कर जो इस मुनिवेश को धारण किया है वह देश और धर्म की सेवा के लिये ही किया है इस लिये अब सांसारिक सुखों को जलाञ्जलि देकर मेरे आदेश और सन्देश का पालन करो ये ही मेरा आप लोगों के लिये उपदेश है। अब धर्म रक्षा के लिये परीक्षा का समय आ गया है उठो!! और अवसर प्राप्त कार्य क्षेत्र में उतर कर वीरोचित कार्य करते हुये देश और जाति का मुख उज्ज्वल करो॥ १८—२०॥

[सन्देश]

(निजोपदेशैरधुना जनताहृदयेशयम्।
क्षाल्यतामाशु वैक्लव्यं दुर्दैवादुपसङ्गतम्॥२१॥
स्वसमानबला वीरास्त्यागिनो धर्मरक्षकाः।
निजोपदेशैर्विमलैरुत्पाद्यन्तां पदे पदे॥२३॥

वीरेषु वीरपुत्रेषु शैथिल्यमुपसङ्गतः ।
शौर्याग्निरुच्छिन्नः सद्यो वीज्यतां वाक्यमारुतैः ॥२३॥
भारते सर्वभागेषु ग्रामं ग्रामं मुहुर्मुहुः ।
एकतावर्धको भावः शङ्खनादेन पूर्यताम् ॥२४॥
मृतप्रायेषु लोकेषु महोद्योगप्रवर्तनैः ।
निजोपदेशमन्त्रेण स्थाप्यतां नवजीवनम् ॥२५॥
महत्वं धर्ममार्गस्य निबोध्य मनुजव्रजे ।
पाठ्यतां देशरक्षायै शौर्यपाठः क्रमागतः ॥२६॥
धर्मरक्षाकृते सर्वैर्निर्भयैरधुना हठात् ।
मृत्युरालिङ्ग्यतां प्रासो हसद्भिर्जीवनोपमः ॥२७॥
बलिवेदीमुपागत्य सत्वरं धर्मविद्विषाम् ।
शिरांसि भुवि सम्पात्य वीरोचितमुपास्यताम् ॥२८॥
धर्मयुद्धे गतासूनां वीराणां तर्पणोचितम् ।
रक्ततोयमुपादाय निवापः सम्प्रदीयताम् ॥२९॥
यैर्हतास्ते महात्मानो धर्मयुद्धे दुरात्मभिः ।
तच्छिरोमालया तेषां माल्यभूषा प्रवर्त्यताम् ॥३०॥
मृधे मृतानां वीराणां रक्तचन्दनलेपनैः ।
तिलकीक्रियतां सद्यो भालमाला मनस्विनाम् ॥३१॥
मातरो जगतां लोके बलादाकृष्टमेखलाः ।
यवनासुरमुण्डौघैर्विधीयन्तां समेखलाः ॥३२॥

[अब यहां से आपका सन्देश आरम्भ होता है] आप कहते हैं कि हे मेरे
पो !! अब तुम बढ़ो !! अपने सदुपदेशों से जनता के हृदय पर विद्यमान
: को छुड़ालो, अपने समान वीर त्यागी धर्मरक्षक पुरुषों को देश देश में
र जगा दो, वीर और वीर पुत्रों में शिथिलता को प्राप्त हुये शौर्य रूप अग्नि

को उपदेश रूपी वायु से जगाओ, भारत के कोने कोने में जाकर एकता का शङ्ख नाद फूंक दो, मृतप्राय मनुष्यों को देश रक्षा के लिये शौर्य का पाठ पढ़ाओ, धर्म रक्षा के लिये मात मृत्यु को निर्भय होकर बुलाओ और हंसते हंसते उसका आलिङ्गन करो, बलिवेदी पर आकर अपने धर्म की निन्दा करने वालों की गर्दन हलकी करदो, धर्म युद्ध में मृत अपने पूर्वजों की आत्माओं को रक्त जल से जलाञ्जलि दो, जिन्होंने उनको मारा है उनकी मुण्ड-माला से माला बनाकर उनको पहिना दो धर्म युद्ध में मरे हुये वीरों के मस्तक पर रक्त चन्दन लगाकर उनका तिलक निकालो, जिन हमारी माताओं की मेखलायें विधर्मी उतार कर ले गये हैं उनके मुण्डों की मेखला बनाकर उस स्थल पर पहिना दो। ॥ २१ ३२ ॥

आक्रान्ता यवनैरेषा मातृभूमिः पदे पदे ।
विरौति करुणं दृष्ट्वा भवतां मुखमण्डलम् ॥३३॥
दीना विवस्त्रा मलिना दुर्बलाङ्गी नतानना ।
निजोद्धाराय परितः प्रेक्षते भूरियं सुतान् ॥३४॥
समुद्रवसना सेयं पर्वतस्तनमण्डला ।
मातृभूर्भवतामद्य यवनैरुपभुज्यते ॥३५॥
किमतः परमस्माकं दौर्भाग्यमुपवीक्ष्यते ।
मातृभूर्यदियं पुत्रैरस्माभिः परसङ्गता ॥३६॥
बलादाकृष्य सुभगां जाराइव पदे पदे ।
भुञ्जते यवनाः पापाः प्रत्यहं यौवनार्थिनः ॥३७॥
परःशतेषु पुत्रेषु बलवीर्यादिशालिषु ।
विद्यमानेष्वपि बलाद्यदियं भुज्यते परैः ॥३८॥
धिगस्माकं बलं शौर्यं धिग्जन्म धिगिदं धनम् ।
धिगिदं कुलमुद्भूता वयं यत्र नपुंसकाः ॥३९॥
शूराः श्रद्धालवो वीरा मच्छिष्याः पदे पदे ।
सद्यो मदनुरोधेन भवन्तु भुवि सङ्गताः ॥४०॥

पद २ पर यवनों से आक्रान्त यह हमारी मातृभूमि आपकी तरफ देखकर रोदन कर रही है इस प्रकार से दीन हीन मलिन होकर अपने उद्धार के लिये अपने पुत्रों की ओर देख रही है समुद्रवसना पर्वतकुचा यह आपकी मातृभूमि आज यवनों के अधिकार में पहुंच गई है, इससे अधिक लज्जा की क्या बात हो सकती है कि हम जैसे पुत्रों के होते हुए भी अभी इस पर यवनों का अधिकार विद्यमान है, इस हमारी मातृभूमि को यौवनार्थी जार यवन पद २ पर पलासे खींच कर इसका उपभोग करते हैं यदि बल वीर्यशाली हम जैसे पुत्रों के होने पर भी इस हमारी माता पर यवनों का अधिकार है तो हमारे बलको हमारे धन को हमारे जन्म और कुल तक को बार २ धिक्कार है जिसमें हम जैसे नपुंसक उत्पन्न हुए हैं, इसलिये हे श्रद्धालु वीरशिष्यो !! उठो !! मेरे कथन से सर्वत्र सङ्गठित होकर अपने २ मण्डल नियत करो ॥ ३३—४० ॥

मण्डलानि ममाभीष्टसिद्ध्ये निजयत्नत. ।
संस्थाप्य भुवनोद्धारः क्रियतां सार्वदेशिक. ॥४१॥
द्विजरक्तनदीपङ्कचितेष्टकसमुच्चयैः ।
निर्मितानि निपात्यन्तां गोपुराणि सुरद्विषाम् ॥४२॥
मन्दिराणि निवेश्यन्तां तत्र तत्र ममाज्ञया ।
स्थाप्यन्तां तेषु ते वेदा येषु धर्मव्यवस्थितिः ॥४३॥
दौर्भाग्यतः प्रवृत्तोयं शैववैष्णवसङ्गत. ।
कलहो नीयतां नाशं देवपूजा प्रवर्त्यताम् ॥४४॥
बलाद्या यवनैर्नीता ललनाः कुलसम्भवाः ।
सद्य. समुद्धृतिस्तासां बलेन क्रियतां जनैः ॥४५॥
वेदवेदाङ्गरक्षार्थं विद्यालयनिवेशनम् ।
सर्वत्रादिश्यतां येन वेदरक्षा पुनर्भवेत् ॥४६॥
ब्रह्मचर्यमुपाश्रित्य बलवीर्यपराक्रमाः ।
शरीरेषु निवेश्यन्तामात्मरक्षणहेतवे ॥४७॥

हारीतमुनिवत्सर्वैः सर्वत्र समदर्शिभिः ।
सनत्कुमारसन्दिष्टो मार्गएषः प्रवर्त्यताम् ॥४८॥

अपने २ यत्र से मण्डल नियत करके मेरी प्रसन्नता के लिये सार्वदैशिक भुवनका उद्धार करो ॥ हमारे रामकृष्णादि के मन्दिरों को गिराकर जिन यवनों ने द्विजों के रुधिर कर्दम से ईंटें चिन २ कर अपने २ उच्चगोपुर बनाये हैं उनकी तरफ भी जरा ध्यान दो, उन स्थानों पर अब दुबारा अपने मन्दिर बना कर उनमें अपने धर्मरक्षक वेदोंका स्थापन करो, दुर्भाग्य से भारत में प्रवृत्त आपस का शैव वैष्णव कलह मिटाकर समान भाव से पञ्चदेवोपासना का प्रचार करो, जिन हमारी कुलाङ्गनाओं को बल पूर्वक हमसे छीनकर यवन ले गए हैं उनका पुनरुद्धार करो, वेद और वेदाङ्गों की रक्षा करने के लिये विद्यालयों का स्थापन करो, ब्रह्मचर्य धारण कर अपनी रक्षा के लिये अपने २ शरीरों में वीर्य का रक्षण करो हारीत मुनि की तरह समान भावसे सर्वत्र एक ब्रह्म की सत्ता देखकर सनकादि मुनियों द्वारा प्रवृत्त उदासीन धर्मको भारत में स्थापन करो ॥४१—४८॥

प्रवृत्तिमार्गमेकान्तं विहाय परिपन्थिनम् ।
निवृत्तिमार्गमेवात्र भजध्वमुपसङ्गताः ॥४९॥
प्रवृत्तिमार्गानुष्ठानक्षेत्रं गार्हस्थ्यमुच्यते ।
निवृत्तिमार्गानुष्ठानक्षेत्रमस्माकमागमः ॥५०॥
प्रवृत्तिमार्गसेवायाः फलं स्वर्गादिसद्गतिः ।
निवृत्तिमार्गसेवायाः फलं मोक्ष उदाहृतः ॥५१॥
पान्थो निवृत्तिमार्गस्य ब्रह्मनिष्ठो नरो भवेत् ।
प्रवृत्तिमार्गपान्थस्तु लोकनिष्ठः स्वतो मतः ॥५२॥
सनादयो मुनिवराः सृष्टेरादौ विधेः सुताः ।
निवृत्तिमार्गमभजन्विहाय गृहबन्धनम् ॥५३॥
परःसहस्रा यच्छिष्याः शबलाश्वादयो मताः ।
नारदः सोप्यभूल्लोके निवृत्तावेव निश्चलः ॥५४॥

मृग्वादिभिर्मुनिवरैः प्रदिष्टोऽस्मत्सहोदरैः ।
प्रवृत्तिमार्गो ववृधे लोकानामनुरागतः ॥५५॥
मार्गाविमौ विधेः पुत्रैराश्रितौ सर्जनक्रमे ।
यावद्य सर्वलोकेषु भातौ विस्तृतिमागतौ ॥५६॥
पाखण्डिभिरिमौ दैवदुर्विपाकेन नाशितौ ।
यदुद्धारार्य विदुषामुदय. समपेक्ष्यते ॥५७॥
धर्मस्कन्धास्त्रयो लोके यत्नतो विश्वरक्षकाः ।
रक्षणीयाः प्रदिपदं यथा लोकः सुखी भवेत् ॥५८॥
गीतायां यत्समादिष्टं वासुदेवेन धार्मिकम् ।
तत्वं तदेव संगृह्य लोकरक्षा विधीयताम् ॥५९॥
अनन्यभावतो ब्रह्म समुपास्यं सनातनम् ।
भेदाः पञ्चापि यस्यैते मायाशवलितात्मन. ॥६०॥

आत्मा की उन्नति में रुकावट डालने वाले प्रवृत्ति मार्ग को हटाकर निवृत्ति मार्ग के पथिक बना । प्रवृत्ति मार्ग का अनुष्ठान क्षेत्र गृहस्थाश्रम है और निवृत्ति मार्ग का अनुष्ठान क्षेत्र उदासीन धर्म है। प्रवृत्ति मार्ग की सेवा का फल स्वर्ग है और निवृत्ति मार्ग की सेवा का फल मोक्ष है, प्रवृत्ति मार्ग का पथिक लोकनिष्ठ होता है और निवृत्ति मार्ग का पथिक ब्रह्मनिष्ठ होता है सृष्टि के आदि में सन आदिक ब्रह्मा के सात पुत्र प्रवृत्ति मार्ग को छोड़कर निवृत्ति मार्ग के अनुगामी हुए । शबलाश्व हर्यश्व आदि दश हजार जिनके शिष्य थे वे नारद भी निवृत्ति मार्ग पर ही चले । हमारे सहोदर भृगु आदि ऋषियों ने लोक रक्षा के लिये इस प्रवृत्ति मार्ग का अनुगमन किया था । यह दोनों मार्ग सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा के पुत्रों ने चलाये थे जो आज सर्वत्र फैले हुये हैं । पाखण्डी मनुष्यों ने इन दोनों मार्गों को आज कल नष्ट किया है इस लिये इन दोनों मार्गों के उद्धार के लिये विद्वानों का सहयोग अपेक्षित है । यज्ञ अध्ययन दान यह तीन धर्म के स्तम्भ हैं लोक रक्षा के लिये इन तीनों की रक्षा होनी चाहिये । गीता में भगवान् कृष्ण ने जो धर्म का तत्व कहा है उसी के अनुसार लोक रक्षा करनी चाहिये । अनन्य भाव से एक सनातन ब्रह्म की उपासना करनी चाहिये

माया शवलित होने पर जिसके ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश, शक्ति, सूर्य आदि भेद हो गये हैं॥ ४९—६० ॥

अनन्यता ब्रह्मगता न भेदमुपसङ्गता ।
वरीवर्ति यतस्तासु तदेवैकं प्रतिष्ठितम् ॥६१॥
मूढैरनन्यताशब्दः स्वेष्टवस्तुषु कल्पितः ।
अविज्ञाय तदीयार्थं स्वार्थरक्षणहेतवे ॥६२॥
ब्रह्माभिन्नं जगदिदं तदुद्भूतं तदाश्रितम् ।
अनन्यपरतन्त्रत्वादनन्यत्वेन कथ्यते ॥६३॥
तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥६४॥
सदेकं वस्तु विबुधैर्बहुधा गीयते जनैः ।
तदेवाग्निरिति स्पष्टमुपदिष्टे मनो स्थिरम् ॥६५॥
पञ्चानामपि तत्वानां ब्रह्माभिन्नतया स्थितिः ।
वेदादिसत्यशास्त्रेषु लभ्यते वेदकोविदैः ॥६६॥
स्मार्तमध्वानमास्थाय रविशक्तिगणाधिपाः ।
शिवविष्णू तदंशत्वादनन्यत्वमुपागतौ ॥६७॥
मायाशवलमूर्तीनां सर्वासामपि पूजनात् ।
ब्रह्मैव पूज्यते लोकैरेकं सर्वप्रतिष्ठितम् ॥६८॥
आधारभेदतस्तोये यथासूर्यः प्रतिष्ठितः ।
तथैकं ब्रह्म सर्वत्र मूर्तिभेदैरवस्थितम् ॥६९॥
अतो न भेदः कुत्रापि देवपूजाविनिर्णये ।
मतं ममेदमेकान्तमनुष्ठेयं मदाश्रितैः ॥७०॥

अनन्यता ब्रह्मगत है भेद वाद में उसका अस्तित्व नहीं है क्योंकि उसके भेदों में अस्तित्व एक ब्रह्म का ही है मूढ़ोंने इस अनन्यता शब्द का अर्थ न समझ कर अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये अपने २ इष्ट पदार्थों में अनन्यता का भाव

स्थापित किया है जो उनमें घटता नहीं है। यह जगत् ब्रह्म से अभिन्न है इसका उद्भव स्थान और अधिष्ठान एक ब्रह्म ही ह वह ब्रह्म अपने कार्य में अनन्य परतन्त्र होने के कारण अनन्य शब्द से कहा जाता है। अग्नि वायु आदित्य जल चन्द्रमा शुक्र अथवा ब्रह्म पदवाच्य समस्त प्रकृति में उस एक ब्रह्म की ही कला अवस्थित है। सत् पद वाच्य ब्रह्म एक है उसी को कवियों ने-पूर्व कथित मन्त्रात्मक श्लोक में अग्नि आदि अनेक भेदों से गाया है वेदों में पृथिवी आदि पाचों तत्वों की ब्रह्म से अभिन्न स्थिति बताई है जिसको वेदज्ञ जानते हैं स्मार्त सम्प्रदाय में सूर्य आदि पाचों देवता ब्रह्मांश होने के कारण ब्रह्म के अनन्य रूप में ही पूजित किये जाते हैं माया शबल सभी मूर्तियों के पूजन से वह एक ब्रह्म ही पूजा जाता है जो सबमें विद्यमान है आधार भेद से जिस प्रकार एक ही सूर्य छोटा बड़ा प्रतीत होता है उसी प्रकार भिन्न भिन्न मूर्तियों में अवस्थित एक ही ब्रह्म अनेक होकर भासता है। इसी लिये किसी देवता में पूजन के समय भेद नहीं मानना चाहिये यही मेरा मत है मेरे शिष्यों को इसी पर चलना चाहिये ॥ ६१—७० ॥

एवमादिश्य भगवान्निजशिष्येषु हृद्गतम् ।
भावमात्मीयमभजत्समाधिमुपसङ्गताम् ॥७१॥
सन्देशमिममाकर्ण्य भक्तगिर्यादयो मुने. ।
शिष्याः सर्वेपि कर्तव्यसमारूढास्तदाऽभवन् ॥७२॥
हृदयादुद्गतान्यस्य शिक्षाबीजानि दैवत. ।
शिष्यभूमिषु सङ्गत्य नवाङ्कुरमदु. स्फुटम् ॥७३॥
द्विपत्रितानि तान्येव समयेन यथोत्तरम् ।
पुष्पितानि मुनिव्राते फलितानि जगत्त्रये ॥७४॥
धर्मप्रचारकैरस्य शिष्यैर्भारतभूमिषु ।
भ्रामं भ्रामं तदाकारि यदादिष्टं मुनीश्वरैः ॥७५॥
सन्देशमेवमादिश्य गुरुः श्रीनगरे शिवम् ।
चारठं ग्राममासाद्य विशश्राम वनोदरे ॥७६॥

तस्मादुत्थाय भगवान्सहशिष्यैरुपान्तगम् ।
चम्बानगरमागत्य गुरुदत्तं व्यसर्जयत् ॥७७॥
गुरुदत्तो मुनेः शिष्यः समेत्य भुवि कीर्तिदम् ।
शिवं कीर्तिपुरं गत्वा तपश्चर्यापरोऽभवत् ॥७८॥
तस्मादाकर्ण्य वृत्तान्तं मुनेरस्य पुरातनः ।
ब्रह्मकेतुस्तदेवायाच्चम्बापुरमुपश्रुतम् ॥७९॥
भगवत्पद्मासाद्य तत्र यत्नेन वीक्षितम् ।
त्रयोदशे गतं सर्गे वृत्तं तद्बहुसुन्दरम् ॥८०॥

इस प्रकार अपने हृद्गत भावों को शिष्यों के प्रति कहकर भगवान् समाधिस्थ हो गये। आपका सन्देश पाकर भक्तगिरि आदि शिष्य भी अपने अपने कर्तव्य पर आरूढ़ होगये। भगवान् के मुख से निकले हुये शिक्षा रूप बीज शिष्य रूप भूमि में गिर कर उगने लगे। वे ही समय पाकर संसार में द्विपत्रित होकर फूलने और फलने लगे, धर्म प्रचारक इनके शिष्यों ने भारत में सर्वत्र घूमकर उस समय गुरु के कथन का पालन किया श्रीनगर में इस सन्देश को देकर भगवान् वारठग्राम पहुंच कर विश्राम करने लगे वहा से चलकर चम्बा पहुँचे। यहा आकर आपने गुरुदत्त को वापिस भेजा। गुरुदत्त गुरु की आज्ञा से कीर्तिपुर जाकर तपश्चर्या में लग गये। गुरुदत्त से खबर पाकर, आपका पुराना शिष्य ब्रह्मकेतु आपको ढूढते ढूढते चम्बा पहुंच गया। वहा जाकर उसने जो शिला तैरने का दृश्य देखा वह तेरहवें सर्ग में लिखा जा चुका है॥ ७१ ८०॥

[युग्मम्]

गुरोराज्ञां महामान्यां मालामिव गुणोज्वलाम् ।
शिरस्याधाय मद्भक्त्या यदकारि शिवं कृतम् ॥८१॥
बीजरूपेण तच्छिष्यैस्तदप्यस्माभिरादरात् ।
पूर्वमंत्र ममादिष्टं गतसर्गेषु विस्तरात् ॥८२॥
एकान्तग्राममन्विच्छन्यदाह गुरुरादरात् ।
ब्रह्मकेतुस्तदशृणोत्सर्वं नान्यो जनस्तदा ॥८३॥

ब्रह्मभूयं गते देवे ध्यानयोगेन दुःखितः ।
ब्रह्मकेतुः पुनरगात्सद्यः श्रीनगरं शिवम् ॥८४॥
तत्र सर्वान्गुरोः शिष्यान्समाहूय स धैर्यतः ।
प्रोवाच गुरुसन्दिष्टं श्रूयतामद्य सज्जनैः ॥८५॥
विहाय सर्वान्नः शिष्यानत्रलोके निजेच्छया ।
गुरुरस्माकमगमद्द्वैपायनमुनेर्गतिम् ॥८६॥
ततः पूर्वं स भगवांल्लोकानुग्रहवाञ्छया ।
मामाह नः त्वया कार्यो हठः कोपि ममाज्ञया ॥८७॥
मदादेशेन मद्यस्त्वमितो गत्वा ममान्तिमम् ।
सन्देशमात्मतुल्येषु मच्छिष्येषु निवेदय ॥८८॥
गुरोरिदं वचः श्रुत्वा समायातोस्मि दुःखितः ।
श्रूयतां मन्मुखादद्य गुरुभिर्यदुदीरितम् ॥८९॥

गुरु की आज्ञा को माला की तरह शिर पर रखकर जो उनके शिष्यों ने पञ्चायतन रूपी कार्य का आरम्भ किया उसका भी बीज रूप से गत सर्गों में वर्णन हो चुका है एकान्तवास की इच्छा से उस समय गुरु ने जो कहा वह केवल ब्रह्मकेतु ने ही सुना । भगवान् के अदृश्य होने पर दुःखित ब्रह्मकेतु वहां से चल कर श्रीनगर पहुँचे । वहा पर अपने सब गुरु भाइयों को एकत्र कर उसने कहा कि हमारे दुर्भाग्य से भगवान् व्यास मुनि की तरह अज्ञात काल के लिये अदृश्य हो गये है । अदृश्य होने के पूर्व लोकानुग्रहकाक्षा से उन्होंने मेरे से कहा कि अब तुम मेरी आज्ञा से पहिले की तरह कोई हठ मत करना । मेरी आज्ञा से तुम श्रीनगर जाकर मेरी आत्मा के तुल्य मेरे प्यारे शिष्यों को मेरा सन्देश सुनाना । भगवान् की उस आज्ञा से दुखी होकर अब मैं यहां आया हूं । तुम सब लोग मेरे मुख से उस गुरु के अन्तिम सन्देश को सुनो ॥ ८१—८९ ॥

[अन्तिम सन्देश]

अवतीर्य महामान्यैर्धर्मक्षेत्रे मदाज्ञया ।
पदं पश्चान्न दातव्यमग्रेगन्तव्यमादरात् ॥९०॥

भगवत्यम्बिकाधीशे दृढं विश्वस्य धैर्यतः।
सत्यमेवाग्रतः कृत्वा मदादिष्टं विधीयताम् ॥९१॥
जीवनं निजमत्यन्तं तपोमयमहर्निशम्।
सम्पादनीयं यत्नेन यथा लोकः सुखी भवेत् ॥९२॥
वासनासु दुरन्तासु निपत्य न भवादृशैः।
त्यागादर्शः क्रमप्राप्तो हातव्यः सर्वभूतिदः ॥९३॥
स्वातन्त्र्यमात्मनः प्राप्तुं यत्नः कार्यः पदे पदे।
यथा निर्बन्धनमिदं जीवनं भवतां भवेत् ॥९४॥
स्वयं प्रकाशमभ्येत्य प्रयत्नेन मदाज्ञया।
घोरान्धकारपतिताः समुद्धार्याः कलौ जनाः ॥९५॥
अविनाशिमुनेर्लक्ष्यं जगतामुपकारकम्।
न विस्मर्तव्यमायातप्रसङ्गेषु समागतम् ॥९६॥
मनसा कर्मणा वाचा तदुद्धाराय यत्नतः।
कर्तव्यबुध्या कर्तव्यं सर्वमेव यथोचितम् ॥९७॥
अहम्भावेन लोकेऽत्र फलकामनयापि वा।
कर्तव्यपद्धतिर्नैव दूषणीया मदाज्ञया ॥९८॥
योगक्रियामनुगतः शिक्षणस्रोत आदरात्।
न शोषणीयः केनापि वर्धनीयो यथाक्रमम् ॥९९॥
अयमेव ममादेशो जगतामुपकारकः।
न विस्मर्तव्य इत्येव ममान्तिममुदीरितम् ॥१००॥

इतना कह कर यज्ञकेतु ने भगवान् का [अन्तिम सन्देश] सुनाया। जिसका उल्लेख इस प्रकार है। मेरे प्रिय शिष्यो !! धर्म क्षेत्र में उतर कर पीछे कदम न हटाना, भगवान् शङ्कर में अचल विश्वास रख कर संसार में सब काम सचाई सामने रख कर करना, अपना जीवन संसार में तपोमय बनाना, लोकवासनाओं की दासता में पड़कर त्याग के उस आदर्श को कलङ्कित न करना। आत्मा की

स्वतन्त्रता के लिये यथा शक्ति प्रयत्न करना स्वयं प्रकाश में पहुंच कर अन्य मनुष्यों को अन्धकार से बचाना गुरु अविनाशी के पवित्र लक्ष्य को कदापि न भूलना और मन वाणी और कर्म से उसके उद्धार के लिये प्रयत्न करना अहङ्कार से अथवा फलवासना से कर्त्तव्य की पवित्र पद्धति को दूषित मत करना, योग क्रिया का शिक्षणस्रोत सर्वदा जारी रखना, और इन हमारे उपदेशों को कभी नहीं भुलाना [यही भगवान् का अन्तिम सन्देश है] ॥ ९०—१०० ॥

एवमादिश्य स तदा गुरुप्रोक्तमनुक्रमात् ।
मौनमेवागमत्सद्यो ब्रह्मकेतुः सभास्थितः ॥१०१॥
तस्मिन्मौनमुपायाते ब्रह्मकेतौ गुरोः पदम् ।
स्मरन्तो मनसा तस्य प्रणेमुः पदपङ्कजम् ॥१०२॥
अन्तिमामस्य वदनाद्गुरोराज्ञां निशम्य ते ।
समयोचितकार्याणि चक्रुरत्यन्तमादृताः ॥१०३॥
तैर्यथा यत्कृतं तत्तद्विस्तरेण यथाक्रमम् ।
पश्यन्तु मुनयः सर्गे मया निर्दिष्टमग्रिमे ॥१०४॥
एतावदत्र निर्दिश्य मुनेश्चरितमुत्तमम् ।
आह्निकोयं मया सर्गः प्रसङ्गेन समाप्यते ॥१०५॥

इस प्रकार सब शिष्यों के समक्ष भगवान् का अन्तिम सन्देश सुनाकर ब्रह्मकेतु मौन हो गया उसके मौन होने पर भगवान के सब शिष्यों ने अपने गुरुदेव का स्मरण कर उनके श्री चरणों में श्रद्धाञ्जलि अर्पित की और गुरुजी की अन्तिम आज्ञा सुनकर बड़े आदर से समयोचित कार्यों में वे सब प्रवृत्त हुए। उन्होंने जिस प्रकार जो काम किया उसका वर्णन अगले सर्ग में देखिये इस सर्ग में इतना ही भगवान् का चरित्र लिखकर यह [आह्निक] सर्ग अब समाप्त किया जाता है। [अन्हा निर्वृत्त सर्ग आह्निकः] ॥ १०१— १०५ ॥

इतिश्री सनाढ्यवंशोद्भव कविवर श्रीमदखिलानन्दशर्मप्रणीते
सतिलक जगद्गुरुश्रीचन्द्रदेवदिग्विजये महाकाव्ये
सन्देशकथन नाम सप्तदशः सर्गः

अष्टादशः सर्गः

अथ प्रयाते विलयं मुनीश्वरे
जगद्गुरौ शोकमहार्णवे द्रुतम् ।
ममज्ज सर्वं जगदेव निश्चला-
मलं प्रपेदे मथिताब्धिमन्दताम् ॥ १ ॥

जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के अचल समाधिस्थ होनेके अनन्तर यह प्रतीयमान समस्त जगत् उस अवस्था में पहुंचा जिसमें मन्थन के अनन्तर चौदह रत्नों के निकलने के बाद निस्तरङ्ग समुद्र पहुंचा था ॥ १ ॥

यथा यथा तद्विलयानुगा कथा
विवेश भूतानि जवेन गत्वरी
तथा तथा भारतभूमिमण्डलं
बभूव मन्ये गतसूर्यमण्डलम् ॥ २ ॥

जैसे २ यह चर्चा बड़े वेग के साथ समस्त भुवनों में फैलती गई वैसे २ समस्त भारत मण्डल अन्धकार से आक्रान्त होता गया ॥ २ ॥

कथं प्रयातः स विहाय सद्गुरु-
र्निजोपदेशोद्गतनव्यजीवनाम् ।
निजालयं शिष्यपरम्परामिमा-
मितीव चुक्रोश तदास्य मण्डली ॥ ३ ॥

अपने सदुपदेशों से हमको नवीन जीवन की ओर लगाकर हमारे गुरुदेव हमको अकेला छोड़कर कैसे अपनी जीवन लीला का संवरण कर चुके यह सोच कर बार २ आपकी मण्डली रुदन करने लगी ॥ ३ ॥

निरस्तनिद्रं विगतप्रसाधनं
विसृष्टनानाविधयोगसाधनम् ।

बभूव सर्वं जगदेव मन्मते
गुरोर्वियोगे बत को न दूयते ॥ ४ ॥

आपके वियोग में यह समस्त जगत् निद्रा रहित अलङ्कार शून्य नष्ट योग-साधन होकर ऐसा स्तब्ध हुआ जैसा पहिले कभी नहीं हुआ था। बात भी ठीक है। गुरु के वियोग में कौन सज्जन दुखी नहीं होता है॥ ४॥

दशामिमामत्र विलोक्य तादृशीं
मुनेर्वियोगेन विदीर्णमानसः।
विहस्य किञ्चिन्निजगाद विस्मितः
स बालहासो निजमण्डलाधिपान् ॥ ५ ॥

अपने गुरु भाइयों की यह अवस्था देखकर गुरुवियोगदून मानस बालहास मण्डलाध्यक्षों को लक्ष्य में रखकर कहने लगा ॥ ५ ॥

अभूतपूर्वं यदभूदिह प्रभो-
रनुज्ञया सर्वमिदं यथोत्तरम्।
विचार्य पश्यन्तु भवन्तएव ते
हृदन्तरे विस्मयकारि वर्तनम् ॥ ६ ॥

यह सब अभूतपूर्व अघटित घटना भगवान् की इच्छा से उपस्थित हुई है इस बात को आप लोग भले प्रकार अपने हृदयों में विचार कर देखें ॥ ६ ॥

क भारतीयोद्धरणक्रियाक्रमः
क सद्गुरोरत्र भवे पदार्पणम्।
क तद्वियोगोद्य जवादुपागतः
समस्तमेतच्चरितं जगद्गुरोः ॥ ७ ॥

कहां भारतीय जनों के उद्धार का कार्यक्रम? कहां जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का इस भारत भूमि में अवतार? कहां आज उनका यह अचानक वियोग? यह सब भगवान् की माया का विलास है ॥ ७ ॥

परं मुनेरेव यदृच्छयाऽऽगतं
समस्तमेतद्यदि मन्यते तदा।

न शोकलेशः कथमप्युपासितुं-
क्षमो गुरूणामनुशासने रतैः ॥ ८॥

परन्तु यह सब कार्य भगवान् की इच्छा से यदि आप हुआ मानते हैं ? तो इस समय शोक करना व्यर्थ है क्योंकि समयोचित गुरु की आज्ञा पालन करने का समय आगया है ॥ ८॥

प्रियं गुरोस्तस्य यदीह काम्यते
निजप्रयत्नेन तदास्य यत्प्रियम् ।
तदेव कार्यं भुवने यथा गुरुः
प्रसन्नचित्तः पुनरप्यवातरेत् ॥ ९ ॥

यदि आप गुरुजी का प्रिय करना चाहते हैं तो अपने २ प्रयत्नसे उनके अभीष्ट कार्यों का सम्पादन कीजिये जिससे प्रसन्न होकर वे फिर आकर दर्शन दें ॥ ९ ॥

उवाच कश्चित्कविरेव यच्छ्रुतं
पुरा मया योगनिविष्टचेतसा ।
अलक्षितोस्त्यत्र मुनिर्महीतले
यथा सुतः सत्यवतीसमुद्भवः ॥१०॥

हमने किसी कवि के मुख से यह सुना है कि भगवान् व्यासमुनि की तरह चिरंजीवी हैं अब ये केवल अदृश्य हो गये हैं ॥ १० ॥

परश्वधाङ्कः स निरीक्ष्यतेजनै-
र्यथा कदाचिद्भुवनभ्रमे रतः ।
स वायुसूनुर्भुवि लभ्यते यथा
तथा गुरुः सोपि समागमिष्यति ॥११॥

जिस प्रकार भ्रमण करने वालों को गङ्गा तट पर परशुराम जी और हनुमान जी मिलते हैं ? सम्भव है इसी प्रकार भगवान् भी कभी आकर मिलें ॥ ११ ॥

समिद्धयोगाग्निविनष्टकिल्बिषा-
स्तपोधना लोकहितैककामनाः ।

न मृत्युमर्हन्ति कदापि भूतले
गुरुः स मृत्युञ्जयएव मन्मते ॥१२॥

प्रचण्ड समाधि योग से नष्ट पाप लोकहित में रत तपोधन भूतल में कभी मृत्यु का मुख नहीं देखते ? भगवान् की तो फिर बात ही क्या ? वे तो हमारे मत में स्वयं मृत्युञ्जय थे ॥ १२ ॥

महालये मृत्युमवाप्य निश्चलं
समस्तमेतत्किल योऽवलोकते ।
शिवः स साक्षादवतीर्य भूतले
कथं प्रयास्यत्यतिशोचनीयताम् ॥१३॥

महाप्रलय के समय जो भगवान् शङ्कर समस्त भुवन को प्रसुप्तावस्था में देखते हैं वह साक्षात् स्वयं अवतीर्ण होकर शोचनीय दशा को क्यों कर पहुँचेंगे ॥ १३ ॥

तदद्य विश्रम्य जलाञ्जलिक्रियां
विधाय तस्याद्भुतवीर्यकर्मणः ।
तदीयसन्दिष्टमनन्यचेतसा
समर्थनीयं भगवत्कृपाबलात् ॥१४॥

इसलिये आज कुछ देर विश्राम करके उनके परलोक सम्बन्धी कार्य करके उनके अभीष्ट कार्यों का हम सब सम्पादन करने में लगें जिससे उनकी आत्मा प्रसन्न रहे ॥ १४ ॥

इति प्रशस्तं समयोचितं तदा
निशम्य भावानुगतं वचोऽमृतम् ।
बभूवुरत्यन्तविनष्टमूर्छनाः
क्रमेण सर्वेपि सभामुपागताः ॥१५॥

इस प्रकार बालहास की समयोचित बात सुनकर मण्डल में उपस्थित सभी मुनि जन गत शोक होकर शान्त चित्त हुए ॥ १५ ॥

विचार्य तस्याद्भुतकार्यपद्धतिं
विधाय कार्यक्रममागमोचितम् ।

समस्तशिष्यैरुचितन्तथा कृतं
यथा जनैरद्य रसाद्विलोक्यते ॥१६॥

इसके अनन्तर उन सब शिष्यों ने कार्य पद्धति पर विचार कर ऐसा उचित कार्य क्रम बनाया जिसका निदर्शन अबतक चला आ रहा है। ॥ १६ ॥

धृतव्रतास्ते गुरुकार्यसाधने
तपोमयञ्जीवनमात्मना गताः।
दृढ़प्रतिज्ञाः परमार्थरक्षणे
गुरूपदिष्टानि,शिवानि सस्मरुः ॥१७॥

गुरुजी के कार्य के साधन में धृतव्रत तपोमय जीवन के धारण करने वाले वे सब दृढ़ प्रतिज्ञ होकर गुरूपदिष्ट कार्यों के स्मरण में लग पड़े। ॥ १७ ॥

जगाद कश्चिज्जगदुद्धृतिक्षमः
समस्तमेवात्र मुनेर्मनोगतम्।
निजश्रमेणाशु विधाय भूतले
मया निवेद्यं गुरवे कृताकृतम् ॥१८॥

उनमें सर्व प्रथम बालहास ने कहा कि मैं अपने जीवन में परिश्रम के साथ गुरु जी के सब उद्देश्यों की पूर्ति करके गुरु जी के समक्ष अपने कार्यों की सूची अर्पण करूंगा ॥ १८ ॥

गुरोः पदद्वन्द्वमनन्तशर्मदं
निधाय चित्ते निजगाद तत्परः।
किमस्ति तद्यत्र मया भुवस्तले
समापनीयं मुनिकार्यमुत्तमम् ॥१६॥

बालदास की यह बात सुनकर पुण्यदेव ने कहा कि संसार में वह काम कौन सा है जिसको बिना पूरा किये मैं अपना जीवन समाप्त कर सबके पीछे रहने योग्य बनूंगा ? ॥ १९ ॥

द्वयोरिमामद्भुतभावगर्भितां
निशम्य वार्त्तां कमलामनो मुनिः।

मुनेर्मतानामनुमोदनार्थकं
समर्पयामास समस्तजीवनम् ॥२०॥

बालदास और पुष्पदेव की बात सुन कर कमलासन ने कहा कि मैं अपना समस्त जीवन गुरुजी के कार्यों की पूर्तिमें लगाने का आज से प्रण करता हूं ॥२०॥

मुनित्रयीवाक्यमुदारकल्पनं
निपीय गोविन्द उवाच सर्वथा।
समर्थनीयं भुवने पदे पदे
मया गुरोश्चेतसि यत्समादृतम् ॥२१॥

इन तीनों की बात सुन कर चौथे शिष्य गोविन्ददेव ने कहा मैं अपने जीवन में पद पद पर गुरु जी के कार्यों का समर्थन करने के लिये आज से दृढ प्रतिज्ञ होकर प्रयत्न करूंगा॥ २१ ॥

प्रधानशिष्यानुमतिं गुरोर्मते
विलोक्य तेषामनुयायिनोपि ते।
समर्थितार्थानुमतेः समर्थनं
समानभावाज्जगदुः क्रमागतम् ॥२२॥

इस प्रकार गुरु जी के चारों शिष्यों की बात सुनकर ब्रह्मकेतु आदि अन्य शिष्यों ने उनके कथनों का अनुमोदन करके अपनी २ सहानुभूति प्रकट की ॥२२॥

इति क्रमेणादृतसत्यभावना
गुरोर्गुरूणामविनाशिनो मुनेः।
हृदि स्थितानि क्रमशः पदे पदे
समर्थयामासुरिमे सभागताः ॥२३॥

इस क्रम से गुरु के कार्यों का समर्थन करके सभास्थित उनके शिष्यों ने अविनाशी मुनि का समस्त मनोरथ पद पद पर पूरा करके अपना कर्तव्य पालन किया ॥ २३ ॥

प्रचारकार्यं भुवि कार्यमित्यलं
विचार्य चित्ते किल सर्व एव ते।

निवेशयामासुरनन्तमण्डल-
व्यवस्थितिं तत्परतामुपागताः ॥२४॥

गुरु जी के कथनानुसार धर्मप्रचार का कार्य अवश्य करना चाहिये यह बात अपने चित्त में सोचकर उन सबों ने सर्व प्रथम मण्डलों का स्थापन किया ॥ २४ ॥

विधाय नानाविधमण्डलस्थितिं
दिगन्तविश्रान्तविशुद्धकीर्तयः ।
मुनेर्मनीयामविरामात्मना
समन्वगुस्तादृशदिव्यकल्पनाः ॥२५॥

मण्डलों का स्थापन कर उन सबों ने अनवरत गुरु जी की आज्ञाओं का पालनकर अपने अपने जीवन को यथार्थ में सार्थक बनाकर दिखा दिया ॥ २५ ॥

समाप्य सर्वं नवजीवनं क्रमा-
द्गुरोर्नियोगेन नदर्थमाहृतम् ।
स बालहासो मुनिमण्डलाग्रणीः
समाधियोगेन गुरोः पदं गतः ॥२६॥

उन सब शिष्यों में सबे प्रथम बालहास ने अपना कार्यक्रम समाप्त कर समाधियोग के द्वारा देहरादून में अपना शरीर समाप्त किया ॥ २६ ॥

[शाखा परिचय]

हरिदत्तसुतः सोयमलिमत्तसहोदरः ।
काश्मीरदेशजो विप्रः सर्वशास्त्रविचक्षणः ॥२७॥
देहरादूननगरे कीर्तिमेवात्र विन्यसन् ।
लेभे समाधिमचलां गुरुवर्यपदानुगः ॥२८॥
सर्वतः प्रागिदं स्थानं सम्प्रदायप्रवर्धकम् ।
बालहासेन मुनिना स्थापितं धर्महेतवे ॥२९॥

यत्र लक्ष्मणदासाख्या महान्तो मण्डलेश्वराः ।
निवसन्त्यधुना धर्मरक्षणे दक्षदक्षिणाः ॥३०॥
अस्य शिष्येष्वभूदेको भगवद्दास उत्तमः ।
समाधिर्लभ्यते यस्य तत्रैव गुरुसन्निधौ ॥३१॥
कक्षां चतुर्दशीमेत्य यत्प्रशिष्येषु विश्रुतः ।
मुनिः सुन्दरदासोभूदायुर्वेदविशारदः ॥३२॥
तस्य शिष्यो जगन्मान्यो रामानन्द इति श्रुतः ।
वर्ततेद्यापि भुवने वेदवेदाङ्गपारगः ॥३३॥
यत्प्रसादेन भुवने लब्धकीर्तिर्जगद्गुरुः ।
मुनिर्गङ्गेश्वरानन्दो वरीवर्ति भुवस्तले ॥३४॥
शाखेयं बालहासस्य विश्रुता भुवनत्रये ।
वर्धतेद्यापि भुवने मुनिमण्डलमध्यगा ॥३५॥

अब बालहास का परिचय दिया जाता है ये बालहास पण्डित हरिदत्त जी के पुत्र अलिमत्त के सहोदर भाई काश्मीरी ब्राह्मण थे इन्होंने अपना शरीर देहरादून में छोड़ कर अपना यशोमय शरीर सर्वदा के लिये अजर अमर बना लिया। साम्प्रदायिक दृष्टि से सर्व प्रथम देहरादून में आपका ही स्थान है वर्तमान समय में जिसके अध्यक्ष श्री १०८ महन्त लक्ष्मणदास जी [गुरु रामराय दरबार देहरादून] हैं बालहास के शिष्यों में एक भगवद्दास जी उदासीन हुये जिनकी समाधि बालहास की समाधि के पास ही देहरादून में बनी है बालहास की चौदहवीं पीढ़ी में एक महन्त सुन्दरदास जी हुये हैं जिनके शिष्यों में अब भी रामानन्द जी हैं जिनसे दीक्षा लेकर श्री १०८ गङ्गेश्वरानन्द जी आज कल धर्म प्रचार कर रहे हैं यहां तक बालहास की शाखा महात्माओं का वर्णन किया गया है ॥२७-३५॥

अलिमत्तपदेन गीयते
भुवि यः सम्प्रति सर्वमानवैः ।
स गुरोरनुकम्पया जग-
ज्जनिमभ्येत्य चकार निर्मलम् ॥३६॥

अब अलिमत्त के कार्यों का परिचय दिया जाता है। ससार में जिनकी कीर्ति अलिमत्त के नाम से गाई जाती है उन्होंने अपने गुरुओं की कृपा से जगत् को निर्मल कर दिया ॥ ३६ ॥

कृततीर्थपरिभ्रमः क्रमा-
दयमादर्शचरित्रजन्मभूः।
गुरुदेवपदारविन्दयो-
र्बहु सस्मार पदे पदे मुनिः ॥३७॥

आपने समस्त तीर्थों में भ्रमण करके अपने जीवन को आदर्श बनाकर अपने गुरुदेव के चरणारविन्दों का बार २ स्मरण कर उनका कर्त्तव्य पूरा किया ॥३७॥

गुरुवर्यमतं पुरे पुरे
भुवि तन्वन्स निवृत्तिमार्गगम्।
कमलासन एव जीवनं
फलभारावनतं मुदाकरोत् ॥३८॥

भारत के प्रत्येक नगर और ग्राम में गुरु प्रदिष्ट उदासीन मार्ग का प्रचार कर इन्होंने अपने जीवन को फल भार से अवनत बना दिया ॥ ३८ ॥

अस्यातिमञ्जुलमतेर्गुरुशिष्यवर्य-
वर्यस्य विस्तृतजगत्त्रयकीर्तिभाजः।
किं किं चरित्रमिह वर्णयितुं मनो मे
मोदेन न त्वरति सत्वरतामुपेतम् ॥३९॥

अत्यन्त सुन्दर चरित्र वाले विमल कीर्ति युक्त आपके जीवन में कौन सी ऐसी बात नहीं है जिसका वर्णन करने के लिये हमारा मन न चाहता हो ॥ ३९ ॥

मान्योतिधन्यचरितस्त्रिजगद्वदान्यो
नान्योस्य कश्चिदपि भूवलये समानः।
सन्दृश्यते यदुपमानपदं प्रदातु-
मस्मिन्मनो भवतु मे विमलावतारम् ॥४०॥

आपके समान धन्य मान्य और वदान्य अन्य कोई दृष्टि में नहीं आता, जिसके साथ तुलना करके आपको जनता में प्रस्तुत किया जा सके ॥४०॥

शिष्यानयं दशसहस्रमितान्निबोध्य
प्राप्तं गुरोः करुणया निगमैकवेद्यम् ।
तत्त्वं निरस्तबहुजालकथं कथन्न-
प्रापानुजस्य पदवीमदवीयसीन्ताम् ॥४१॥

आपने दस हजार शिष्यों में अपने गुरूपोक्त धर्म का प्रचार करके संसार में अपने भाई बालूहास से अधिक कार्य कर अपनी गुरुभक्ति का परिचय दिया ॥४१

अस्मै जगद्गुरुरदाद्वरमप्रमेयं
यं पूर्वमत्र भुवनेष्वतिदुर्लभन्तम् ।
भावोन्नतेन मनसा समवाप्य मन्ये
सर्वं तदस्य फलितं हृदये निविष्टम् ॥४२॥

भगवान् श्रीचन्द्र न शिष्य बनाने के समय इनको एक शाखा सञ्चालन करने का वर दिया था, जिसके प्रभाव से आपने सभी काम पूरा करके उनके वर को चरितार्थ कर दिया ॥ ४२ ॥

कूर्माचलीयविषयं समुपेत्य सोऽय-
मन्तेऽत्र नानकमताभिधरम्यदेशे ।
लेभे समाधिमचलं नयनाभिधान-
पीठोपकण्ठगमकुण्ठितदिव्यशक्तिः ॥४३॥

अन्त में आपने कूर्माचल प्रान्त में अवस्थित जिला नैनीताल में "नानकमता" नामक स्थान में आकर सर्वदा के लिये अचल समाधि प्राप्त की ॥ ४३ ॥

ये वर्त्तमानसमये विविधप्रकाराः
प्रान्ते वसन्ति किल सम्प्रति पञ्चिखाते ।
शीताम्बुपानरसिका मुनयः क्रमेण
सर्वेऽपि तेऽस्य चरितानि समामनन्ति ॥४४॥

वर्तमान समय में इस षष्ठिलात (छलाता) प्रान्त में जो उदासीन मुनि रहते हैं, वे सब समय २ पर प्रायः आपका गुणगान किया करते हैं ॥ ४४ ॥

हरिदत्तात्मजः सोयं वालहाससहोदरः ।
काश्मीरदेशसम्भूतः सर्वविद्याविचक्षणः ॥४५॥
एतत्पदानुगैरेव केशवानन्दसूरिभिः ।
सम्पादितः कनखले महाविद्यालयः शिवः ॥४६॥
एतच्छाखानुगैरेव पूर्णानन्दमहोदयैः ।
विद्यालयद्वयं लोके स्थापितं लोकविश्रुतम् ॥४७॥
वाराणस्यां तयोराद्यो विद्यते यं जगद्गुरुः ।
मुनिर्गंगेश्वरानन्दः सम्वर्धयति सर्वतः ॥४८॥
द्वितीयो मिथिलाप्रान्ते निमानीग्रामभूगतः ।
विद्यालयो वरीवर्ति सुन्दरः शारदाभिधः ॥४९॥
विद्यालयद्वयमिदं पूर्णानन्दप्रवर्तितम् ।
कमलासनशाखीयं विज्ञेयं मुनिसत्तमैः ॥५०॥
अलिमत्तीयशाखाया एतदन्तं मया कृतम् ।
निवेदितमतः पश्चाद्गोविन्दर्क्षातरुच्यते ॥५१॥

अब कमलासन की शाखा का परिचय दिया जाता है, अलिमत्तापरनामधेय ये कमलासन पंडित हरिदत्त जी के पुत्र और वालहास के सहोदर थे। इनकी पद्धति के अन्दर एक श्रीस्वामी केशवानन्द जी हुये, जिन्होंने कनखल में एक

उदासीन संस्कृत विद्यालय के सम्बन्ध में हमने ऐसा सुना है कि वर्तमान समय में जहां पर विद्यालय है, वहां पर प्राचीनकाल में एक महात्मा स्वरूपदास जी उदासीन रहा करते थे। उन्होंने काशीमें विद्याध्ययन करके अपने स्थानमें यह विद्यालय खोला था, कुछ दिन स्वयं चलाकर अन्त में उन्होंने इसको अपने शिष्यों के सुपुर्द किया। उनके शिष्य अनेक थे, जिनमें आज कल श्रीस्वामी हरिप्रकाश जी विद्यमान हैं। इन्होंने इस विद्यालय को अपने परिश्रम से बहुत काल तक चलाया, अब आपने भी इसका सम्बन्ध श्रीस्वामी गंगेश्वरानन्द जी के सुपुर्द कर दिया है।

मुनिमण्डलाश्रम स्थापित किया था। इन्हीं की शाखा में श्रीस्वामी पूर्णानन्द जी महाराज हुये, जिन्होंने अपने परिश्रम से दो विद्यालय स्थापित किये। उनमें पहिला काशी में ढुण्ढिराज के पास उदासीन संस्कृत विद्यालय है, जिसका सञ्चालन वर्तमान समय में बालदास शास्त्रीय जगद्गुरु श्री१०८ स्वामी गङ्गेश्वरानन्द जी कर रहे हैं। दूसरा मिथिला प्रान्त में निमानी ग्राम के पास शारदा विद्यालय है, ये सब विद्यालय कमलासन की शाखा के ही समझने चाहिये। यहाँ तक हमने अलिमत्त की शाखा के विषय में लिखा है, इसके अनन्तर गोविन्ददेव के विषय में कहा जायगा॥ ४५—५१॥

गोविन्ददेव इति यस्य शुभाभिधानं
जेगीयते गुणिगणेषु स लोकमान्यः।
शिष्यो मुनेर्जगदिदं समवाप्य देवा-
दाविश्चकार मुनिनायकमण्डलानि॥५२॥

श्रीचन्द्र जी के शिष्यों में जिनका नाम गोविन्ददेव है उन्होंने सर्व प्रथम संसार में मुनि मण्डलों का स्थापन किया॥५२॥

सर्वेषु भारतभुवः परिशोभमान-
प्रान्तेषु मण्डलमहर्दिवमेधमानः।
संस्थाप्य तेष्वनुविधाय परःसहस्रा-
ल्लोकानयं मुनिमतेऽनुरतानहृष्यत्॥५३॥

भारत के कोने २ में मुनि मण्डल स्थापित कर इन्होंने उनमें हजारों शिष्य काम करने योग्य तैयार किये जिनका काम देखकर स्वयं वे बहुत प्रसन्न होते थे॥५३॥

अस्यानुगेषु महनीयमहोदयेषु
कोऽप्यप्रमेयचरितः किल रामदेवः।
शिष्यो बभूव निजधर्मगुरोः क्रमेण
यः पञ्चमीमुपजगाम गुणेन कक्षाम्॥५४॥

योगप्रभावमधिगत्य जवेन येन
दुर्भिक्षपीडितकृषीवलदैन्यभाजम्।

मद्योऽवलोक्य निजयोगवलेन मेघ-
मालाभिरम्बरमकारि परीतपारात् ॥५५॥

गोविन्ददेव की पांचवीं पीढ़ी में एक महात्मा रामदेव जी हुये जिन्होंने अपने योग-बल से दुर्भिक्ष पीड़ित किसानों के खेतों पर बार-बार मेघ बरसाकर पञ्जाब में 'मीहां' नाम पाया है। पञ्जाबी भाषा में मेघ को मींहां कहते हैं ॥ ५४—५५

अस्यानुगेषु शिष्ये-
ष्वभूदनन्तप्रतापसम्भृतिः।
प्रियतमदासो धन्य-
स्ततान लोकेऽत्र यो मुनेर्दीक्षाम् ॥५६॥

सन्तोषदासदत्त-
प्रकृष्टसाहाय्यमादराद्वाप्य।
येनात्र वीजगुप्तं
नवीनविस्तीर्णपद्धतेर्दिव्यम् ॥५७॥

धन्याविमौ महान्तौ
नवीनरूपप्रदानसन्दक्षौ।
संस्थायाःप्राणाविव
न केन मान्यौ महानुभावेन ॥५८॥

रामदेवजी के शिष्यों में एक महामहिम स्वनाम धन्य महामना प्रियतमदास जी हुये और इनके सहयोगी एक महात्मा सन्तोषदासजी हुये। इन दोनों महात्माओंने श्रीचन्द्रप्रतिष्ठापित पञ्चायतन को नवीन रूप में उदासीन पञ्चायती अखाड़ा का रूप दिया। विक्रम की उन्नीसवीं सदी के अन्त में निर्वाण प्रियतमदास जी ने इस संस्था का सामयिक विशेष रूप देकर सगठित किया था इस कारण उपर्युक्त दोनों महात्मा वर्तमान रूप के जन्मदाता और संस्था के प्राण स्वरूप माने जाते हैं ॥५६—५८॥

एकदा दक्षिणाशास्थमनयोः प्रथमो मुनिः।
जगाम दैवयोगेन हैदराबादपत्तनम् ॥५९॥

मातामहं तत्र गत्वा मन्त्रिणः शिष्यतां नयन् ।
लेभे मुनिरयं तस्मान्नवलक्षमित धनम् ॥६०॥
त्यागादर्शमयं तत्र दर्शयन्नुपसङ्गतम् ।
पञ्चायतनसंस्थायै ददौ तत्सर्वमादरात् ॥६१॥
पञ्चायतनसंस्थाया यस्या यत्नेन भूतले ।
नानातीर्थेषु लभ्यन्ते मुनिस्थानानि सर्वतः ॥६२॥
पुराणनव्यभेदेन भिन्नौ कार्यालयौ दृढौ ।
प्रयागपत्तने रम्यौ तिष्ठतोऽस्याः प्रयत्नतः ॥६३॥
वृन्दावने कनखले ततोन्यत्रापि यत्नतः ।
पञ्चायतनसंस्थाया लभ्यते बहुशः कृतिः ॥६४॥
एतदन्तं रामदेवादारभ्य यदिहोदितम् ।
पञ्चायतनसंस्थायास्तत्सर्वं कार्यमुत्तमम् ॥६५॥

एक समय निर्वाण प्रियतमदासजी दैवयोगसे भ्रमण करतेर दक्षिण हैदराबाद गये थे, उस समय वहां के दीवान चन्दूलाल भी थे। दीवान साहब के नाना नानकचन्द्र निर्वाण प्रियतमदासजी के शिष्य हुये थे, उन्होंने शिष्य होने के समय सन्तान न होने के कारण अपना सब धन जो कि नौलाख से कुछ अधिक था, निर्वाण प्रियतमदास जी को भेंट किया था। आपने भी अपने त्याग का आदर्श उपस्थित करके वह सब धन पञ्चायती अखाड़े के भेंट किया। आज उसी पञ्चायती अखाड़े के प्रयत्न से अनेक तीर्थों में उदासीन मुनि मण्डल पाये जाते हैं। इसी पञ्चायती अखाड़े के प्रयत्न से आज प्रयाग में पुराना अखाड़ा और नया अखाड़ा अलग अलग होकर अपना अपना काम कर रहे हैं। इसी पञ्चायती अखाड़े के प्रयत्न से वृन्दावन, कनखल, उज्जैन आदि अनेक पुण्य स्थानों में उदासीन मुनियों के स्थान पाये जाते हैं। रामदेव उपनाम मीहांसाहब से लेकर यहां तक हमने पञ्चायती अखाड़े के कार्यों का ही केवल संक्षिप्त परिचय दिया है। अब गोविन्ददेव का यश परिचय दिया जाता है ॥५९-६५॥

जयदेवसुतः सोयं पुष्पदेवसहोदरः ।
सुभद्रागर्भसम्भूतः क्षत्रियान्वयवर्धनः ॥६६॥
जातः श्रीनगरे रम्ये श्रीचन्द्रवरदानतः ।
गुरूपदिष्टकार्याणि यो यथावदपूरयत् ॥६७॥
शतधा द्रवमाणस्य शतद्रोस्तारभूस्थिते ।
फिल्लौरपत्तने सोयं समाधिं प्राप निश्चलम् ॥६८॥
फिल्लौरपत्तनमिदं देशे पञ्चनदाभिधे ।
प्रसिद्धमस्ति दुर्गेण यत्समन्ताद्विशोभितम् ॥६९॥
अद्यापि यत्र मुनयो मुनिमार्गपरायणाः ।
कणेहत्य तपोयोगमाचरन्ति गतक्लमाः ॥७०॥

यह गोविन्ददेव जी श्रीनगर के रहने वाले क्षत्रिय कुल तिलक जयदेव के पुत्र सुभद्रा माता के गर्भ से उत्पन्न हुये थे, पुष्पदेव इनके सहोदर छोटे भाई थे। यह दोनों श्रीचन्द्र जी के वरदान से उत्पन्न हुये। गोविन्ददेव ने अपने गुरुदेव की समस्त आज्ञायें पूर्ण करके शतद्रु के तट पर विद्यमान फिल्लोर शहर में अन्तिम समाधि प्राप्त की। यह फिल्लौर पञ्जाब प्रान्त में प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ पर आज कल किला बना हुआ है.। आज भी यहां पर बहुत से उदासीन योग-साधन में लगे हुये हैं॥ ६६-७० ॥

[शाखा परिचयः]

गोविन्द देवशाखीया बहवः सन्ति भूतले ।
निवेशास्तेषु कतिचिन्निवेद्यन्ते यथाक्रमम् ॥७१॥
साधुवेलाभिधं स्थानं तच्छाखीयैः प्रवर्तितम् ।
यदद्य लभ्यते सिन्धोर्मध्यभागे व्यवस्थितम् ॥७२॥
अस्मादपरमास्थानं सुधासरसि लभ्यते।
तस्मादप्यपरं दिव्यं रामानुजपुरे स्थिरम् ॥७३॥

गोविन्ददेवशाखेयं समासेन मयेरिता ।
दृश्यतां पुष्पदेवस्य शाखाग्रे मत्समीरिता ॥७४॥

गोविन्ददेव की पद्धति के बहुत से आश्रम इस समय भारत में मिलते हैं, उनमें साधुवेला नामक स्थान सक्खर सिन्ध में है, संगल वाला अखाड़ा अमृतसर में है और बाग बाबा हजारा लखनौं में है। यह तीनों स्थान गोविन्ददेव की पद्धति के हैं। यहां तक हमने गोविन्ददेव की शाखा का वर्णन लिखा, अब हम पुष्पदेव के विषय में लिखते हैं ॥७१-७४॥

पुष्पदेव इति यस्य मनोज्ञं
नामधेयमभितो निगदन्ति ।
विश्रुतः स जयदेव सुतोयं
स्वागतानि विदधे गुरुकृत्ये ॥७५॥

विश्रुतेन भुवने जयदेव-
स्यात्मजेन यदिकारि मुनीनाम् ।
कार्यमुत्तमतमं नहि कश्चि-
त्तचकार गुरुणाहतवार्यः ॥७६॥

एष विश्रुतकथः कथनीयं
यद्यदाविरकरोद्भुवि तत्तत् ।
गीयते मुनिगणेन कथासु
स्वागतोचितपदैः प्रथितासु ॥७७॥

गुर्जरद्रविडमद्रकलिङ्गा-
नङ्गवङ्गमगधानधिगत्य ।
भावगुम्फितपदैरयमेकः
श्रीगुरोश्चरितमेषु वितेने ॥७८॥

आदराद्दृतविलोचनपातैः
स्वागतानि बहुशः प्रतिगृह्णन् ।
मन्दमन्दगमनोयममन्दं
मन्दरध्वनिगभीरमवोचत् ॥७६॥

संसार में जिसका पुष्पदेव के नाम से सम्बोधित करते हैं, जयदेव के उस प्रसिद्ध पुत्र ने श्रीचन्द्र के सब कार्यों का स्वागत किया । जगत्प्रसिद्ध इस पुष्पदेव ने गुरु का जो उत्तम ढङ्ग से काम किया उसकी तुलना संसार में किसी से नहीं की जा सकती है । इन्होंने जो कुछ काम किया उसकी चर्चाप्रायः मुनिगण समय समय पर करते रहते हैं । गुजरात, द्रविड़, मद्रास, अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग इन सब देशों में जाकर इन्होंने गुरु का सिद्धान्त मनुष्यों को समझाया । इनके बोलने का ढङ्ग ऐसा था कि ये आदर से सबको देखते हुये सब के यहां स्वागत पूर्वक जाकर मन्दर ध्वनि के समान गम्भीर शब्दों से सबको मुग्ध करते थे ॥७५—७९॥

विश्वविश्रुतमनोरमकीर्ते-
रस्य भव्यचरितस्य जनस्य ।
केन केन मनुजेन न लोके
गीयतेऽत्र विविधा गुणपंक्तिः ॥८०॥

अद्भुतप्रथितवीर्यविमर्द-
ध्वस्तवैरिनिवहोदितसाराः ।
कान्दिशं न ययुरस्य विपक्षाः
कान्दिशीकपदमेत्य सकक्षाः ॥८१॥

आदरेण गुरुणा यदभीष्टं
शिष्टमिष्टवचनैरुपदिष्टम् ।
तद्विशिष्टकरणैरवशिष्टं
मिष्टतामनयदात्मनि तुष्टः ॥८२॥

पूर्वमेव सनकादिभिरुक्तं
तत्वमत्र गुरुणा पुनरुक्तम् ।
स प्रसार्य जगदेव विमुक्तं
यच्चकार तदलं भुवि युक्तम् ॥८३॥

एवमत्र मतमस्य विशाखं
यच्चकार गुरुमण्डलशाखम् ।
श्रीगुरोः कथनमुन्नतशाखं
तद्बभे भवतु सत्फलशाखम् ॥८४॥

जगत्प्रसिद्ध इस महानुभाव का संसार में कौन मनुष्य आदर पूर्वक प्रतिदिन स्मरण नहीं करता है ? इनके बल-वीर्य और पुरुषार्थ को देख कर कौन ऐसा विपक्षी था ?.जो दुम दबाकर नहीं भागता था, गुरुने आदरपूर्वक जिस अपने हृद्गत अभिप्राय को इनके समक्ष उपस्थित किया था उसका इन्होंने पूर्ण रूप से पालन किया । सनकादि प्रदिष्ट जिस मार्ग को गुरु जी ने दुबारा उपस्थित किया था उसका सर्वत्र फैला कर इन्होंने अपने योग्य ही काम किया अनेक शाखाओं में विभक्त जिस उन्नत शाख मत को श्रीचन्द्र जी ने विशाख रूप (बीज रूप) में प्रकट किया था, उसको आपने सत्फल शाख बनाकर दिखा दिया ॥८०—८४॥

एवं श्रीपुष्पदेवस्य विषये यदुदीरितम् ।
तद्भवत्वतिमोदाय कवीनां दूरदर्शिनाम् ॥८५॥
गोविन्ददेववदयं पुष्पदेवोपि भूतले ।
उदासीनं मतं तेने बहुशाखं यथायथम् ॥८६॥
देशं पञ्चनदं प्राप्य जीवनान्ते स योगवित् ।
बहादुरपुरे लेभे समाधिमुपसंगतम् ॥८७॥

यत्राद्य मञ्जुलतरं पुष्पदेवीयपद्धतेः ।
स्थानमेकं वरीवर्ति मुनिमण्डलमण्डनम् ॥८८॥
उदारचरितो यत्र महानद्य विराजते ।
श्री विश्वम्भरदासोऽलं सनातनपथानुगः ॥८९॥
एतावदस्य विषये विविच्य हृदयस्थितम् ।
निवेद्यते भक्तगिरेः शाखावृत्तं यथाक्रमम् ॥९०॥

यहां तक हमने पुष्पदेव का वृत्तान्त लिखा है। गोविन्ददेव के समान पुष्पदेव ने भी अनन्त शास्त्र उदासीन मत का पूर्ण रूप से प्रचार किया। अन्त में पञ्जाब में जाकर होशियारपुर जिले के बहादुरपुर नामक ग्राम में अचल समाधि ग्रहण की। वहां पर आजकल आपकी पद्धति का एक स्थान विद्यमान है, जिसमें महन्त विश्वम्भरदास जी रहते हैं। यहां तक हमने पुष्पदेव का वृत्तान्त लिखा है, अब हम भक्त भगवान की शाखा का वर्णन करते हैं ॥८५—९०॥

भक्तो भक्तगिरिर्योऽभून्मुनेः शिष्यः पुरा क्रमात् ।
सोपि सर्वं मुनेः कार्यं पूरयामास यत्नतः ॥९१॥
जीवनान्ते स भगवान्भक्तः सिन्धोस्तटे शिवे ।
लेभे समाधिमचलं योऽद्यापि भुवि लभ्यते ॥९२॥
एतच्छाखीयमुनिभिर्बहवोऽत्र भुवस्तले ।
मुनीनामाश्रमाः पुण्याः प्रायस्तीर्थेषु कल्पिताः ॥९३॥
गोविन्दानन्दमुनिभिर्वाराणस्यां प्रवर्तितः ।
विद्यालयो महानेकः श्रीचन्द्रपदभूषितः ॥९४॥
एतच्छाखीयगोविन्दानन्दशिष्यैः प्रवर्द्धितम् ।
यमद्य दर्शनानन्दः संचालयति सूद्यमैः ॥९५॥

एतस्याः पद्धतेरेव राणोपालीति विश्रुतम् ।
अयोध्यायां वरीवर्ति महदास्थानमुत्तमम् ॥९६॥
आत्मस्वरूपमुनिभिर्हरिद्वारे निवेशितम् ।
गुरुमण्डलमेतस्याः शाखाया विश्रुतं पदम् ॥९७॥
रम्ये राजगिरावद्य हंसदेवेन शोभितम् ।
पदं यदस्ति तदपि भक्तशाखीयमीर्यते ॥९८॥
एवमत्र समासेन यस्या वर्णनमाहितम् ।
शाखा भक्तगिरेः सेयं ज्ञातव्या मुनिनायकैः ॥९९॥

श्रीचन्द्र जी के शिष्यों में भक्त भगवान के नाम से जो शिष्य हुये हैं उन्होंने भी यत्न से मुनि की आज्ञाओं को पूर्ण कर के जीवन के अन्त भाग में सिन्धु के तट पर समाधि प्राप्त की, जो आज भी देखने में आती है। इनकी शाखा में अनेक महानुभावों ने उदासी मुनियों के अनेक स्थान बनाये, जिनमें पहिला श्रीचन्द्र विद्यालय है। इसका स्थापन काशी में आशा भैरव के सामने मुनिवर श्रीगोविन्द जी ने किया था। आजकल इसका सञ्चालन श्री स्वामी दर्शनानन्द जी वेदान्तकेसरी कर रहे हैं। इनकी शाखा का दूसरा स्थान अयोध्या में रानोपाली के नाम से प्रसिद्ध है। तीसरा स्थान हरिद्वार में गुरुमण्डलाश्रम के नाम से प्रसिद्ध है, जिसका स्थापन श्री आत्मस्वरूप जी महाराज ने किया था। इस स्थान के वर्तमान सञ्चालक महन्त श्रीरामस्वरूप जी हैं। इसी शाखा का चौथा स्थान मगध देश में राजगिरि के पास है, जिसमें आजकल स्वामी हंसदेव जी निवास करते हैं। इस प्रकार संक्षेप से जिसका वर्णन हमने किया है, वह भक्त भगवान की शाखा समझनी चाहिये ॥९१—९९॥

अतः परमहं वक्ष्ये प्रधानपरिचालकान् ।
गुरुसंगतशाखायाः क्रमेण मुनिनायकान् ॥१००॥
केन न ज्ञायते लोके नास्तिकव्रातमर्दनः ।
उदासीनो बालरामः सर्वशास्त्रविचक्षणः ॥१०१॥
महापुरुषनामानो यदध्यक्षाः क्रमेण ते ।
समस्तोतस्यभूवंस्तेऽरविन्दानन्दयोगिनः ॥१०२॥
गोकुले यदवस्थानमद्यापि परिलभ्यते ।
सोपि श्रीकार्ष्णिगोपालदासोभून्मुनिनायकः ॥१०३॥
सम्पादकपदेनाख्यो बुधैः परिगीयते ।
स्वामी रामस्वरूपोयं केन न ज्ञायते भुवि ॥१०४॥
एवंविधा मुनिवरा यस्यामासन्पुरे पुरे ।
गुरुसंगतशाखेयं सा मयात्र निदर्शिता ॥१०५॥

[शाखा परिचय]

अतःपरं वर्तमानकार्यालयपरिस्थितिः ।
प्रदर्श्यते समासेन या करोति यथोचितम् ॥१०६॥
वर्तमानेऽत्र समये दश शाखाः प्रतिष्ठिताः ।
उदासीनस्य लभ्यन्ते सम्प्रदायस्य सर्वतः ॥१०७॥
अग्निकुण्डपुरस्कारशब्दाभ्यां ताः समासतः ।
कथ्यन्ते धार्मिकजनैस्तत्र तत्र निवेशिताः ॥१०८॥
पारिभाषिकशब्दाभ्यामुभाभ्यां लक्षणावशात् ।
व्यञ्जनानुगतस्तत्र कश्चिदर्थोऽवगम्यते ॥१०९॥
अन्तरङ्गपदं प्राप्ता बालहासादयो मुनेः ।
शिष्याः सर्वेऽग्निकुण्डेति पदेन परिलक्षिताः ॥११०॥

अब हम वर्तमान अखाड़ों के विषय में कुछ लिखते हैं । [पूर्व समय में श्रीचन्द्र जी ने स्वय जिस पञ्चायतन का स्थापन करके उसके मण्डलाध्यक्षों का निर्वाचन किया था वह पञ्चायतन तेरहवें सर्ग के अन्त भाग में दिखाया जा चुका है] वर्तमान समय में उदासीन सम्प्रदाय की दस शाखायें हैं । जिनमें चार अग्निकुण्ड (धूना) के नाम से प्रसिद्ध हैं और छः पुरस्कार (बकशीश) के नाम से प्रसिद्ध हैं । इन दो पारिभाषिक शब्दों से लक्ष्यार्थ की अनुपस्थिति में व्यंग्यार्थ से काम लिया जाता है अन्तरङ्ग रूप में परिणत बालहासादि जो भगवान् के शिष्य भगवान् के समक्ष में मण्डलपति निर्वाचित हुये हैं वे [उदासीन सम्प्रदाय की प्रथा के द्वारा] अग्निकुण्ड (धूना) के साधु कहे जाते हैं और जो भक्तगिरि आदि बहिरङ्ग शिष्य भगवान् के पीछे मण्डलपति नियत हुये हैं वे घर प्राप्त पुरस्कार के कारण पुरस्कार के साधु (अथवा) बकशीश के साधु कहे जाते हैं ॥ १०६—११० ॥

बहिरङ्गगता ये ये भक्तगिर्यादयो मुनेः ।
शिष्याः सर्वेऽपि ते लोके पुरस्कारपदे स्थिताः ॥१११॥
सर्वेषामेकमत्येन पञ्चायतनसंस्थितिः ।
पूर्वमासीत्परं साऽद्य द्वैविध्यमुपसङ्गता ॥११२॥

लभ्यते विक्रमाब्दो यः शून्याकाशनवेन्दुभिः ।
तस्यान्तभागे महती संहतिः स्थापिता बुधैः ॥११३॥
नवीना संहतिरियं लभ्यते यत्रकुत्रचिन् ।
विंशां शताब्दीमभ्येत्य प्रारम्भे स्थापिताऽभवत् ॥११४॥
सत्यश्मश्रुमुखा ये ये मुनेः शिष्याः पुराभवन् ।
तैरियं कल्पिता शाखा द्वितीया याद्य लभ्यते ॥११५॥
वरदानं मुनेरेतत्पुरानेन मनीषिणा ।
अवाप्तं गुरुपादेभ्यो यस्येदं फलमाभवत् ॥११६॥
पूर्वा शाखातिमहती स्थापिता यैर्महोदयैः ।
गोविन्ददेवशाखायां तेषां वर्णनमीक्ष्यताम् ॥११७॥
मण्डलद्वयमप्येतत्प्रयागनगरे स्थिरम् ।
वरीवर्ति ययोः शाखाः सर्वतीर्थेषु संस्थिताः ॥११८॥
सर्वासामपि शाखानां वर्णनं विषयक्रमात् ।
पूर्वमेवाहितं सर्गे तदप्यन्यत्र वीक्ष्यताम् ॥११९॥
पञ्चायतनसंस्थायाः स्थापनं मुनिना कृतम् ।
त्रयोदशे मया सर्गे निवेदितमनुक्रमात् ॥१२०॥

पहिले सब की सम्मति से पञ्चायतन का काम चलता था परन्तु कुछ समय के बाद उसमें दो विभाग हुये । विक्रम की उन्नीसवीं सदी के अन्त में निर्वाण प्रियतमदास जी ने उदासीन सम्प्रदाय का बड़ा अखाड़ा स्थापित किया और नया अखाड़ा विक्रम की बीसवीं सदी के आरम्भ काल में स्थापित हुआ है इतना ही इन दोनों अखाड़ों के समय में अन्तर है।

[वर्तमान समय में आपस के वैमनस्य के कारण नया अखाड़ा बड़े अखाड़े से अलग होकर काम करता है इन दोनों संस्थाओं के रजिष्टर्ड नाम अलग अलग हैं एक का नाम [उदासीन पञ्चायती बड़ा अखाड़ा] है दूसरे का नाम उदासीन पञ्चायती नया अखाड़ा है पञ्चायतन पञ्चपरमेश्वर यह दोनों नाम एकार्थक हैं] ॥

सत्यश्मश्रु आदि जो भगवान् के शिष्य अथवा प्रशिष्य भगवान् के बाद मण्डलपति निर्वाचित हुये हैं उनके अनुयायियों द्वारा नया अखाड़ा बड़े अखाड़े से अलग होकर काम करने लगा है क्यों कि उनको भी सम्प्रदाय की एक शाखा चलाने का वरदान भगवान् दे चुके थे। वरदान वृथा हो नहीं सकता इसीलिये उसके परिणाम में शाखाओं में द्वैविध्य होना स्वाभाविक है पहिली शाखा का जिन्होंने स्थापन किया था उन प्रियतमदास आदि का वर्णन गोविन्ददेव की शाखा में किया जा चुका है इन दोनों छोटे बड़े अखाड़ों का प्रयाग में कार्यालय विद्यमान है बाकी शाखा कार्यालय सब तीर्थों पर काम करते हैं। अन्य सब शाखा कार्यालयों का भी वर्णन इससे पूर्व हो चुका है उसका यहाँ पर दुहराना व्यर्थ है पञ्चायतन का वर्णन तेरहवें सर्ग में हो चुका है इसलिये उसका दुहराना भी अब व्यर्थ है ॥ १११—१२० ॥

अतीते वर्तमाने वा ये ये मुनिमतानुगाः।
अभूवन्समये तेषामतःपरमवस्थितिः ॥१२१॥
मुख्या मुख्यतरास्तेषु ये ये मुख्यतमाः क्रमात्।
अनुक्रमेण पश्यन्तु सर्वे ते वर्णनक्रमम् ॥१२२॥

इनके अनन्तर अब हम प्राचीन अथवा नवीन उन महानुभावों का वर्णन करेंगे जिनको मुख्य मुख्यतर और मुख्यतम माना गया है ॥ १२१ १२२ ॥

आद्यो बभूव किल तेषु महोदयेषु
धन्यो वदान्यचरितो जनतासु मान्यः।
लोकोपकारकरणार्पितजीवनश्रीः
श्रीमानलं जगति सुन्दरदासवैद्यः ॥१२३॥
अस्यावदातचरितस्य भिषग्वरस्य
शिष्याबभूवुरमितप्रतिभाः शतन्ते।
यैरादरान्निजगुरोः करुणावशेन
मन्ये जगत्कृतमिदं गतसर्वरोगम् ॥१२४॥
वैदेशिकानि घनधर्महराणि यत्रैः
सद्यो निरस्य विविधार्तिविडम्बनानि।

यः स्वागतं चरकसुश्रुतवाग्भटानां
चक्रे तदुक्तबहुयोगनिरूपणेन ॥१२५॥
नानावलेहवटिकासवतैलचूर्ण-
क्वाथाज्यफाण्टरसधूपविलेपनाद्यैः ।
सिद्धाञ्जनैस्तदनु मञ्जनवर्तियोगैः
सद्यः समुन्नतगदं शमयाम्बभूव ॥१२६॥
उत्खातभूमिषु विषाण्यमृतानि येन
सन्धुक्षिताग्निपरिदग्धमदानि कृत्वा ।
सञ्जीवनोपमनिजौषधदानयोगा-
त्सञ्जीवितं जगदिदं करुणार्णवेन ॥१२७॥
यस्याद्भुतक्रमपरस्य भयेन भीता
रोगाः सजीववपुषो मरुतासहैव ।
वङ्गानगुः प्रसभमङ्गकलिङ्गभागा-
न्केचिज्जवेन विविशुः किल मद्रदेशान् ॥१२८॥

उनमें सर्व प्रथम वैद्य सुन्दरदास जी हैं जिन्होंने लोकोपकार बुद्धि से सब काम कर सुन्दर पद प्राप्त किया है संसार में इनके शिष्य एकसौ वैद्य आज कल काम करते हैं जिन्होंने संसार को बहुत अंशों में मुक्त कर दिया है वैद्य सुन्दरदास जी ने अपने समस्त जीवन में धन धर्म के हरने वाले विदेशी औषधों का बहिष्कार करके अपने आयुर्वेदोक्त औषधों का बल पूर्वक प्रचार किया। अनेक प्रकार के आसव, अवलेह, वटिका, तैल, क्वाथ, घृत, फाण्ट, रस, धूप, मरहम, अञ्जन, और मञ्जन आदि से आप सद्यः बढ़े हुये रोगों को शान्त करते थे आपने विषों को पृथिवी में गाड़ कर फिर उनको दग्ध करके अपने सञ्जीवनोपम औषधियों से जगत को सञ्जीवित कर दिया। आपके भय से बहुत से रोग उत्तर भारत को छोड़ कर अङ्ग वङ्ग कलिङ्ग और मद्रास में जाकर अपना कार्य क्षेत्र बना चुके हैं ॥ १२३—१२८ ॥

अस्य शिष्या महात्मानः सर्वप्रान्तेषु विश्रुताः ।
लभ्यन्ते यैरिदं व्याप्तं त्रैलोक्यमिव विष्णुना ॥१२६॥
गुर्जरे केऽपि लभ्यन्ते केचित्पञ्चनदेऽपरे ।
युक्तप्रान्तपुरेष्वन्ये तदन्ये मध्यभारते ॥१३०॥
भ्रमता ये मया दृष्टा विशिष्टास्तेषु सर्वतः ।
तेषां केषाञ्चिदत्राद्य निर्देशः स्थाप्यते रसात् ॥१३१॥

आपके बहुत से शिष्य समस्त भारत में विष्णु की तरह व्याप्त हैं उनमें कोई गुजरात में कोई पञ्जाब में कोई युक्तप्रान्त में और कोई मध्य भारत में प्रायः रहते हैं। देश भ्रमण प्रसङ्ग में उनमें से जिनको हमने देखा है उनका प्रसङ्ग प्राप्त वर्णन हम यहां पर करते हैं ॥ १२९—१३१ ॥

प्राणानानन्दयितुं
समस्तलोकस्य भेषजैर्दिव्यैः ।
प्राणानन्दपदं यः
स्वयं समागात्स विद्यते वैद्यः ॥१३२॥
श्रीचन्द्रपादयोर्यः
श्रद्धामद्धा समर्प्य तद्दत्तम् ।
आनन्दमाप लोके
श्रद्धानन्दः स वैद्यराजोऽस्ति ॥१३३॥
सत्वं रजस्तमोभ्यां
विशुद्धमेव प्रकाशते यत्र ।
शुद्धप्रकाशनामा
स वैद्यवर्यः प्रकाशते लोके ॥१३४॥
वेणीव मातृभूमे-
स्त्रिधा विभक्ता विभाति यं प्राप्य ।

सन्दृश्यतां तृवेणी–
दासः सोयं महत्त्वमापन्नः ॥१३५॥
सन्तोपि यस्य सन्तत–
मारादिच्छन्ति दर्शनं लोके ।
वैद्यः स सन्तरामः
सन्ततरामं करोति भूलोकम् ॥१३६॥

प्राणों को आनन्द देने के कारण जिन का नाम प्राणानन्द हुआ श्रीचन्द्र जी के चरणों में श्रद्धा रखने के कारण उनके दिये हुये आनन्द से जो श्रद्धानन्द हुये रजस्तमोरहित शुद्ध सत्व प्रकाश के कारण जो शुद्धप्रकाश हुये मातृभूमि की एक वेणीको त्रिधा विभक्त कर उसकेदास्य में जो तृवेणीदास हुये राम का सन्तत स्मरण करने के कारण जो सन्तराम हुये वे क्रमशः प्राणानन्द श्रद्धानन्द शुद्धप्रकाश तृवेणीदास सन्तराम संसार में प्रसिद्ध हैं ॥ १३२—१३६ ॥

एवंविधा महान्तः
सहस्रशो यस्य शिष्यतामासाः ।
वेविद्यन्ते वैद्याः
स वैद्यनाथः कथं न लोके स्यात् ॥१३७॥
श्रीरामचन्द्रभूमा–
वारामं यः प्रसाधयामास ।
नाम्ना माधवरामो
रानोपालीमहत्त्वमध्यास्ते ॥१३८॥

इस प्रकार अनेक वैद्य जिनसे शिक्षा प्राप्त कर संसार को जीवन दान दे रहे हैं उन सुन्दरदास जी को यदि हम वैद्यनाथ कहें तो अत्युक्ति न होगी। [अब महन्तों का वृत्तान्त सुनिये]। भगवान् रामचन्द्र जी की जन्मस्थली अयोध्या में जिन्होंने आराम बना कर आनन्द का स्रोत बहाया हुआ है वे महन्त माधवराम जी रानोपाली नाम की उदासीनों की बड़ी गद्दी पर विराजमान हैं॥१३७-१३८॥

वेलां समस्तमुनिमण्डलमण्डनाथ
यः साधु साधुजनसंहतिमातनोति।
श्रीचन्द्रसद्गुरुपदाम्बुजदत्तचित्तः
सर्वत्र विस्तृतकथो हरिनामदासः ॥१३९॥

समस्त मुनि मण्डल के मण्डनार्थ जो अच्छे प्रकार मर्यादा की तरह सज्जनों की सङ्गति में लगे रहते हैं वे भगवान् श्रीचन्द्र जी के अनन्य भक्त जगत्प्रसिद्ध श्री १०८ योगिराज पनखण्डी सिंहासनासीन दानवीर महन्त श्री १०८ हरिनाम दास जी साधुबेला तीर्थ [सक्खर सिन्ध] हैं ॥ १३९ ॥

दास्यं समस्तजगतामपहाय येन
सर्वार्तिनाशनपरं हरिनामदास्यम्।
अङ्गीकृतं जगति सार्थकनामधेयः
सोयं कृती विजयते हरिनामदासः ॥१४०॥

संसार की तुच्छ दासता छोड़ कर जिन्होंने समस्त दुःख नाशक केवल हरि नाम का दास्य अङ्गीकार किया है वे अन्वर्थ नाम-धेय महन्त हरिनामदास जी धन्यवाद के योग्य हैं ॥ १४० ॥

यस्यान्नसत्रमभितः समुपागतानां
नानादिगन्तरगताखिलमानवानाम्।
सेवामहर्दिवमनुक्रमतः करोति
सोयं स्ववैरिविजयी हरिनामदासः ॥१४१॥

सब ओर से आए हुये महानुभावों की अहर्निश सेवा करने के लिये साधु बेला तीर्थ में जिनका अन्नसत्र सर्वदा खुला रहता है वे दानवीर महन्त हरिनाम-दास जी धन्य हैं ॥ १४१ ॥

यः कुम्भसङ्गतमुदासिगणं यथाव-
दाराध्य दानबहुमानपरम्पराभिः।
विद्वज्जनानपि यथोचितदानमानैः
सम्प्रीणयत्यतितरां परमार्थदृष्टिः ॥१४२॥

प्रत्येक कुम्भ के महोत्सव पर जो उदासीन मण्डल की अनन्य भाव से सेवा करते हुये अन्य आगत विद्वानों का भी यथावसर सत्कार करते हैं ॥ १४२ ॥

श्रीचन्द्रदिग्विजयमादरतो दिदृक्षु-
र्यः सत्वरं तदुपयोगि समस्तमेव ।
आयोजनं बहुविधाय मुनेःप्रसाद-
माकांक्षते भवतु सोत्र चिराय मान्यः ॥१४३॥

"जगद्गुरु श्रीचन्द्र दिग्विजय" की दर्शनेच्छा से जिन्होंने उसके प्रकाशन का बहुत अंशों में आयोजन एकत्र कर जगद्गुरु के प्रसाद की आकांक्षा में बहुत सा समय व्यतीत किया है वे महन्त हरिनामदास जी चिरकाल तक जगत के मान्य बने रहें यही हमारी अभिलाषा है ॥ १४३ ॥

यो बालहासमुनिमण्डलमान्यसंस्था-
मध्यास्य राजविभवोचितमागतेषु ।
मानं तनोति सुकृती स वदान्यवृत्तो
वेविद्यते जगति लक्ष्मणदासभूपः ॥१४४॥

बालहास पद्धति के मुनि मण्डलों की माननीय संस्था पर आसीन होकर जो आगत सज्जनों का राजविभवोचित स्वागत करते हैं वे श्रीमान् योगिराज गुरु रामराय सिंहासनाध्यक्ष श्रीमहन्त गद्दीनशीन श्री १०८ महन्त लक्ष्मणदास जी गुरु रामराय दरबार [देहरादून] विद्यमान हैं ॥ १४४ ॥

पूर्वप्रतिष्ठितजगद्गुरुरामराय-
सम्वर्धिताखिलसमृद्धिसमेधितस्य ।
यस्यात्र सर्वमहनीयगुणोन्नतस्य
राजोचितानि करणानि समुल्लसन्ति ॥१४५॥

इस गद्दी पर पहिले बैठने वाले गुरु रामराय जी के द्वारा बढ़ाई हुई सम्पत्ति का उपभोग करने वाले जिन महन्त का सर्वोचित राज मान्य संसार में प्रख्यात है वे महन्त लक्ष्मणदास जी किसके लिये मान्य नहीं हैं ? अर्थात् सबके लिये मान्य हैं ॥ १४५ ॥

लोकाभिरामनवसद्गुणगुम्फितस्य
यस्यात्र शासनजुषः परिचीयमानाः ।
प्रान्ताधिपेष्वपि बहुष्ववदानभाव-
मुद्भावयन्ति गरिमाणमुपागतस्य ॥१४६॥

उत्तम गुणों के आधार स्वरूप जिस महन्त का वर्तमान समय के सर्वोपरि राज कर्मचारी राजोचित सन्मान कर अभिनन्दन करते हैं गुरुत्व को प्राप्त हुये उस महन्त लक्ष्मणदास जी का हम कहां तक वर्णन कर सकते हैं ॥ १४६ ॥

संवत्सरे निजगुरोर्गुणगौरवाणा-
मुच्चैस्तरां परिणतिं जनताजनेषु ।
यः साभिमानमधिरोप्य समागतानां
मोदेन सत्कृतिमुपायनदः करोति ॥१४७॥

प्रति वर्ष एक बार अपने पूर्व महन्तों का महत्त्व स्मरण करने के लिये उनके स्मारक रूप में जो झन्डे का मेला लगवाते हैं उनके विषय में अधिक परिचय देने की आवश्यकता नहीं है ॥ १४७ ॥

तस्यातिगौरवजुषो यशसाम्प्रसूते-
र्भूमीश्वरस्य महिमोद्धतमानभूमेः ।
किं किं न विस्तृतकथं चरितं मते मे
यद्वर्णनार्हमिह नास्ति गुणातिरेकात् ॥१४८॥

उस महन्त का संसार में कौन सा ऐसा कार्य है जो विस्तृत रूप में वर्णन करने के योग्य न हो इसलिये उनकी महत्त्व सीमा के विषय में अधिक लिखना व्यर्थ है ॥ १४८ ॥

येनातिभव्यगुरुमण्डलरक्षणाय
लोकाभिराममुपलब्धमिदं शरीरम् ।
रामस्वरूपमधिगत्य स एव मन्ये
भूपस्तदेव कुरुते यदकारि पूर्वैः ॥१४९॥

प्रत्येक कुम्भ के महोत्सव पर जो उदासीन मण्डल की अनन्य भाव से सेवा करते हुये अन्य आगत विद्वानों का भी यथावसर सत्कार करते हैं ॥ १४२ ॥

श्रीचन्द्रदिग्विजयमादरतो दिदृक्षु–
यैः सत्वरं तदुपयोगि समस्तमेव ।
आयोजनं बहुविधाय मुनेःप्रसाद–
माकांक्षते भवतु सोत्र चिराय मान्यः ॥१४३॥

"जगद्गुरु श्रीचन्द्र दिग्विजय" की दर्शनेच्छा से जिन्होंने उसके प्रकाशन का बहुत अंशों में आयोजन एकत्र कर जगद्गुरु के प्रसाद की आकांक्षा में बहुत सा समय व्यतीत किया है वे महन्त हरिनामदास जी चिरकाल तक जगत के मान्य बने रहें यही हमारी अभिलाषा है ॥ १४३ ॥

यो बालहासमुनिमण्डलमान्यसंस्था–
मध्यास्य राजविभवोचितमागतेषु ।
मानं तनोति सुकृती स वदान्यवृत्तो
वेविद्यते जगति लक्ष्मणदासभूपः ॥१४४॥

बालहास पद्धति के मुनि मण्डलों की माननीय संस्था पर आसीन होकर जो आगत सज्जनों का राजविभवोचित स्वागत करते हैं वे श्रीमान् योगिराज गुरु राम-राय सिंहासनाध्यक्ष शास्त्रमर्मज्ञ महनीय श्री १०८ महन्त लक्ष्मणदास जी गुरु रामराय दरबार [देहरादून] विद्यमान हैं ॥ १४४ ॥

पूर्वप्रतिष्ठितजगद्गुरुरामराय–
सम्वर्धिताखिलसमृद्धिमपेधितस्य ।
यस्याद्य सर्वमहनीयगुणोन्नतस्य
राज्ञोचितानि करणानि समुन्नमन्ति ॥१४५॥

इस गद्दी पर पहिले बैठने वाले गुरु रामराय जी के द्वारा बढ़ाई हुई सम्पत्ति का उपभोग करने वाले जिन महन्त का मर्यादा गान मान्य संसार में सम्मान है वे महन्त लक्ष्मणदास जी किसके लिये मान्य नहीं हैं ! अर्थात् सबके लिये मान्य हैं ॥ १४५ ॥

लोकाभिरामनवसद्गुणगुम्फितस्य
यस्यात्र शासनजुषः परिचीयमानाः ।
प्रान्ताधिपेष्वपि बहुष्ववदानभाव-
मुद्भावयन्ति गरिमाणमुपागतस्य ॥१४६॥

उत्तम गुणों के आधार स्वरूप जिस महन्त का वर्तमान समय के सर्वोत्तम राज कर्मचारी राज्योचित सम्मान कर अभिनन्दन करते हैं गुरुत्व को प्राप्त हुये उस महन्त लक्ष्मणदास जी का हम कहां तक वर्णन कर सकते हैं ॥ १४६ ॥

संवत्सरे निजगुरोर्गुणगौरवाणा-
मुच्चैस्तरां परिणतिं जनताजनेषु ।
यः साभिमानमधिरोप्य समागतानां
मोदेन सत्कृतिमुपायनदः करोति ॥१४७॥

प्रति वर्ष एक बार अपने पूर्व महन्तों का महत्त्व स्मरण करने के लिये उनके स्मारक रूप में जो झन्डे का मेला लगवाते हैं उनके विषय में अधिक परिचय देने की आवश्यकता नहीं है ॥ १४७ ॥

तस्यातिगौरवजुषो यशसाम्प्रसूते-
र्भूमीश्वरस्य महिमोद्गतमानभूमेः ।
किं किं न विस्तृतकथं चरितं मते मे
यद्वर्णनार्हमिह नास्ति गुणातिरेकात् ॥१४८॥

उस महन्त का ससार में कौन सा ऐसा कार्य है जो विस्तृत रूप में वर्णन करने के योग्य न हो इसलिये उनकी महत्त्व सीमा के विषय में अधिक लिखना व्यर्थ है ॥ १४८ ॥

येनातिभव्यगुरुमण्डलरक्षणाय
लोकाभिराममुपलब्धमिदं शरीरम् ।
रामस्वरूपमधिगत्य स एव मन्ये
भूयस्तदेव कुरुते यदकारि पूर्वैः ॥१४९॥

प्रत्येक कुम्भ के महोत्सव पर जो उदासीन मण्डल की अनन्य भाव से सेवा करते हुये अन्य आगत विद्वानों का भी यथावसर सत्कार करते हैं ॥ १४२ ॥

श्रीचन्द्रदिग्विजयमादरतो दिदृक्षु-
　　र्यः सत्वरं तदुपयोगि समस्तमेव ।
आयोजनं बहुविधाय मुनेःप्रसाद-
　　माकांक्षते भवतु सोत्र चिराय मान्यः ॥१४३॥

"जगद्गुरु श्रीचन्द्र दिग्विजय" की दर्शनेच्छा से जिन्होंने उसके प्रकाशन का बहुत अंशों में आयोजन एकत्र कर जगद्गुरु के प्रसाद की आकांक्षा में बहुत सा समय व्यतीत किया है वे महन्त हरिनामदास जी चिरकाल तक जगत के मान्य बने रहें यही हमारी अभिलाषा है ॥ १४३ ॥

यो बालहासमुनिमण्डलमान्यसंस्था-
　　मध्यास्य राजविभवोचितमागतेषु ।
मानं तनोति सुकृती स वदान्यवृत्तो
　　वेविद्यते जगति लक्ष्मणदासभूपः ॥१४४॥

बालहास पद्धति के मुनि मण्डलों की माननीय संस्था पर आसीन होकर जो आगत सज्जनों का राजविभवोचित स्वागत करते हैं वे श्रीमान् योगिराज गुरु राम-राय सिंहासनाध्यक्ष श्रीमहन्त गद्दीनशीन श्री १०८ महन्त. लक्ष्मणदास जी गुरु रामराय दरबार [देहरादून] विद्यमान हैं ॥ १४४ ॥

पूर्वप्रतिष्ठितजगद्गुरुरामराय-
　　सम्वर्धिताखिलसमृद्धिसमेधितस्य ।
यस्यात्र सर्वमहनीयगुणोन्नतस्य
　　राजोचितानि करणानि समुल्लसन्ति ॥१४५॥

इस गद्दी पर पहिले बैठने वाले गुरु रामराय जी के द्वारा बढ़ाई हुई सम्पत्ति का उपभोग करने वाले जिस महन्त का सर्वोपरि मान सन्त समाज में मान्यता है वे महन्त लक्ष्मणदास जी किसके लिये मान्य नहीं हैं ? अर्थात् सबके लिये मान्य हैं ॥ १४५ ॥

लोकाभिरामनवसद्गुणगुम्फितस्य
यस्यात्र शासनजुषः परिचीयमानाः ।
प्रान्ताधिपेष्वपि वहुष्ववदानभाव-
मुद्भावयन्ति गरिमाणमुपागतस्य ॥१४६॥

उत्तम गुणों के आधार स्वरूप जिस महन्त का वर्तमान समय के सर्वोन्नत राज कर्मचारी राजोचित सन्मान कर अभिनन्दन करते हैं गुरुत्व को प्राप्त हुये उस महन्त लक्ष्मणदास जी का हम कहां तक वर्णन कर सकते हैं ॥ १४६ ॥

संवत्सरे निजगुरोर्गुणगौरवाणा-
मुच्चैस्तरां परिणतिं जनताजनेषु ।
यः साभिमानमधिरोप्य समागतानां
मोदेन सत्कृतिमुपायनदः करोति ॥१४७॥

प्रति वर्ष एक वार अपने पूर्व महन्तों का महत्त्व स्मरण करने के लिये उनके स्मारक रूप में जो झन्डे का मेला लगवाते हैं उनके विषय में अधिक परिचय देने की आवश्यकता नहीं है ॥ १४७ ॥

तस्यातिगौरवजुषो यशसाम्प्रसूते-
र्भूमीश्वरस्य महिमोद्धतमानभूमेः ।
किं किं न विस्तृतकथं चरितं मते मे
यद्वर्णनार्हमिह नास्ति गुणातिरेकात् ॥१४८॥

उस महन्त का ससार में कौन सा ऐसा कार्य है जो विस्तृत रूप में वर्णन करने के योग्य न हो इसलिये उनकी महत्त्व सीमा के विषय में अधिक लिखना व्यर्थ है ॥ १४८ ॥

येनातिभव्यगुरुमण्डलरक्षणाय
लोकाभिराममुपलब्धमिदं शरीरम् ।
रामस्वरूपमधिगत्य स एव मन्ये
भूयस्तदेव कुरुते यदकारि पूर्वैः ॥१४९॥

यश्चेतनामयवपुः किल चित्स्वरूपे-
णाविश्य सर्वमिदमात्मभवं यथावत् ।
एको विभाति बहुबिम्बगतः स लोके
केनार्थ्यते न भुवि चेतनदेव-देवः ॥१५७॥

चिद्रूप से समस्त जगत् में प्रविष्ट होकर स्वयं चेतन स्वरूप जो देव एक होने पर भी प्रतिबिम्ब भेद से अनेक प्रतीत होता है वह चेतनदेव किसको वाञ्छनीय नहीं है ? ॥१५७॥

गुरुमुखतो नाधीतं
दास्यं येनाप्य तद्गृहे तत्त्वम् ।
चेतनदेवस्यार्चा
तेन कथङ्कारमात्मना कार्या ॥१५८॥

जिसने दास्यभाव अङ्गीकार करके गुरुमुख से शास्त्रों का तत्व प्राप्त नहीं किया वह अपने शरीर से चेतनदेव की पूजा किस प्रकार कर सकता है ? अर्थात् गुरुमुखदास बन कर ही चेतनदेव (ब्रह्म की) सेवा कर सकता है जो सबकी शरीर रूप (कुटिया) में रह रहा है ॥१५८॥

सुन्दरतां गुणनिष्ठां
दास्येनाध्यास्य यो महानत्र ।
पूरणदासेत्यभिधा-
मवाप कस्तस्य दर्शनं नेच्छेत् ॥१५९॥

गुणगत सुन्दरता को दास्य से प्राप्त कर जिन्होंने पूरणदास नाम को अन्वर्थ बनाकर संसार को अपनी गुणानुगता का परिचय दिया है वे दक्षिण हैदराबाद की उदासीन गद्दी के महन्त स्वनामधन्य श्री पूरणदास जी किस के लिये दर्शनीय नहीं हैं ? ॥१५९॥

एभिः सङ्केतपदै
रभिधावद्भिः सुलक्षणावद्भिः ।

व्यज्यन्ते ये मुनय-
स्तात्पर्याख्यां भजन्तु ते वृत्तिम् ॥१६०॥
(स्पष्टार्थमेतत्पद्यम् ॥ १६० ॥)

धर्मावतार इति यं प्रवदन्ति लोके
धर्माय योवतरति प्रमभं महेशः ।
रामादयस्त्रिभुवनप्रथितप्रभावा-
स्तस्यैव भूमिवलये कलयावताराः ॥१६१॥
[सनातनधर्मविजयात्]

संसार जिनको धर्मावतार कहता है और धर्म की रक्षा के लिये समय समय पर जो अवतार लेते हैं रामकृष्णादि सब उनके ही अंशावतार हैं ॥ १६१ ॥

दुर्लभं दर्शनं यस्य मुनिभिः परिकीर्त्यते ।
सुदर्शनो मुनिः सोयं भूतले दृश्यतां जनैः ॥१६२॥
आनन्दमचलं प्राप्य भुवने योवतिष्ठते ।
अचलानन्दतां प्राप्तः स कोप्यवतु मण्डलम् ॥१६३॥
गोविन्द इति नाम्नैव यस्यानन्दः प्रवर्धते ।
गोविन्दानन्दरूपेण सोवतीर्णः प्रकाशते ॥१६४॥
अन्यावतारचर्चायामानन्दो येन लभ्यते ।
कृष्णानन्दं यथाकामं ते भजन्तु भुवस्तले ॥१६५॥
विशुद्धं यत्पदं प्राप्य निवर्तन्ते न मानवाः ।
विशुद्धानन्दरूपेण तेवतीर्णा मुनीश्वराः ॥१६६॥
रामदासपदं प्राप्य पुनरिच्छन्ति ये सुखम् ।
जानकीदासतां लोके गुर्जरेऽनुभवन्ति ते ॥१६७॥

जिनका दर्शन मुनिजन भी दुर्लभ बतलाते हैं वे सुदर्शन मुनि, अचल आनन्द को प्राप्त कर जो भुवन में विराजते हैं वे अचलानन्द जी, गोविन्द के नाम श्रवण से ही जिनका आनन्द बढ़ता है वे गोविन्ददेव जी, अन्य अवतारों की चर्चा में

लवपत्तने यथाव—
त्प्रधानपीठं समेत्य सौवर्णम् ।
मोदेन यो जयन्ती—
महोत्सवं तत्र कारयामास ॥१८०॥

जिन्होंने सांसारिक तुच्छ पदार्थों से अपनी दृष्टि हटाकर गुरुओं द्वारा समस्त दर्शन और वेद पढ़कर केवल ज्ञानवेद्य ब्रह्म सुख का अपने हृदय में अनुभव किया है ? जिन्होंने काशी में विद्वद्वर श्रीकाशीनाथजी से वेदान्त और अभिनवगदाधर श्रीवामाचरण भट्टाचार्य से न्याय पढ़ा है, जिन्होंने काशी में हरिनारायण जी तिवारीसे कौमुद्यादि व्याकरण ग्रन्थ और दुःखभञ्जनात्मज से साहित्य ग्रन्थ क्रमशः पढ़े हैं, जिनके विद्यागुरु और दीक्षा गुरु श्री रामानन्द जी राजोआना (लुधियाना) में अपने गुरुवर श्री सुन्दरदास जी के निवास स्थान पर रहते हैं, जिन्होंने कुछ काल तक अध्यापनकार्य करके संवत् १९८२ में अपने गुरु की आज्ञा से सनातन वैदिक धर्म का प्रचार कार्य आरम्भ किया, जिन्होंने समस्त प्रान्तों में और समस्त तीर्थों में भ्रमणकर अपने प्रचार के द्वारा सनातनधर्म को ऊपर उठाया है, जिन्होंने सर्व प्रथम सिन्ध प्रान्त में जाकर वहां अवैदिक अनार्य कपोल कल्पित नवीन मतों का उच्छेद करके मनुष्यों के हृदयों में सनातनधर्म का महत्त्व स्थापित किया है, जिन्होंने सिन्ध के बाद पञ्जाब में आकर स्वार्थ पर प्रतिनिधि सभा का विचित्र ढोंग तोड़कर वैदिक वल्लरी का बीजारोपण कर दिया जिन्होंने नडियाद में महन्त जानकीदास को महासत्र करने का परामर्श देकर तीन वर्ष तक लगातार वेद दर्शन और अठारह पुराणोंका प्रवचन कराया और उसके अन्तमें एक महायज्ञ कराया जिसमें १०८ श्रीमद्भागवत पारायण तथा सप्तशती के १०८ सम्पुट पाठ हुए [इस महायज्ञमें तीन लक्ष धन व्यय हुआ और पांचलक्ष मनुष्यों का भोजन हुआ] जिन्होंने स्थानीय पुरातन सनातनधर्म सभा के सुवर्ण जयन्ती महोत्सवपर स्थानीय समस्त सनातनधर्मियों की प्रार्थना स्वीकार करके उसका अध्यक्षपद ग्रहणकर लाहौर की जनता में धर्म प्रचार का कार्य सुचारु रूपसे सम्पन्न कराया (?)॥७१—८०॥

श्रीकृष्णचन्द्रनाम्नः—
समादरेणाप्य सैन्धवं देशम् ।
यो वेदमन्दिरस्य
प्रशस्तमारम्भमेधयामास ॥१८१॥

अमृतसरसि येनाकारि दुर्गम्यतोय-
प्रसृतिविषमकार्यस्यापि यत्नेन पूर्तिः ।
प्रथितजलधिकन्याकान्तमन्तः प्रसाद्य
क्रममनुसरता तं यो कृतः पूर्वजातैः ॥१८२॥

नवाहसप्ताहविधिप्रदिष्ट-
पारायणैर्यः प्रथयाम्बभूव ।
पदे पदे श्रीरघुनाथगाथां
मनस्युपेतां यदुनाथगाथाम् ॥१८३॥

सुवर्णवर्णामृतवारिपूर-
प्रवृत्तकल्लोलपरम्पराभाम् ।
यदीयवाणीमनिमेषनेत्राः
पपुर्जनौघा दशलक्षसंख्याः ॥१८४॥

जिन्होंने सिन्ध हैदराबाद में श्रीमान् सेठ लोखराजजी के सुपुत्र सेठ कृष्णचन्द्रजी को परामर्श देकर एक दिव्य वेद मन्दिर की स्थापना कराई ? जिन्होंने सवत् १९९७ वें में अमृसर जाकर वहां पर दुर्गियाना सरोवर में लक्ष्मीनारायण मन्दिर के पास बड़ी नहर से जलधारा लाकर अपने प्रभाव से वहां के जल कष्ट को सर्वदा के लिये दूर कर दिया इस महोत्सव के उपलक्ष्य में नवाह और सप्ताह हुए जिनमें ३० सहस्र जनता उपदेशामृत पीकर सन्तुष्ट होती थी । शरत्पूर्णिमा के दिन यह सब समारोह तीन लाख जनताके समक्ष में हुआ था ॥१८१—१८४॥

यदीयसन्मण्डललब्धदीक्षाः
पुरे पुरे भारतभूमिभाजाम् ।
समुद्धृतिं कर्तुमनेकयत्नै-
रनारतं कार्यभरं वहन्ति ॥१८५॥

परिश्रमाद्यस्य यथावकाशं
वाराणसीमध्यगतः प्रसिद्धः ।

श्रीढुण्ढिराजानुगते विभाति
विद्यालयः श्रीभवने यथावत् ॥१८६॥
वृन्दावने यस्य विशालभूमौ
परिश्रमाद्दिव्यविभिन्नशालम् ।
विभाति भव्यं भवनं मुनीनां
विनोदनाय प्रतिपाद्यमानम् ॥१८७॥
कुम्भादिपर्वस्वपि यस्य योगा-
द्दरिद्रनानाजनपोषणार्थम् ।
प्रवर्तते सत्रमुदारभावा-
त्प्रदीयते यत्र जलान्नदानम् ॥१८८॥
श्रीचन्द्रपादानुगतस्य तस्य
गङ्गेश्वरानन्दमहोदयस्य ।
किमत्र वक्तव्यमनन्तकीर्ते-
रनन्तवीर्यस्य मया चरित्रम् ॥१८९॥

जिनके साथ रहने वाले उदासीन मण्डल में पढ़कर सहस्रों विद्वान् भारत में भ्रमण कर इस समय यत्र तत्र सर्वत्र सनातनधर्म का कार्य कर रहे हैं (१) जिनके परिश्रम से वर्तमान समय में काशी का उदासीन संस्कृत विद्यालय बड़ी उन्नति के साथ अग्रगामी हो रहा है (१) जिनके परिश्रम से वृन्दावन में स्टेशन के पास विस्तृत मैदान में बड़ा भारी उदासीन मुनिमण्डल का एक विद्यालय बनरहा है (१) जिनके परिश्रम से कुम्भ आदि महापर्वों पर दरिद्र जनता के उपकारार्थ अन्न सत्र खुला रहता है (१) जिनके कर्त्तव्यों का ऊपर के पद्यों में संक्षिप्त परिचय दिया जाचुका है वे हमारे अभिन्न हृदय परममित्र स्वनाम धन्य परमादरणीय ब्रह्मनिष्ठ वेददर्शनाचार्य महामण्डलेश्वर श्री१०८ गङ्गेश्वरानन्दजी महाराज हैं॥१८५-१८९॥

एवंविधा निगमतत्त्वविदः प्रसिद्धा
यस्यावदातचरितस्य यथावकाशम् ।

गायन्ति सद्गुणगणानवदानपद्यैः
श्रीचन्द्रएव भगवान्स जगत्सु मान्यः ॥१६०॥

संसार में इस प्रकार के अनेक महानुभाव जिनका प्रतिदिन गुणगान करते हैं वे जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ही एक मात्र स्तुत्य और धन्य हैं ॥ ९० ॥

तस्योदयात्प्रभृति सर्वमनुक्रमेण
वृत्तं यथावदनुगृह्य परिश्रमेण ।
लोकोपकारमनसा स कविश्चकार
काव्यं निसर्गमधुरं भगवत्प्रसादात् ॥१६१॥

उनका अवतरण से लेकर अचल समाधि पर्यन्त जीवन का समस्त वृत्तान्त एकत्रकर निसर्ग मधुर शब्दों में इस प्रस्तुत महाकाव्य में उस महाकवि ने वर्णन किया १ [जिसका वंश परिचय अग्रिम पद्यों में हैं] ॥ १९१ ॥

[कविवंशवर्णनम्]

वंशं सनाढ्यमधिगत्य विधेर्निदेशा-
द्धर्मेण यां समधिगत्य सुबुद्धिदेवीम् ।
काले कलावपि मुनिप्रवरः स टीका-
रामो मुनिः फलमिवाप यमादिपुत्रम् ॥१६२॥

भगवान् की प्रेरणा से सनाढ्य वंश में जन्म लेकर श्रीमती सुबुद्धिदेवी का धर्म से पाणिग्रहण करके मुनिवर श्री टीकाराम शास्त्री जी ने गृहस्थाश्रम के प्रथम फलस्वरूप जिनको प्राप्त किया ॥ १९२ ॥

पित्रोरनुक्रमवशेन गृहेनिविष्टां
दैवीं गिरं हृदयमादरतः प्रविष्टाम् ।
यो बाल्य एव जननीस्तनदुग्धपानैः-
साकं पपौ श्रुतिपथानुगतां यथावत् ॥१६३॥

जिसने बाल्यकाल में ही कुल परम्परागत देववाणी को बिना प्रयास के ही माता पिता से सुनकर स्तनपान के साथ २ देववाणी का भी पान किया ॥१९३

गङ्गोत्तरीभ्रमरसरित्सटपुण्यभूमौ
यज्ञोपवीतमधिगत्य पितुःसकाशात् ।

उसी अखिलानन्द शर्मा ने अनूप शहर में रहकर गङ्गा तट पर इस जगद्गुर श्रीचन्द्र दिग्विजय महाकाव्य का निर्माणकर मुनि मण्डल के लिये इसको अर्पित कर दिया ॥ २०२ ॥

[श्रद्धाञ्जलि समर्पण]

एवं निवेद्य हृदयोद्गतमात्मभावं भावाभिराममनसा वचसा शिवस्य।
नत्नम्य पादयुगलं भवतापशान्त्यै सन्दीयतेञ्जलिरयं भगवत्पदेषु॥२०३

इस प्रकार अपने हृद्गत अभिप्राय को कहकर अब हम भगवान् श्रीशङ्करके चरणों में प्रणामकर भवताप निवारणार्थ उनके श्रीचरणोंमें श्रद्धाजलि अर्पित करते हैं॥२०३

स्वीकृत्य तं सभगवानमृतांशुमौलिः
पादारविन्दपतिते मयि दिव्यदृष्टिम् ।
नित्यं तनोतु वितनोतु समस्तलोके
कीर्तिं ददातु हृदयस्थितमस्ति यद्यत् ॥२०४॥

वे भगवान् शङ्कर हमारी श्रद्धाञ्जलि को स्वीकार कर चरणों में नतमस्तक मुझपर सर्वदा कृपा दृष्टि का सञ्चार करें ? और हमारी कीर्ति को सर्वत्र विस्तृत करें और हमारी समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करें ॥ २०४ ॥

एतावदद्य विनिवेद्य यथावकाशं
भावोन्नतेन मनसा शिवसन्निधाने ।
पूर्वानुवृत्तविषयावसितेः प्रसङ्गा-
दष्टादशोयमपि पूर्तिमुपैति सर्गः ॥२०५॥

यही उनके श्री चरणों में भावोन्नत मन से निवेदन कर पूर्वानुगत विषय के समाप्त होने पर इस महाकाव्य का यह अन्तिम सर्ग समाप्त किया जाता है ॥२०५॥

इतिश्री सनाढ्यनशोद्भव कविवर श्रीमदखिलानन्दशर्मप्रणीते
सतिलके जगद्गुरुश्रीचन्द्रदिग्विजये महाकाव्ये
प्रचारकनिरूपण नामाष्टादश सर्ग

❋ समाप्तमदो महाकाव्यम् ❋

ब्रह्माभिविष्णुपदनेत्रमिताङ्कपद्यम् ॥२०३१॥

